श्री चौ० दीवानचन्द जैन
चाननराम बिहारीलाल जैन
गीदड़बाहा (फिरोजपुर)

पूज्य श्री काशीराम स्मृति ग्रंथ माला पुष्प सं० ६

धर्म दर्शन

व्याख्याता
प० श्री शुक्लचन्द्र जी महाराज

सम्पादक
श्री बाबूसिंह चौहान

द्रव्यदाता
चौ० दीवानचन्द चाननराम जैन
गिदडबाह (पंजाब)

प्रकाशक
पूज्य श्री काशीराम स्मृति ग्रन्थ माला
दिल्ली

प्रकाशक–

पूज्य श्री काशीराम स्मृति ग्रन्थ माला
दिल्ली (सदर)

सम्वत् २०१२
सन् १९५५
मूल्य दो रुपये
सर्वाधिकार प्रकाशक के आधीन

मुद्रक–
जगदेवसिंह शास्त्री 'सिद्धान्ती'
सम्राट् प्रेस
पहाड़ी धीरज, देहली

सम्पादक की बात

मैं मानवता का पुजारी हूँ, मनुष्यता मेरा धर्म है। और—इसीलिए मैं प्रत्येक उस सिद्धान्त में श्रद्धा रखता हूं जो मनुष्यत्व की ओर ले जाता है। इसी कारण मैं जैनी न होते हुए भी जैन धर्म के कितने ही सिद्धान्तों को मानता हूँ और जैन शास्त्रों में अपने लिए ज्ञान खोजने के लिए प्रयत्नशील हूं। पर केवल जैन शास्त्रों में ही नहीं, वरन प्रत्येक उस शास्त्र में जो मानव को मनुष्यत्व की श्रेणी में ले जाने के लिए रचा गया है। मैं झूठ नहीं बोलूंगा, मैं अपने लक्ष्य तक पहुँचने के लिए किसी भी शास्त्र से, किसी भी धर्म और किसी भी ज्ञानी से ज्ञान बटोरने का लोभ संवरण नहीं कर सकता।

मुझे यह समाज, जिसमें मैंने जन्म लिया है, बिल्कुल भी नहीं भाता। क्योंकि यह समाज इतना भौंडा, इतना ढोंगी, इतना ढीठ है कि कोई 'इंसान' इसे पसंद नहीं कर सकता। शोषण पर टिके हुए इस समाज को मनुष्यता फूटी आंखों नहीं भाती। और जब तक इस समाज का पुनर्गठन मानवीयता के आदर्श पर नहीं किया जाता, तब तक आप जिसे धर्म कहते हैं, वह भी नहीं पनप सकता।

यही कारण है कि आज के युग में हिटलर, मेकार्थी और च्यांगकाई शेक जैसे जन्म लेते हैं और कितने ही छोटे-छोटे हिटलर, कितने ही छोटे-छोटे च्यांगकाई शेक, एक नहीं लाखों की संख्या में रेंगते रहते हैं। पर महावीर जैसे जन्म नहीं लेते।

उनके पथ पर चलने वाले जन्म लेते है तो साथ मे गोडसे जैसे भी बिजबिजाने लगते है। आज के युग मे मानवता घोर पाप बन गई है।

हां, साधु-सन्त भी हैं, पर साधु-सन्तों को यह समाज बहकाने का प्रयत्न करता है, उनके पैर पूजकर उनके साथ दिन-धौले विश्वासघात करता है। सतों की पूजा अर्चना उन्हे लोरी दे देकर सुलाने के लिए होती है। उनके उपदेशों की खूब प्रशंसा की जाती है, ताकि उन्हे विश्वास हो जाय कि धर्म अभी तक जीवित है। लोग आत्मा की निर्मलता के लिए प्रयत्नशील है। पर लोग तेली के बैल की भांति, इस समाज की अमानवीय व्यवस्था की लकडी को कंधे पर रखकर उसी मे जुते रहते है। भगवान् को, जिस के होने पर जिन्हे इतना ही विश्वास है जितना अपने पेट पर, लोग मूर्ख बनाने की चेष्टा करते है।

सामायिक, संध्या, पूजा, नमाज आदि इसलिए नहीं करते कि वे मनुष्य है और किसी के 'बन्दे' है। बल्कि इसलिए करते हैं कि भगवान् को कुछ शब्दों की घूंस देकर अपने लिए मोक्ष का टिकट कटा ले। और जब कोई उनके ऐसे भगवान् का विरोध करता है तो वे उसे काट खाने को आते है जैसे यह उन पर अन्याय हुआ हो। मानो भगवान् के ठेकेदार वही हो और किसी के यह कहने से कि भगवान् कहीं नहीं है, उनके भगवान् का पत्ता कट जायेगा, उनमे उस भगवान् का जो थोडे से होट फडफडाने और सर पटकने से उनके सारे पापों को गगाजल से धो डालता है, जो अपराधियो की चापलूसी पर फूल कर कुप्पा हो जाता है और चापलूसो को सुख को बख्शीश दे डालता है।

मै ऐसे भगवान् को नहीं मानता और जैन धर्म भी ऐसे भगवान् को स्वीकार नहीं करता। इसलिए मेरी जैन धर्म के साथ

पटरी बैठ जाती है। और इसलिए मैं जैन शास्त्रों की ओर आक-र्षित हुआ हूँ।

जहाँ तक जैन धर्म को मैं समझ पाया हूं उससे मेरी यह धारणा हो चली है कि जैन शास्त्रों में मनुष्यो के लिए बनाये गए सिद्धान्तों पर अमल किया जाय तो इस समाज से विद्रोह करना पड़ेगा। और यदि सभी लोग इन सिद्धान्तों पर अमल करने लगे तो समाज का रूप ही बदल जायेगा। तब यह समाज मर जायेगा, इसके नियम, इसका विधान और इसकी व्यवस्था सभी कुछ मिट जायेंगे। महावीर स्वामी इसी के लिए प्रयत्नशील रहे, वे मनुष्य को मनुष्यत्व की श्रेणी के ले जाने के लिए सघर्ष रत रहे। उन्होंने अपने अन्तिम प्रवचन में कहा है कि 'माणुस्स खु सुद-ल्लह' अर्थात् मनुष्य होना बड़ा कठिन है। उन्होंने पावापुरी के अन्तिम प्रवचन में मनुष्यत्व को ही मोक्ष प्राप्ति के चार दुर्लभ साधनों में प्रथम स्थान दिया है। वे कहते हैं कि "मनुष्यत्व, शास्त्र श्रवण, श्रद्धा और सदाचार के पालन में प्रयत्नशीलता— ये चार साधन जीव को प्राप्त होने अत्यन्त कठिन है।"

जिन्हें मोक्ष चाहिए पहले उनमें मनुष्यत्व आना चाहिए। मनुष्य शरीर मिलना कठिन नहीं है, मनुष्य शरीर पाकर मनुष्य-त्व प्राप्य करना कठिन है। उस कठिन श्रेणी को प्राप्त करने के लिए जैन शास्त्रो में दस धर्मो का वर्णन मिलता है। 'धर्म दर्शन' में इन्हीं की व्याख्या की गई है। आप देखेंगे कि इन दस धर्मों में मनुष्य के कर्तव्य की लम्बी सूची है। यदि हम इन धर्मो को अपने जीवन में उतार सकें तो फिर हमें स्वर्ग के लिए टक्करें खाने की आवश्यकता न रहे, स्वर्ग इसी भूमि पर उतर आयेगा। मैं स्वर्ग नहीं चाहता, केवल मनुष्यत्व चाहता हूँ, अपने ही में नहीं बल्कि सभी में, इसलिए इन दस धर्मों में मनुष्यत्व के प्राण

देखता हूँ और सोचता हूँ, काश ! जैन धर्मावलम्बी ही इन धर्मों का पालन करना आरम्भ कर देते। यदि जैनी ही इनका पालन करें तो यह समाज टूटने और नया समाज बनने के आसार दिखाई दे जाये।

'धर्म दर्शन' प्रसिद्ध जैन मुनि पडित शुक्लचन्द्र जी महाराज के दस व्याख्यानो का सग्रह है। उनके विचार और मेरी लेखनी, इन दो के सयोग से 'धर्म दर्शन' की रचना हुई। और इस सयोग का कारण है कविरत्न अमृतचन्द्र जी महाराज। भटिण्ड मे उनकी कृपा से मुझे शुक्लचन्द्रजी महाराज के दर्शन हुए और फिर उनके व्याख्यानो को प्रकाशित करने की योजना बनी। मैं प्रतिदिन प्रात काल उनके व्याख्यान सुनने के लिए जाता और उनके व्याख्यानो को घर पर कागज पर उतार लेता। भाषण सुनने तो पुस्तक के लिए जाना पडता था, पर मुझे इनमे कितना लाभ हुआ यह मै ही जानता हूँ। शुक्लचन्द्र जी महाराज श्रमण सघ के पंजाब मत्री है और पुराने सन्त होने के कारण शास्त्रो के ज्ञान के साथ-साथ अनुभव का भण्डार है उनके पास। इस लिए उनके व्याख्यान बहुत ही प्रभावशाली होते है।

जैन मुनि पैदल ही यात्रा करते है इस लिए उन का प्रचार इतनी लम्बी-चौडी दुनिया मे तीव्र गति से नहीं हो सकता। मेरे विचार से जैन सिद्धान्तो के प्रचार का मुख्य साधन पत्र-पत्रिकाएं और पुस्तके ही हो सकती है। यदि शुक्लचन्द्र जी महाराज जैसे विद्वान, अनुभवी, और प्रतिभाशाली सन्तो के प्रवचन पुस्तकों के रूप में प्रकाशित किए जाते रहे और उन पुस्तको की बिक्री तथा वितरण का सुन्दर प्रबन्ध किया जाय तो प्रचार आगे बढ़ सकता है। फिर यह प्रवचन वहा भी पहुँच सकते है जहां जैन मुनि नहीं पहुँच सकते। समुद्र पार, जिसे पाताल कहते है वहा

भी। सभी देशों में मुनियों के प्रवचन पहुँचाने का यही उत्तम उपाय है।

मैं अपने पाठकों से एक बात अवश्य कहूँगा कि वे पुस्तक को व्याख्यानों की रिपोर्ट समझ कर पढ़ें। पुस्तक के शब्द-शब्द में ज्ञान झांकता मिलेगा और शुक्लचन्द्र महाराज की महानता आपके सामने उजागर हो जायेगी।

यदि पुस्तक के द्वारा आप में अपने उलट-पुलट जीवन को काट-छांट कर ठीक करने की भावना जागृत हुई; तो मैं अपने परिश्रम को सफल समझूंगा।

भटिण्डा
६ मई १९५५

—बाबूसिंह चौहान

प्रकाशक के दो शब्द

लोग कहते है कि मानव प्रगति की ओर अग्रसर हो रहा है, पर वास्तव मे विज्ञान सम्बन्धी उन्नति तथा उत्पादन के साधनों की नवीन खोज को मानव की प्रगति नहीं कहा जा सकता, क्योकि जहा नवीन खोजो के द्वारा साधनों एव सुविधाओ का भण्डार बढ़ता जा रहा है, वहीं मानव ऐश्वर्य की चकाचौध मे अथवा जीवन यापन की कठिनाइयों मे मानवता के उच्चादर्श को भूलता जाता है। मानव समाज दूषित होता जा रहा है। मनुष्यत्व को मानव का आदर्श बनाने के लिए आवश्यक है कि उसे उसके धर्म अथवा कर्तव्य का ज्ञान हो, वह अपने को पहचाने। प्रस्तुत पुस्तक मे लौकिक धर्म के दस सोपानों की सुंदर व्याख्या की गई है। पुस्तक पूज्य श्री शुक्लचन्द्र जी महाराज के व्याख्यानों का संक्षिप्त रूपक है। फिर भी इसे पढ़कर किसी व्यक्ति को अपने व समाज के प्रति अपने कर्तव्यों का ज्ञान होगा, उसे धर्म पथ पर अग्रसर होने की प्रेरणा मिलेगी। इसी लिए हमने इस पुस्तक को जनता के सामने लाने का आयोजन किया है। यदि पुस्तक से मानव समाज कुछ भी लाभान्वित हो पाये तो हमारी आशाएं पूर्ण हो जायेगी, हमें आत्मिक शांति प्राप्त होगी। इसी आशा के साथ यह पुस्तक प्रातः स्मरणीय पूज्य श्री काशीराम स्मृति ग्रंथ माला की ओर से लेकर आपकी सेवा मे प्रस्तुत हो रहे है।

(चौधरी) दीवानचन्द चानन राम जैन
गिद्दड़बाह जि० फीरोजपुर
पंजाब

समिति की ओर से

प्रातः स्मरणीय पूज्य श्री काशीराम स्मृति ग्रन्थ माला का यह पांचवां पुष्प चौ० दीवान चन्द चानन राम जैन मण्डी गिदड़बाह ने प्रकाशित कराकर समिति के प्रकाशन कार्य में जो प्रशंसनीय सहयोग प्रदान किया है, समिति उसके लिए उनका हार्दिक धन्यवाद करती है। लाला जी महाराज श्री के अनन्य भक्त हैं, और धार्मिक कार्यों में सदैव बढ़-चढ़ कर भाग लेते है; उनके द्वारा प्रकाशित यह पुस्तक समिति के प्रकाशनों में एक बहुमूल्य पुष्प की वृद्धि करता है। आशा है लाला जी भविष्य में भी इसी प्रकार धार्मिक ग्रन्थो के प्रकाशन में द्रव्य योग प्रदान करते रहेंगे।

व्यवस्थापक

पूज्य श्री काशीराम स्मृति ग्रन्थ माला

व्याख्याता का वक्तव्य

किसी भी विषय पर लेख लिखना और भाषण देना दो भिन्न बातें है। लेख लिखते समय लेखक के मस्तिष्क में वह विषय होता है, उसका अध्ययन, ज्ञान तथा लेखन कला उसके सहायक होते है और वह एकान्त मे बैठकर उस विषय की तह तक अपनी लेखनी को स्वच्छन्दता से पहुँचा सकता है। आवश्यकतापडने पर ग्रंथो, शास्त्रो आदि की सहायता भी ले सकता है। परंतु भाषण देते समय वह अपने ज्ञान तथा अध्ययन को अपनी स्मृति के आधार पर काम में ला सकता है। भाषण देते समय भूली हुई बातो को याद करने, शास्त्रो आदि को देखने का अवसर नही पाता, उसे केवल अपने मस्तिष्क से ही काम नहीं लेना होता, उसके कण्ठ को भी श्रम करना होता है और इसी के साथ-साथ उस समय के वातावरण, श्रोताओं के हाव-भाव, उनकी समझ के स्तर, उनकी रुचि आदि का भी वक्ता पर प्रभाव पडता है। अतएव यह कहना गलत न होगा कि भाषण द्वारा किसी विषय के सभी भागो पर प्रकाश डालना और इतना प्रकाश डालना कि सभी की शकाएं समाप्त हो सकें, सम्भव नहीं है। हा सम्भव भी है तो उसके लिए पूरी तैयारी होनी चाहिए और श्रोताओं का बौद्धिक स्तर उस विषय को पूर्णतया समझ सकने योग्य हो, वक्ता से छूटे हुए अङ्गो के सम्बन्ध मे प्रश्न उठाने की क्षमता व योग्यता हो।

मै अपने दैनिक कार्य-क्रम के अनुसार प्रतिदिन व्याख्यान किया करता था, श्री चौहान उन्हीं भाषणो के नोट्स ले लिया

करते थे। उन्हीं रिपोर्ट्स के आधार पर, यह पुस्तक तैयार हुई। इसमें जो कुछ कहा गया है, वह साधारणतया आम लोगों की समझ में आ सकने वाली मोटी-मोटी बातें हैं। पुस्तक रूप में प्रकाशित होने से लाभ यह हुआ है कि जो बात मैंने भटिण्डा के श्रोताओं को सुनाई थी, उसी बात को अनेक लोग जान सकेंगे। सम्पादक हमारे मतावलम्बी नहीं हैं। वे एक स्वतन्त्र विचारक तथा लेखक हैं। मेरे सम्पर्क में आने के पश्चात् ही उन्होंने जैन शास्त्रों का अध्ययन आरम्भ किया। इसलिए उनके द्वारा ली गई रिपोर्ट और फिर उसे लेख रूप देने में सम्भव है कहीं जैन पारिभाषिक शब्द प्रणाली का उल्लंघन हो गया हो। पर इस पुस्तक में कही गई बातें केवल किसी मतविशेष के लोगों के लिए नहीं, वरन् सारे मानव समाज के लिए हैं। आशा है, मानव समाज इस पुस्तक से कुछ सीखेगा।

मुनि शुक्लचन्द्र

भूमिका

हमारा देश आध्यात्मिक देश है। इस देश का इतिहास साक्षी है कि यहा कितने ही धर्मो, मतो और सम्प्रदायो ने जन्म लिया। इस देश के मनुष्य समाज मे कितने ही ऋषि, मुनि और महात्माओं ने जन्म लिया, अपने विचारो का प्रचार किया और लोगो ने उनके विचारो को अपने जीवन का आदर्श स्वीकार कर लिया। इस देश मे सदा ही लोगो ने अपने गुरुजनो, महापुरुषो और मुनियो के द्वारा वताए मार्ग को अपनाए रखने के लिए कितने ही वलिदान किए, उन्होने प्राणो का मोह त्याग कर अपने 'धर्म' की रक्षा की। विभिन्न मतावलम्बियो ने अपने-अपने मत की श्रेष्ठता सिद्ध करने, अपने 'मत' की ध्वजा को ऊँचा रखने के लिए रक्त की नदिया तक वहाई। परन्तु एक समय आया जब मनुष्य इस रक्तपात से ऊव गए और यह मानने पर विवश हुए कि रक्तपात, हिंसा मनुष्यत्व की शत्रु है। इस से कोई समस्या हल नही होने वाली। सत्य और प्रेम ही मनुष्यत्व के मूल सिद्धान्त है और केवल मनुष्य बनने, मनुष्यत्व को स्वीकार करने, प्रेम की सरिता वहाने मे ही कल्याण है। इस प्रकार के विचारो का प्रचार करने वाले थे जैन मुनि। 'जैन धर्म' ने यज्ञो मे होने वाले पशु वध का विरोध किया और ईश्वर तथा देवी-देवताओ को प्रसन्न करने के लिए पशुओं की आहुति को जघन्य पाप बता कर मनुष्य के हृदय को करुणा तथा जीव प्रेम से परिपूर्ण करने के लिए प्रयत्न किया, मनुष्य को वास्तविक मनुष्य बनने की प्रेरणा दी। इस

कारण मनुष्य समाज में मनुष्यत्व की प्रतिष्ठा स्थापित हुई। परन्तु मनुष्यत्व केवल अहिंसा पर ही तो आधारित नहीं है। उसके लिए अन्य सिद्धान्त भी है। हम केवल अहिंसा को अपनाकर ही पूर्ण मनुष्य नहीं बन सकते। हमें मनुष्यत्व के अन्य सिद्धान्तो को भी स्वीकार करना होगा। तीर्थङ्करों, जिन्हे जिन के नाम से भी पुकारा जाता है, ने मनुष्यत्व के लिए कुछ और भी नियम बताए, उन सभी नियमों के पालन कर्ता, अथवा जिन भाषित सिद्धान्तो को जीवन मे उतारने वाले 'जैन' कहलाए। महावीर स्वामी ने मनुष्य के लिए आवश्यक सभी नियमो तथा उपनियमों की व्याख्या की और प्रेरणा दी कि हे मनुष्य! तू अपने कल्याण के लिए इस मार्ग को अपना। उनके बताए हुए नियमों मे संकीर्णता नहीं, वे मनुष्य समाज मे किसी प्रकार के भेद-भाव और पक्षपात की 'लकीर' नहीं खींचते। वे ऐसे नियम है जिनका पालन करने वाला प्रत्येक व्यक्ति, चाहे अपने को जैनी कहे अथवा न कहे, पर 'श्रेष्ठ' बन जाता है, और मनुष्य समाज मे प्रतिष्ठित स्थान पा सकता है। वे सभी सिद्धान्त, नियम तथा आदर्श शास्त्रो मे आज भी उपलब्ध हैं।

जिन भाषित सिद्धान्तों को मानने वाले आज भी हमारे देश में कितने ही लोग हैं, मुनिगण आज भी प्रतिदिन उन सिद्धान्तों के प्रचार मे रत हैं, आज भी उन शास्त्रों का पाठ किया जाता है, पर महावीर स्वामी मनुष्य को जैसा देखना चाहते थे, जिस प्रकार का बनने की उनकी इच्छा थी, वैसे मनुष्य आज कम ही संख्या मे दिखाई देते हैं और आज यह पहचानना कठिन हो गया है कि जैनी कौन है और अजैनी कौन? आर्य कौन है और अनार्य कौन? क्योंकि जैनी और अजैनी, आर्य और अनार्य, दोनो ही एक ही प्रकार का जीवन व्यतीत कर रहे है। भोग, विलास, धनोपार्जन और स्वार्थ

सिद्धि को सभी ने अपने जीवन का मूल मंत्र स्वीकार कर लिया है। जबकि एक जैनी अथवा आर्य से आशा की जाती है कि वह समाज का आदर्श होगा, वह श्रेष्ठ तथा वास्तविक मनुष्य होगा। इसका मुख्य कारण यह है कि हमारे समाज में उन सिद्धान्तों को जो अकाट्य है, जो मानव जाति के कल्याण के लिए अत्युत्तम तथा अनुपम है, स्वीकार करना और रूढ़िवादी होना एक बात मानी जाने लगी है। हमारे समाज का यह भ्रम समाज को पतित और दूषित करने का कारण बन रहा है। लोगों में यह भ्रम फैल गया है कि शास्त्रों में वर्णित मानवोपयोगी सिद्धान्तों से वर्तमान प्रगतिशील युग के जीवन का कोई सम्बन्ध ही नहीं है। जबकि यदि हम गूढ दृष्टि से देखें तो वह जो आज हम आवश्यक मान बैठे है, हमारे मिथ्यात्व के कारण ही आवश्यक प्रतीत होता है। युग ने भले ही जीविका उपार्जन के साधन और परिस्थितियों, रहन-सहन के तरीकों, सोचने-समझने के तरीकों, व्यवहार, मनो-भाव, स्वभाव, उत्पादन के साधनों, मनुष्यों के परस्पर सम्बन्धों आदि में परिवर्तन ला दिया हो, पर यह परिवर्तन भी मनुष्यत्व की परिभाषा और मनुष्य के धर्म में कोई अन्तर नहीं ला सकता। हम आज भी मनुष्य है, हमारी इन्द्रियां वही है, शरीर का ढांचा वैसा ही है, आत्मा आज भी शरीर में विद्यमान है और हमारे कर्तव्य आज भी हमारे चारों ओर बिखरे पड़े है। आज भी श्रेष्ठता की प्रतिष्ठा है। आज भी मोक्ष की मनुष्य को उतनी ही आवश्यकता है जितनी पहले थी। शास्त्रों में जो कुछ ज्ञान विद्यमान है वह हमारे जीवन के लिए उतना ही उपयोगी है, जितना अब से सहस्र शताब्दी पूर्व था। आज विज्ञान की उन्नति ने भले ही मनुष्य की सुख-सुविधा के लिए कितने ही अनुपम उपाय तथा साधन प्रस्तुत कर दिये हो, पर वर्तमान संसार में मनुष्य को शास्त्रों में वर्णित नियमों के पालन

की पहले से भी अधिक आवश्यकता पड़ गई है। आज के समाज में यद्यपि विज्ञान की उन्नति ने मानव जाति की समृद्धि के नए मार्ग खोल दिये हैं तथापि दोषों की भी एक भारी मात्रा ने हमारे समाज में घर कर लिया है। मनुष्य नए आविष्कारों की चका-चौंध में मनुष्यत्व के पथ से ही भटक गया है और उसे आवश्य-कता है मानवता की शिक्षा की। तभी उसका कल्याण हो सकता है। समाज में फैली पाशविकता, वैमनस्यता और अमानवीयता को दूर न किया गया तो भय है कि वर्तमान विश्व नष्ट तो नहीं हो जायेगा। जहां मानव अपने साधनों का विकास कर रहा है, प्रकृति को अपने आधीन करने की चेष्टा में जुटा हुआ है, वहीं आज का मनुष्य मानव समाज का संहार करने, नष्ट कर डालने के लिए उससे भी अधिक परिश्रम कर रहा है। नये-नये मानव संहारक अस्त्रों का निर्माण हो रहा है। अणु और उद्जन बमों का उत्पादन तेजी से बढ़ रहा है। मनुष्य में अपने स्वार्थ के लिए सारे संसार तक को भस्म कर डालने तक की कुचेष्टा आ गई है। उसे मनुष्यत्व का ज्ञान नहीं है। पाशविक शक्ति का ही नाम 'शक्ति' मान लिया गया है। क्योंकि हम क्या है, क्यों है, और हमें क्या चाहिए, क्या नहीं, हमारा कल्याण कैसे हो सकता है, हमारा लक्ष्य क्या है? इनका वर्तमान मनुष्य को ज्ञान ही नहीं है। क्योंकि उसने उन महापुरुषों के कथन को भुला दिया जिनका जीवन समस्त संसार के लिए रहा और जिनकी शिक्षायें मानव जाति की अमूल्य निधि है।

आज मनुष्य को सच्चा आदमी बनाने के लिए नागरिक शास्त्र, समाज शास्त्र और मनोविज्ञान शास्त्र की शिक्षा देना आव-श्यक माना गया है। यह इस सत्य को प्रमाणित करता है कि मनुष्य को अन्य मनुष्यों के साथ सद्व्यवहार करने, अपने कर्तव्यों और अधिकारों को जानने, अपने चरित्र को बनाने और

ग्राम, नगर, कुल, गण, संघ आदि के प्रति अपने सही रुख को जानने की नितान्त आवश्यकता है। परन्तु नए शास्त्र रचने की जो आवश्यकता महसूस की जा रही है वह इस बात की परिचायक है कि हमे यह भी ज्ञान नहीं है कि जिनकी आवश्यकता अनुभव की जा रही है, वह तो हमारे शास्त्रो मे पहले से ही विद्यमान है। मैं पाश्चात्य जगत् की बात नहीं कहता, पर अपने देश की बात कहता हू कि हमे यह सौभाग्य प्राप्त है और इस पर हम गर्व कर सकते हैं कि हमारे पास वह है जो मनुष्य को 'महान्-आत्मा' मे परिणत करने मे सफल हो सकता है। वह वस्तु है हमारे शास्त्र। जिन शास्त्रो की आज भी युवक समाज अवहेलना करता है, उनमे तो वह सूत्र विद्यमान है जिनकी अपने जीवन को आदर्श एव श्रेष्ठ बनाने के लिए अत्यन्त आवश्यकता है। अन्तर केवल इतना है कि शास्त्रो मे वही बात जो प्रत्येक युग मे मनुष्य को दीपशिखा का काम देगी सूत्र रूप है। हम उनकी व्याख्या करके देखें तो हमे वह मिल जायेगा जिसकी हम खोज कर रहे है और जो हमारे लिए उपयोगी है। 'धर्म दर्शन' मे शास्त्रो मे वर्णित मनुष्यों के लिए बताए गए 'दस धर्मों' की व्याख्या से आप समझ जायेगे कि वे पुरातन सिद्धान्त जिनकी ओर हमारी दृष्टि नहीं जाती, हमारे लिए कितने उपयोगी है ?

धर्म की जब बात की जाती है तो लोग आज के युग मे उसका अर्थ लगाते है, मनुष्य को रूढ़िवादी राम-राम की तोता-रटन्त मे लगाने और युगो मे पीछे खींच ले जाने के लिए युगों पुरानी बातो के चक्कर मे फासने की बात। लोग धर्म का पोगापथी बात समझने लगे है। इसका कारण यह है कि कुछ सम्प्रदायों ने इतनी थोथी और अमानवीय बाते धर्म के नाम पर कह डालीं और प्रचलित कर डाली कि नए युग के नये युवक को उस से घृणा ही जाती है। पर घृणा जिससे होती है और होनी भी

चाहिए वह धर्म नहीं आडम्बर है। कुछ मतावलम्बियों ने ढोंग और मिथ्याडम्बरों का नाम ही धर्म रख दिया, इस प्रकार वे मिथ्याडम्बरी अध्यात्मवादी 'धर्म' के इतने भयकर शत्रु सिद्ध हुए, जितने वह नहीं जो अध्यात्मवादी नहीं हैं। प्रचलित प्रथाओं को मानते रहकर, आडम्बरों का अनुमोदन करना, थोथे विचारों की प्रशसा करना, केवल राम-राम जपते रहने, कीर्तन व घटा हिलाने आदि पर जोर देने वाले धर्मी जन नहीं कहे जा सकते। और न ऐसा करने से वह मोक्ष ही प्राप्त हो सकता है, जिसके लिए वे लालायित है। कुछ लोग समझते है कि शास्त्रों के मत्रोच्चारण मात्र से ही स्वर्ग मिल जाता है, वे बड़े धोखे मे फसे हैं। कुछ लोग तीर्थ यात्रा को ही मोक्ष प्राप्ति का साधन मान बैठे हैं। जब तीर्थ यात्रा और मत्रोच्चारण से मोक्ष मिल जाता है तो इसके लिए अधिक मूल्य क्यों चुकाए ? साधना का सकट क्यों झेले ? मानव समाज मे जब से यह भ्रमपूर्ण धारणा घर कर गई तभी से पवित्रता नीचे गिर गई और पवित्रता के स्थान पर मनुष्य के हृदय मे अभिमान, अहकार, द्वेष, घृणा आदि विकार उत्पन्न हो गए। महावीर स्वामी स्पष्ट शब्दो मे कहते है :—

न चित्ता तायए भासा विग्जाणुसासण।
वायावीरियमित्तेण समासासेनि अप्पय॥

तुम जो सस्कृत भाषा और प्राकृत भाषा के फव्वारे अपने मुख से छोड रहे हो और समझ रहे हो कि इनका पाठ कर लेने भर से मोक्ष मिल जायेगा, सो नहीं होगा। सारे ससार की नाना प्रकार की विद्याएँ और भाषाएँ सीख लेने पर भी तुम्हारा त्राण नहीं हो सकता। यदि तुम त्राण चाहते हो और निर्वाण पाने की अभिलाषा रखते हो तो तुम्हे आचरण करना पडेगा। आप ही सोचिए कि कोई रोगी वैद्य जी, आयुर्वेदिक विज्ञान के निपुण वैद्य, से एक ऐसा नुस्खा लिखा लाए जिसमे उत्तम से उत्तम

औषधिया लिखी हों, और उसे सुबह-शाम पढ लिया करे, तो क्या उससे रोग दूर हो जायेगा ? नहीं, नुस्खा पढ लेने मात्र से यदि रोग दूर होने लगे तो फिर औषधियो की क्या आवश्यकता रहे। एक योगी ने कहा '—

कायेनेव पठिष्यामि वाक्पाठेन तु किं भवेन ?
चिकित्सापाठमात्रेण, नहि रोग शम व्रजेन ॥

जो भी शास्त्र मुझे पढना है वह मै जीवन मे पढ़ूँगा, जबान से नहीं पढ़ूँगा। जबान से बोल लेने से क्या होने वाला है ? आयुर्वेद की पुस्तकों के रट लेने से और चरक तथा सुश्रुत को घोट लेने मात्र से कोई नीरोग नहीं हो सकता। सहस्त्र वर्ष तक रटा करो तो भी उससे मामूली बुखार और तनिक सा सिर दर्द भी दूर नहीं होगा, उलटा शरीर गलता और सडता जायेगा।

यही बात धर्मशास्त्रों के सम्बन्ध मे है। धर्मशास्त्र भी तो हमारी चिकित्सा के लिए ही है। आयुर्वेद शास्त्र मे शरीर की चिकित्सा की जाती है। अत. धर्मशास्त्र और उनके मत्र केवल जिह्वा से उच्चारण करने हेतु ही नहीं होते वरन् उनमे जो ज्ञान निहित है उसे जीवन मे अङ्गीकार करना चाहिए। जिन्होंने 'तोता रटन्त' को ही धर्म बना दिया है, उन्होंने आगामी सन्तानों की धर्म की ओर से रुचि ही हटा दी है।

कुछ लोगो ने अपने रीति-रिवाजों को ही धर्म का नाम दे दिया है। रीति-रिवाज तो बदल भी सकते है। ज्यो-ज्यो मनुष्य सभ्य होगा, उतना ही वह 'लकीर का फकीर' बनने से इकार करेगा। अत' जो केवल रीति-रिवाजों और मिथ्या विश्वासों को ही धर्म मान बैठे है वे स्वय तो धोखे मे हैं ही, भावी सन्तानो का भी अपयश कर रहे है। अत वे पाप कमा रहे हैं। चाणक्यनीति

सार में कहा गया है कि :—

मूख कुल आचार थो, जाग्रत धर्म सदीव।
वस्तु स्वभाव धर्म सुधी, कहत अनुभवी जीव॥

धर्म तो वस्तु के स्वभाव को कहते है। आत्मा का स्वभाव जो है उसका पालन करना ही धर्म का पालन करना है। मनुष्य के कर्तव्य उसकी आत्मा के स्वभाव पर अवलम्बित हैं और उन कर्तव्यों की सूची ही उसका सम्पूर्ण धर्म कहलाती है। जो 'धर्म' आपको जीने का सलीका, सद्व्यवहार, सच्चरित्रता और उच्च-विचार नहीं सिखाता वह 'धर्म' नहीं आडम्बर है। चाणक्य का मत है कि :—

आडम्बर तजि कीजिए, गुण सग्रह चित्त चांहि।
दूध रहित गउ नहीं बिकै, आनी कण्ट वजाहि॥

विना दूध की गाय कोई नहीं खरीदता, उसी प्रकार विना गुणों के मनुष्य का आदर नहीं होता अत आडम्बर त्याग कर गुण सग्रह मे लग जाइये।—और यह गुण कहा है ?—वह आपके शास्त्रो मे लिपिवद्ध है आपकी आत्मा के स्वभाव मे निहित है। शास्त्र और महापुरुष आपको आपकी उस आत्मा का स्वभाव वताते हैं जिन पर आज प्रकृति का आवरण पड़ा है। आवरण हीन आत्मा के स्वभाव को ही आप अपनाले तो फिर आप का कल्याण अवश्यम्भावी है।

मुख्य बात तो यह है कि आपका आचरण कैसा है ? आपके आचरण से ही आपके हृदय और आपकी आत्मा का पता चलता है। आपका आचरण ही आपकी कसोटी है। मनुष्य को श्रेष्ठ और पतित, आर्य तथा अनार्य वताने के लिए उसके आचरण को देखा जाता है। अतएव आपको अपने आचरण को शुद्ध करना है। और आचरण शुद्ध करने के लिए शुद्ध व अशुद्ध के बीच रेखा खींचने की बुद्धि आप मे होनी चाहिए। यद्यपि गीता मे कृष्ण

कहते है —

कि कर्म किमकर्मेति कवयोऽप्यत्र मोहिता' ।

कर्म क्या है और अकर्म क्या है? धर्म क्या है और अधर्म क्या है? पुण्य क्या है और पाप क्या है? इनका निर्णय करने मे बडे-बड़े विद्वान् भी चकरा जाते हैं। तथापि आप यदि महा पुरुषों द्वारा शास्त्रो मे बताए गए मार्ग का अनुसरण करें और सत्य के लिए प्रत्येक त्याग करने को तैयार रहे, तो आप कभी नहीं भटक सकते। आप बस एक बार अपने धर्म को अच्छी प्रकार हृदयगम करले और उस पर चल पडे, बिना इधर-उधर देखे। प्रस्तुत पुस्तक मे जैन शास्त्रो मे बताए गए व्यक्ति के दस धर्मों की ही व्याख्या की गई है। आपको वह राह बताने के लिए जो आपके लिए कल्याणकारी है। और मै यह भी दावे के साथ कहता हूँ कि उन सभी धर्मों का जिन पर इस पुस्तक मे प्रकाश डाला गया है कोई विरोध कर ही नही सकता। सूत्रो की बात है, उसके सम्बन्ध मे मै अपने ज्ञान के आधार पर कह सकता हूँ कि सूत्र विभिन्न धर्मो मे मनुष्य को मनुष्यत्व की शिक्षा देने के सम्बन्ध मे समान ही है। हा, भगवान् क्या है, उसका स्वरूप क्या है? भगवान् और मनुष्य के बीच क्या सम्बन्ध है, आदि प्रश्नो पर मतभेद हो सकता है। परन्तु इन बातो से कौन इकार कर सकता है कि हे मनुष्य यदि तू वास्तविक मनुष्य बनना चाहता है तो अपने ग्राम, नगर, कुल, गण, सघ आदि के प्रति अपने कर्तव्यो को, जो तेरा धर्म है, समझ और उस के अनुरूप आचरण कर।

जैन शास्त्रो के अनुसार मोक्ष का एक सच्चिदानन्द भवन है। जैसे कि किसी भी भवन पर चढने के लिए सीढ़ियॉ होती है, जिसे जीना भी कहते है, इसी प्रकार इस सच्चिदानन्द भवन की भी सीढ़िया है। उस पर चढ़ने के लिए मनुष्य को उन

सीढ़ियों का ज्ञान होना चाहिए और होनी चाहिए उन सीढियों पर चल सकने की शक्ति। यदि मनुष्य उन सीढ़ियों पर क्रमानुसार पग रखता चला जाता है, और बिना रुके व विश्राम किए वह चढ़ता ही चला जाता है तो वह अपने लक्ष्य तक पहुँच जाता है। मोक्ष प्राप्त कर लेता है परन्तु जो बीच ही में विश्राम करने की सोचता है, बीच ही में रुक जाता है, वह मजिल तक नहीं पहुँच सकता। जब एक बार मनुष्य इन सीढ़ियों पर चलने लगता है तो पाप आकर्षक छद्म वेष धर कर उसे अपनी ओर पुकारता है। उस पुकार में भयकर आकर्षण होता है। यदि इस आकर्षण में मनुष्य फस जाता है तो वह नीचे लुढ़क पडता है। यह मार्ग सत्य का मार्ग कहलाता है। एक सन्त ने कहा है—

क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया,
दुर्गं पथस्तत् कवयो वदन्ति। —कठोपनिषद्

छुरे की धार पर चलना कठिन है, जिस मार्ग मे छुरे बिछे हों और तलवारों की नोक ऊपर उठीं हों, उस मार्ग पर चलने वाला कितनी सावधानी से और कितनी बड़ी तैयारी के साथ एक एक कदम रखता है और कितनी तटस्थता रखता है और आखिर नाच ही जाता है। मगर सत्य की राह छुरे की धार से भी टेढ़ी है और विद्वान उसे दुर्गम बताते हैं। बडे-बड़े विद्वान भी वहां चलते-चलते गडबड में पड़ जाते है। किन्तु इस से भयभीत हो जाने की आवश्यकता नहीं है। क्योंकि वह मार्ग भी तो हम मनुष्यों के लिए ही बना है। जो सयमी मनुष्य होते है वे उस दुर्गम पथ पर उन दुर्गम सीढ़ियो पर चढते ही है और आखिर में वे अपनी मजिल को पहुँच ही जाते है। वे मोक्ष प्राप्त करके चिर आनन्द प्राप्त करते है।

जैन शास्त्र कहते है कि चिर सुख अथवा मोक्ष प्राप्ति के लिए दो रास्ते है, जो एक-दूसरे के पूरक व सहायक हैं अर्थात् दोनों

आवश्यक है। पर इन दोनो मे कुछ भेद है—

१—निश्चय धर्म, जिसे लोकोत्तर धर्म भी कहते हैं।

२—व्यवहार धर्म, जिसे लौकिक धर्म भी कहा जाता है।

व्यवहार धर्म द्वारा ही निश्चय धर्म का पालन होता है। व्यवहार धर्म के द्वारा ही निश्चय धर्म की सीढ़ियो पर चढा जाता है। व्यवहार की कसौटी पर कसे बिना निश्चय प्रगट नहीं होता। अत निश्चय धर्म को निभाने के लिए व्यवहार को उसके अनुरूप बनाना चाहिए। अतएव यह सिद्ध होता है कि आत्मा के निश्चय धर्म के साथ-साथ व्यवहार धर्म भी अत्यावश्यक है। यूं समझिए कि धर्म के दो स्तम्भ है, व्यवहार और निश्चय, दोनो में से एक भी गिर जाय तो धर्म नही ठहर सकता। व्यवहार धर्म, मोक्षप्राप्ति के सघर्ष की भूमिका होती है। यह एक आधार है जो मनुष्य को मुक्ति पथ पर खडा रखता है—और व्यवहार धर्म के दस सोपान हैं, दस स्तम्भ अथवा दस अग है। प्रस्तुत पुस्तक मे उन्ही सोपान, स्तम्भो, अथवा अगो का दिग्दर्शन कराया गया है। यह मनुष्य के मानव समाज मे मनुष्यत्व की श्रेणी मे रहने के लिए मूलसिद्धान्त है जिनकी व्याख्या की गई हे। वल्कि धर्म के गूढ विषय मे प्रवेश करने के लिए यह दस धर्म आप को प्रेरित करते है। यह द्वार की सीढिया है जिन्हे पार करके ही आप उस सच्चिदानन्द भवन के द्वार तक पहुच सकते है। जिसके ऊपर की सीढ़िया आपको 'शिव' पद तक पहुँचा देगी।

आप 'धर्म दर्शन' मे दिए गए दस धर्मो की व्याख्या को पढकर यह समझ जायेंगे कि जिन्हे हम युगो पुरानी बाते समझते हैं; आज के युग मे वह कितनी आवश्यक व उपयोगी है। आप भी यदि अपने को 'मानव', सही अर्थो मे मानव कहलाना चाहते है तो आप को अपने ग्राम, नगर, राष्ट्र, कुल, गण, संघ आदि से सम्बन्धित अपने कर्तव्यो को पूरा करना होगा। आज विनोवाभावे

ग्राम धर्म पर जोर दे रहे हैं, कुछ लोगों को इस समय आश्चर्य होता है जब वे विनोबा जी से ग्राम धर्म का नाम सुनते हैं, परंतु उन्हें कदाचित् यह जानकर आश्चर्य होगा कि जैन शास्त्रकारों ने शताब्दियों पूर्व ही ग्राम के प्रति ग्रामीण के कर्तव्यों की सूचि को ग्राम धर्म में लिपिबद्ध कर दिया है। जैन शास्त्रों में दिए गए ग्राम, नगर, राष्ट्र और संघ धर्म को यदि भारतवासी समझते और उसके अनुरूप ही अपना आचरण बनाते तो भारत को कभी दासता का मुंह न देखना पड़ता। आज राष्ट्र के पुनरुत्थान का प्रश्न है, हमें अपने ग्राम, अपने नगर और राष्ट्र को प्रगति के पथ पर ले जाना है। तो उनके प्रति अपने कर्तव्य को समझकर उनके निर्माण में अपने को झोंक देना होगा। कुल, गण और संघ के प्रति अपने कर्तव्य अथवा धर्म को निभाना क्यों आवश्यक है वह आप इस पुस्तक में पढ़ेंगे ही। पर यह तो सर्वविदित सत्य है, कि जो अपने आचरण से अपने कुल, गण और संघ को उन्नतिशील एवं उच्च नहीं बना सकता, उसे मनुष्य कहलाने का कोई अधिकार नहीं। ठीक इसी प्रकार जैसे जो ग्राम, नगर, और राष्ट्र के प्रति अपने कर्तव्य को नहीं निभाता, उसे मनुष्य कहलाने और उस ग्राम अथवा नगर और राष्ट्र में रहने का भी कोई अधिकार नहीं। जो केवल अपना पेट पालने पर ही अपने जीवन की इतिश्री किए बैठे हैं। उनमें और उन पशुओं में भला क्या अन्तर है जो इधर-उधर फिर-फिराकर किसी प्रकार अपना पेट भर लेते हैं।

पुस्तक में पाखण्ड धर्म के नाम से 'एक सोपान' दिया गया है। इस धर्म की व्याख्या पढ़कर कितने ही लोगों की आँखें खुल जायेंगी। आँखें खुलेंगी इसलिए कि जैन शास्त्रों में पाखण्ड धर्म नाम से एक धर्म विद्यमान है और हम पाखण्ड को आडम्बर के लिए प्रयोग करते हैं। इस धर्म की व्याख्या करते हुए व्याख्या-

कार ने वारम्वार मिथ्याडम्बरों पर चोट की है, जो वास्तव मे अंधविश्वासियों की आँखे खोल देगी। कितना पाप है, आज धर्म के नाम पर, यदि इस पर दृष्टि डाली जाय तो हृदय काप उठता है और प्रश्न उठ जाता है कि इतने अन्याय और पापो के उपरान्त भी हम अपने को मनुष्य कहलाने का दावा करते है तो क्या मनुष्य ऐसे ही पाशविक मनोवृत्ति के जीव को कहते हैं?— नहीं! मनुष्य महान् है, वे जो आडम्बरो के दास है, मनुष्य रूप मे भी पशु समान ही हैं। इसका कारण यह है कि उनकी आखो पर आडम्बरो की पट्टी बधी है। पाखण्ड धर्म की व्याख्या करके व्याख्याता ने उस पट्टी को खोल फेकने और अधकार से प्रकाश मे आने की प्रेरणा दी है।

चारित्र धर्म के आधीन व्याख्याता ने जैन धर्म के कई शास्त्रों का निचोड दे दिया है। जिस से ज्ञात होता है कि जैन शास्त्रकार मनुष्य को किस दिशा मे ले जाने के इच्छुक हैं। अहिसा जो आज अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र की राजनीति मे भी स्थान पाने लगी है, एक ऐसा सिद्धान्त है जिस पर मनुष्यत्व आधारित है। चारित्र धर्म की व्याख्या करते हुए उस पर प्रकाश डालकर अहिसा की ओर मनुष्य को प्रेरित किया गया है।

श्रमण सघ के पजाब मत्री पण्डित रत्न १००८ श्री शुक्लचन्द्र जी महाराज प्रतिष्ठित एव आदरणीय सन्यासी है, उन्होने जीवन के वे दिन जो स्वर्णिम कहे जाते है, वैराग्य से व्यतीत किए हैं। इस पुस्तक मे उनके जीवन की भी एक झाकी दी गई है, जिससे प्रतीत होता है कि उन्होने युवावस्था मे ही सयम धारण किया और आज तक देश के विभिन्न प्रान्तो मे भ्रमण करके तप और ज्ञानदान का कार्य बडी सफलता के साथ किया। यह पुस्तक उनके व्याख्यान से ही तैयार की गई है। इन व्याख्यानो मे शास्त्रो-का सार भी है और वयोवृद्ध मुनिवर के अनुभव भी है। इस

परिवर्तित युग मे उठने वाली समस्याओं को सामने रख कर ही यह व्याख्यान दिए गए हैं, अत. इससे यह सिद्ध हो जाता है कि जैन शास्त्रो में वर्णित धर्मों की परिधि कितनी व्यापक है। व्याख्याता ने जो कुछ कहा है वह शास्त्रों, अपने अनुभवो, आज के मनुष्यों और वर्तमान परिस्थितियों को सामने रखकर कहा है। अत. प्रस्तुत पुस्तक मे आपको व्यवहार धर्म के दस सोपान वर्तमान युग के साचे में ढले मिलेगे, इन्हे पढकर यह भ्रम होने होने लगेगा कि कहीं उक्त सोपान वर्तमान युग को ही सामने रखकर तो नहीं बनाए गए। इस पुस्तक को पढ़कर आप अनुभव कर सकेंगे कि विद्वान् व्याख्याता को इस विषय का जितना ज्ञान है, उतना ही वर्तमान युग की परिस्थितियों, आवश्यकताओं और समस्याओं का भी है। व्याख्याता प० शुक्लचन्द्र जी महाराज की शैली सजी हुई और आकर्षक है। उनकी वाणी में ओज है, और उनका हृदय विशाल है। ग्राम धर्म से लेकर अस्तिकाय धर्म तक पढ़ जाइये, पाठक कहीं भी ऊब न सकेगा, क्योंकि जहां प्रत्येक विषय पर प्रत्येक धर्म के ठोस सिद्धान्त हैं, वहीं दृष्टांत देकर भी विषय को समझाया गया है, जिससे पुस्तक में रोचकता आगई है। अतएव पुस्तक ऐसी बन गई है कि एक बार हाथ मे लेकर छोड़ने को जी नहीं चाहेगा। दृष्टान्त पढ़ते-पढ़ते जहा पाठक का मनोरंजन होगा वहीं कितनी ही ज्ञानवर्धक बातें उसके मस्तिष्क मे प्रवेश कर जायेगी। धार्मिक पुस्तकें यदि ऐसी ही रोचक और वर्तमान समस्याओं को इसी प्रकार ध्यान मे रख कर लिखी जाय तो वर्तमान युग के युवक धर्म विषय को रूखा समझकर दूषित साहित्य की ओर आकर्षित न हों। पुस्तकों मे मिथ्याडम्बरों का जिस निर्भयता से 'पोस्ट मार्टम' (शव परीक्षा) किया गया है, उसे देखकर यदि स्वामी दयानन्द सरस्वती की याद आये तो आश्चर्य नहीं।

'धर्म दर्शन' में एक बात विशेषतया प्रशंसनीय है कि पुस्तक में विभिन्न मतावलम्बियों के कथन और दृष्टांत दिये गए हैं। विभिन्न देशों के उदाहरण दिए गए हैं। यह व्याख्याता के हृदय की विशालता को सिद्ध कर देगा। और इस कारण ही इस पुस्तक को देखकर कहा जा सकता है कि जैन मुनि की यह पुस्तक केवल जैनियों के लिए ही न होकर समस्त मानव समाज के लिए है। है। आज ऐसी पुस्तकें तो बहुत हैं जो किसी एक विशेष 'मत' को सामने रख कर उस के अनुयायियों के लिये, धर्म विषय पर लिखी गई है, पर ऐसी पुस्तकें कम ही हैं जिन्हें समस्त धर्मावलम्बी पसंद करें। जहां आवश्यकता पड़ी है वहां मिथ्याडम्बरों का खण्डन करते समय किसी के साथ पक्षपात नहीं किया गया।

हां, पुस्तक के सम्बन्ध में कुछ कहते समय हम श्री बाबूसिंह चौहान के परिश्रम को भी नहीं भूल सकते। उन की लेखनी ने व्याख्याता के प्रवचनों को एक सुन्दर और प्रभावशाली शैली से कागज पर उतार दिया है। यदि महाराज श्री ने मोती बखेरे तो श्री चौहान ने उन मोतियों को सुघड़ता से एक लड़ी में पिरोया। यदि व्याख्याता ने रत्न दिए तो उन्हें काट-छांट कर उन्होंने सुन्दर रूप में आप के सामने प्रस्तुत कर दिया। उक्त पुस्तक उन की योग्यता की भी परिचायक है। ये जैन धर्म के अनुयायी नहीं हैं, फिर भी व्याख्यानों को सुन कर ही जैन शास्त्रों में वर्णित दस धर्मों को उन्होंने इस प्रकार लिख डाला है कि आश्चर्य होता है। पुस्तक पढ़ कर पाठक श्री चौहान की योग्यता के भी कायल हो जायेंगे, क्योंकि उन्हों ने व्याख्यानों को जिस प्रकार सजाया है, उस से ऐसा नहीं लगता कि यह पुस्तक केवल व्याख्यानों की रिपोर्ट ही है मैं समझता हूँ कि विद्वान् एवं शास्त्रज्ञ मुनि गण के व्याख्यानों को इसी प्रकार पुस्तकों के रूप में प्रकाशित किया जाय तो मानव समाज काफी लाभ उठा सकता है। परन्तु शर्त यह है कि उन के

प्रवचन इसी शैली मे लिपि बद्ध किए जायें। व्याख्यानो को संग्रह करने वालों की योग्यता एवं लेखन शैली ही संग्रह को अधिक लाभदायक एवं रोचक वना सकती है क्योकि व्याख्याता विचार देता है और संग्रहकर्त्ता अथवा सम्पादक, उन्हे भाषा की डोर मे पिरो देता है।

मुझे आशा है कि पाठक गण पुस्तक को पसन्द करेंगे और अपने कर्तव्य तथा धर्म को समझकर, सत्य मार्ग अपनायेगे।

महावीर भवन
उज्जैन (मध्य भारत)

—मुनि सुशील कुमार
११ अक्तूबर १९५५

जैन भूषण

पण्डितरत्न श्री शुक्लचन्द्रजी महाराज

की

जीवन झांकी

महान् योगी, पण्डित रत्न श्री शुक्लचन्द्र जी महाराज का जन्म एक साधारण ब्राह्मण परिवार मे हुआ था। उनके दादा श्री प० आनन्दस्वरूप जी दडौली जि० गुडगावॉ के निवासी थे। उनके दो पुत्र थे पं० वलदेव जी शर्मा और प० चुन्नीलाल जी शर्मा। एक वार प० वलदेव जी को उनके चाचा जी ने खेतो पर काम करते मजदूरो के काम की देखभाल के लिए भेजा। उन्होने देखा कि चिलचिलाती धूप मे भी मजदूर मेहनत कर रहे है। चोटी से एडी तक पसीने की धार फूट रही है। चिलचिलाती धूप मे प० वलदेव जी स्वय काम करते मजदूरो के पास खड़े रहे। पर जब सूर्य के आग्नेय वाणो को वे सहन न कर

सके तो उन्हे ध्यान आया, उन मजदूरो का, जो कडा परिश्रम कर रहे थे। उन्होने मजदूरा से पूछा कि "आकाश से तो आग वरस रही है फिर क्या आप लोगो को यह कडी धूप असह्य नही है ?"

मजदूर बोले "पडित जी पेट के लिए चिल-चिलाती धूप और रक्त जमाने वाली सरदी सभी तो सहन करनी पडती है। मालिक ! आप सामने खडे है तो फिर हमारी क्या मजाल जो दो मिनट आराम कर सके।"

"और यदि मै न होता तो" पडित वलदेव जी ने पूछा।

मजदूरो ने कहा, "मालिक ! हम भी इन्सान ही है। इतनी आग वरस रही है, सारा शरीर झुलसा जा रहा है फिर तवीयत तो आराम करने को हमारी भी रहती है। आप न होते तो कुछ देर छाया मे वैठकर आराम लेते ही।"

प० वलदेव जी ने मन मे सोचा कि जव मै इतनी धूप मे खडा तक नही रह सकता तो फिर यह वेचारे मजदूर काम कैसे कर सकते है ? और उन्होने मजदूरो को वृक्ष के नीचे कुछ देर आराम करने की आज्ञा दे दी। मजदूर वड़े प्रसन्न हुए।

इसी प्रकार कार्य चलता रहा। जब भी गर्मी मजदूरों को परेशान कर डालती वे वृक्षकी छाया मे सुस्ताने के लिए बैठ जाते। तीन दिन के पश्चात् प० बलदेव जी के चाचा प० घनश्याम जी स्वय कार्य का निरीक्षण करने के लिए जा धमके। भाग्यवश उस समय मजदूर पडित जी के साथ वृक्ष की छाया मे बैठे आराम कर रहे थे। प० घनश्याम जी शर्मा को यह देख कर बडा क्रोध आया और पण्डित जी को आवेश मे आकर कुछ कह डाला। पण्डित जी ने कहा "आप और मेरी तरह यह मजदूर भी इन्सान ही है, हम इन्हे मजदूरी देते है तो इसका यह अर्थ नही है कि इनसे पशुओ की भाति काम ले। ऐसी गर्मी मे तो पशु भी कार्य नही कर सकते। यदि मैने इन्हे सुस्ताने की आज्ञा दे दी तो कोन बुरी बात की है ?"

परन्तु पण्डित घनश्याम जी को उनकी यह बात भली न लगी, वे बिगड पडे। जिससे रुष्ट हो कर दूसरे दिन ही प० बलदेव जी घर छोड कर अहमदाबाद चले गए। जहा उन्होने कपडे की दुकान खोल ली और अपनी पत्नी श्रीमती महताव कुमारी जी को भी अपने पास बुला लिया।

अहमदाबाद ही मे एक दिन श्रीमती महताब

कुमारी जी ने एक वालक को जन्म दिया। जिसका नाम भोज रखा गया। जो आगे चल कर महात्मा शुक्लचन्द्र जी के नाम से प्रसिद्ध हुए। परन्तु उस दिन किसी को पता नही था कि गोड ब्राह्मण कुल मे जन्म लेने वाले वालक ने एक दिन मानव कल्याण के लिए घर त्याग कर वैराग्य जीवन व्यतीत करना है। हाँ, भोज के दैविक गुणो और ओजपूर्ण मुख मण्डल को देख कर सारे ब्राह्मण कह ही उठने "प० वलदेव जी ! आप का पुत्र एक दिन एक महान् आत्मा वनेगा।" प० वलदेव जी तथा महताव कुमारी जी उनकी भविष्य वाणी सुन कर आनन्द विभोर हो जाते। वे तो समझते थे कि वालक का भविष्य उज्ज्वल है। यह कोई वडा आदमी वनेगा। परन्तु यदि वे भविष्य वाणी का अर्थ यह निकालने कि भोजराज एक महान् तपस्वी वनेगा तो कदाचित् आनन्द की इतनो तरग उनके मन मे न उठती।

दडौली से अपने पिता जी श्री आनन्द स्वरूप जी के वीमार पडजाने का समाचार सुनकर पडित वलदेवजी तुरन्त दडौली के लिए चल पडे। वहुतेरी चिकित्सा कराने पर भी मृत्यु ने प० आनन्द स्वरूप जी को अवकाश न दिया और एक दिन वे स्वर्ग सिधार गए।

अब घर का समस्त उत्तरदायित्व पण्डितजी पर आ गया इसलिए वे अहमदावाद न जा सके। वालक भोजराज को ग्राम की पाठशाला मे दाखिल कर दिया गया। अपनी प्रखर बुद्धि के कारण भावी शुक्लचन्द्र जी एक के वाद एक परीक्षा उत्तीर्ण करते रहे। अभी १३वे वर्ष मे पदार्पण किया था कि प्रकृति ने भयकर वज्रपात किया और उनके पिता प० वलदेव जी शर्मा अपनी इह लोक लीला समाप्त करके स्वर्ग सिधार गए। परन्तु शुक्लचन्द्र जी विचलित न हुए। उनके पालन पोषण का भार उनके चाचा प० चुन्नीलाल जी ने सम्भाल लिया। १४ वर्ष की आयु मे शुक्लचन्द्र जी का यज्ञोपवीत सस्कार सम्पन्न हुआ। उस अवसर पर हजामत बनाते नाई ने उनके सिर के लक्षण देखकर प० चुन्नीलाल जी को चेतावनी देते हुए कहा कि उन्हे घर से वाहर किसी अन्य नगर मे न जाने दिया जाए वरना वालक हाथ से चला जाएगा।

प० चुन्नीलाल जी भी वालक को विचारो मे डूवे हुए देखा करते, तो वे अनुभव करते कि नाई ठीक कहता है। वालक के मन मे वैराग्य अकुरित होता दीखता था। इसलिए उन्हे वाहर न जाने दिया जाता, पर शुक्लचन्द्र जी का मन तो घर से ऊवा हुआ था।

इसलिए वे घर से वाहर जाने की योजनाए ही बनाते रहते। एक बार रामा मण्डी के निकटवर्ती ग्राम से इन्हे कुछ रुपये लाने को मजवूरी मे भेज दिया गया। मानो बिल्ली के भागो छीका टूट गया। शुक्लचन्द्र जी गाव पहुँचे और रुपया लेकर मनिआर्डर द्वारा घर भेज दिया और स्वय भटिण्डा चले गए। भटिण्डा मे उनके ग्राम के निवासी रामजीलाल, "जो एक भोजनालय चलाते थे" के पास रहने लगे। रामजीलाल ने उनके चाचा जी को सूचना दे दी कि वे उनके पास है। चाचा जी ने पत्र द्वारा उन्हे सूचना दी कि शकर को शीघ्र घर भेज दो अथवा उन को अवोहर मण्डी की दुकान पर पहुँचा जाओ। शुक्लचन्द्र जी मण्डी अवोहर चले गए और १ वर्ष वाद उन्हे घर वुला लिया गया। घर पहुँचते ही हुडियाना ग्राम मे उनकी सगाई कर दी गई। क्योकि उनके सरक्षक उन्हे घर पर वाँध रखने के लिए गृहस्थी की शृखलाए डालना आवश्यक समझते थे। अभी उनकी सगाई ही हुई थी कि ग्राम के उनके एक साथी की माँ ने उन्हे घर वुला कर वात्सल्य दर्शाया और कहा कि जिस लडकी से तुम्हारा विवाह होना निश्चित हुआ है, उसी से तुम्हारे साथी की सगाई

हुई थी, पर इसके पिता जी का देहान्त हो जाने के कारण उन्होने विवाह करना स्वीकार नही किया ।"

शुक्लचन्द्र जी बुद्धिमान्, थे उन्होने तुरन्त उनका आशय समझ लिया और वायदा कर लिया कि वे विवाह नही करेगे ।

एक अन्य साथी के साथ ऊट पर वे हुडियाना पहुँचे और पता लगाया कि उक्त लडकी की सगाई पहले कहाँ हुई थी और क्यो रोक दी गई । जब उन्हे विश्वास हो गया उन के साथी की माता का कथन ठीक था तो उनका निश्चय और भी दृढ हो गया और लडकी के पिता से उन्होने कह दिया कि वे विवाह नही करेगे ।

जब उनके चाचा जी को इस बात का पता चला तो वे बहुत नाराज हुए और शुक्लचन्द्र जी को अबोहर मण्डी भज दिया गया । अब आपकी आयु १७ वर्ष की हो चुकी थी, कुछ दिनो बाद घर से सूचना मिली कि उनका विवाह निश्चित हो चुका है इसलिए घर चले आये । दुकान के सभी कर्मचारियो और अन्य लोगो ने उन्हे समझाया कि वे घर जाये । परन्तु वे घर जाने को तैयार न हुए ।

एक दिन एक ५० वर्षीय समृद्धिशालिनी वृद्धा,

जो सरगोधा की रहने वाली थी, स्टेशन से उतर कर ठहरने के लिए स्वतन्त्र मकान की खोज मे बाजार गई और खोजते-खोजते अनायास ही शुक्लचन्द्र जी के पास पहुँच गई। उन्होने घर वालो की आज्ञा से मकान खोल दिया। वृद्धा की एक कन्या थी और एक देवर, यही था वस उसका परिवार।

वृद्धा दो-तीन दिन उनके मकान मे ठहरी। वह वापिस जाने के लिए मकान छोडने और चावी लेजाने के वहाने उन्हे कई-कई वार बुलाती। एक दिन उसने अपने सदूक से कुछ सुन्दर जरी के कपडे निकाले और उन्हे पहनाए। कपडे ठीक आये, वह कपडे पहने रहने का आग्रह करने लगी। पर शुक्लचन्द्र जी तैयार न हुए। उन्होने कहा कि यह वढिया कपडे तो विवाह के समय पहने जाते है।

वृद्धा ने उन्हे अपने साथ लेजाने और अपनी पुत्री से विवाह करने को कहा। पर वे तयार न हुए। उधर घर से बार-वार सूचना आ रही थी कि विवाह की तिथि निकट आ रही है। पर वे जाते ही न थे। एक दिन दूकान वालो ने घेर कर स्टेशन पर ले जा कर गाडी मे बैठा ही दिया। भटिण्डा पहूँचने पर शुक्लचन्द्र जी ने घर का टिकट फैंक दिया और सरगोधा चले गए।

जहाँ तीन दिन की खोज के उपरान्त उक्त वृद्धा को पाया ।

वृद्धा के साथ वे अमृतसर चले गए। अमृतसर मे वृद्धा की रिश्तेदारी थी । खाने के लिए उन्हें बाहर बैठाया गया। एक व्यक्ति एक कटोरी ले कर आया पर वृद्धा ने उसे वापिस कर दिया। इसे देखकर उन्हे कुछ सन्देह हुआ और पेट दर्द का बहाना करके उन्होने खाना खाने से इकार कर दिया ।

वृद्धा तो सरगोधा चली गई और सामान की देख भाल के लिए उन्हे अमृतसर ही छोड गई। उन्ही दिनो रामजीलालजी अमृतसर पहुँचे और अनायास ही शुक्लचन्द्र जी से भेट हो गई। शुक्लचन्द्र जी ने उनसे सन्यासी जीवन मे प्रवेश करने की इच्छा प्रगट की। रामजीलाल जी स्वय सन्यासी होना चाहते थे। पर पहले तो उनकी मा रोकती थी और माँ के देहान्त के उपरान्त वे अपने पुत्र का विवाह करने का भार उतारना चाहते थे। उन्होने शुक्ल चन्द्र जी के निश्चय को सराहा और जैन स्थानक मे विराजमान पूज्य श्री सोहनलाल जी महाराज की सेवा मे ले कर पहुंच गए। वहाँ उन्हे एक हस्त लिखित प्रतिक्रमण दिया गया। जो उन्होने १० दिन मे कण्ठस्थ कर लिया।

और आषाढ सुदी १५ सम्वत १९७३ को उन्हे पूज्य श्री सोहनलालजी ने दिन के सवा तीन वजे दीक्षा दी।

दीक्षा से एक दिन पुर्व अनायास ही सरगोधा की वही वृद्धा महिला उन्हे मिली। वह खाना खाने वैठी तो एक कटोरी मे माँस भी था। जव शुक्ल चन्द्र जी को पता चला तो वे वहाँ से तुरन्त उठ आये। महिला ने वहुत से वहाने मिला कर उन्हे रोकना चाहा, पर उन्हे तो घृणा हो गई थी, वे रुके नही और फिर कभी उस महिला से मिले भी नही। उसने उन्हे उनके घर और रिश्तेदारियो मे खोजा पर वह तो संन्यासी हो चुके थे इस लिए उनका पता वह न लगा सकी। शुक्ल चन्द्र जी अव पचमहाव्रती साधु हो चुके थे। सोहनलाल जी महाराज की इच्छा थी कि उन्हे रतनचन्द्र जी महाराज का शिष्य वना दिया जाय परन्तु कुछ कारणो वश अन्त मे उन्हे पूज्य श्री काशीरामजी महाराज का शिष्य बना दिया गया। उन्होन १९७३ का चातुर्मास गुरु जी महाराज की सेवा मे किया। और १९७४ का चातुर्मास भी अमृतसर मे ही हुआ। गुरु जी की सेवा मे वे जैन शास्त्रो का अध्ययन करते रहे पण्डित रक्खा राम जी और पण्डित हरिभानु दत्त जी उन्हे शिक्षा देते रहे। चातुर्मास समाप्त होने पर

आचार्य काशीराम जी के साथ विचरते रहे और फिर गुरुजी महाराज के साथ १९७५ मे चातुर्मास किया।

अम्बाला मे चातुर्मास चल रहा था एक पण्डित जी उन्हे पढ़ाने आते थे। एक दिन पण्डित जी ने पूछा "आप का दूध कौनसा है ?"।

"मैने ब्राह्मण कुल मे जन्म लिया है" शुक्लचन्द्र जी ने उत्तर दिया।

इतना सुनकर उन्हे वहुत दुख हुआ। और उदास हो कर घर चले गए दूसरे दिन जब वे पुन पढाने के लिए आए तो उनका मु ह लटका हुआ था।

शुक्लचन्द्र जी ने पूछा— "क्यो पण्डित जी क्या आज कुछ अस्वस्थ है ?

"नही ! मुझे वहुत दुख है" पण्डित जी बोले।

"आप को किस वात का दुख है ? कुछ मुझे भी तो वताए "शुक्लचन्द्र जी ने पूछा।

'मुझे दुख इस वात का है' पण्डित जी वोले, "कि तुम ब्राह्मण पुत्र होकर भी जैन साधु हो गए।"

इन्होने पुन पूछा तो फिर आपका यह दुख कैसे दूर हो सकता है?"

पण्डित जी वोले "तुमने जैसे यज्ञोपवीत का त्याग कर दिया उसी प्रकार जैन साधुवाणा का त्याग कर दो। तुम चाहो तो मै तुम्हारा विवाह करा दूंगा।"

शुक्ल चन्द्र जी महाराज ने उन्हे कोरा जवाव दे दिया। वे वोले 'यज्ञापवीत का त्याग कर जैन साधु वाणे को तो मैने जीवन मरण के वन्धनो से मुक्ति पाने के लिए धारण किया है। इससे वढ कर कोई लाभ होता हो तो मे गृहस्थी मे वापिस जा सकता हू।"

परन्तु इसका उत्तर पण्डित जी के पास नही था, वे वेचारे निराश हो गए।

उन्ही दिनो लाहौर मे काग्रेस का आयोजन हो रहा था। शुक्लचन्द्र जी महाराज रावलपिडी गए और वहा से कल्लर रोहतास, लाला मूसा, लाहौर आदि नगरो को स्पर्शते हुए अमृतसर पधारे। आचार्य श्री सोहन-लाल जी ने उन्हे अम्वाला जा कर चातुर्मास करनेका आदेश दिया। महाराजश्री वोले "आपकी आज्ञा तो शिरोधार्य है, परन्तु वहा चार पक्ष है दो परम्परा वालो के, दो पत्री वालो के, और चातुर्मास मन वाने वाले ला० नराता राम,कुन्दन लाल जी, चौ० वसन्तामल जी आदि पाच छ घर है। ऐसो दशा मे भी यदि आप आज्ञा दे तो चला अवश्य जाऊगा।"

पूज्य सोहनलाल ने कहा कि चू कि हम ने चातु-र्मास के लिए वचन दे दिया है इसलिए जाना ही

होगा । बस वहाँ जाकर मेरी इन शिक्षाओ का पालन करना —

१ व्याख्यान सुनने जितने भी आये चाहे चार पाच ही हो, उन्हे ही व्याख्यान सुनाना । न आने वालो को व्याख्यान मे आने के लिए वाध्य करने का प्रयत्न न करना ।

२ जैसे दुकानदार अपनी गद्दी पर बेठा रहता है, अपने स्थान पर उसी प्रकार जमे रहना । कोई व्यक्ति अलग ले जाकर वात करनी चाहे तो कभी उठकर अलग जाकर वात न करना । जो सुनना अपनी गद्दी पर ही सुनना ।

३ पक्षपात विलकुल न करना, किसी का पक्ष न लेना, सभी को एक दृष्टि से देखना ।

४ किसी को बारी बॉधने के लिए कोई हस्तक्षेप न करना ।

५ एकाग्रचित्त होकर अपने ज्ञान ध्यान मे रहना ।

शुक्लचन्द्र जी महाराज ने इन शिक्षाओ को ग्रहण किया और हृदय से स्वीकार करके अम्बाला चले गए । वहा जाकर उनके अलौकिक गुणो का प्रत्यक्ष रूप प्रगट हुआ । अपने ज्ञानामृत की वर्षा कर

उन्होने वहा प्रेमभाव की धारा प्रवाहित की। उनके व्याख्यानो मे गजव का प्रभाव था। श्रोतागण मुग्ध हो जाते। ज्ञान का चमत्कार अम्बाले के वातावरण में घुल गया और कुछ ही दिनो मे मुनि जी के त्याग, तपस्या वल से श्रावको का आपसी भेद मिट गया। चारो ओर महाराज की कीर्ति फैल गई।

चातुर्मास धर्मोपदेशो मे वीता, जवकि उन्हे अपनी योग्यता, विद्वत्ता और चारित्र की पवित्रता एव महानताको दर्शाने का शुभ अवसर प्राप्त हुआ। अम्वाला मे अपने अलौकिक गुणो का दिग्दर्शन कराने के उपरान्त जव चातुर्मास सफलता से वीत गया, महाराज के चरण उठे. अम्वाला से शानदार विदाई हुई। भक्त जनो ने जय जय कार मनाई और शुक्लचन्द्र जी चल पडे अन्य नगरो को, जहा की जनता की ज्ञान पिपासा शान्त करना महाराज श्री अपना कर्त्तव्य समझते है। और साथ ही उनके मन मे अपन गुरुदेव के दर्शन करने की इच्छा भी वलवती हो गई। वनूड पहुंचे, जनता गद्-गद् हो गई, भक्तो ने सजल नयनो से विदा दी तो राजपुरा पहुंच गए। और पटियाला, मालेर-कोटला, लुधियाना, जालन्धर की भूमि को अपने चरण स्पर्श से पवित्र करते हुए गुरु जी महाराज को सेवा मे

अमृतसर पहुंच गए।

सम्वत् १९७६ का चातुर्मास अमृतसर मे ही मनाना स्वीकार कर लिया, अब उनकी व्याख्यान शैली निखर गई थी। इसलिए श्रोताओ पर जादू का सा प्रभाव होता, चारो ओर शुक्लचन्द्र जी महाराज की ख्याति फैल गई। सम्वत् १९७७-७८ का चातुर्मास भी गुरुजी महाराज के साथ ही हुआ। गुजरावाला मे पूज्य काशीराम जी के साथ चातुर्मास मनाया गया। १९७९ का समाना मे तथा ८० का जजो। अम्वाला मे दो चातुर्मास गुरु जी महाराज के पास ही हुए। सम्वत् १९८१ का चातुर्मास देहली सदर मे पूज्य काशीराम जी के साथ मनाया। देहली के पश्चात् जब कि गुरु-देव होशियारपुर मे चातुर्मास मना रहे थे, शुक्लचन्द्र जी महाराज मुबाणे मे चातुर्मास मनाते हुए ज्ञानामृत उण्डेल रहे थे। १९९२ का चातुर्मास पसरूर मे हुआ। इसी वर्ष आषाढ शुदी ६ को पूज्य श्री सोहनलाल जी का स्वर्गवास हो गया। १९९३ का चातुर्मास महान् तपस्वी ईश्वरदास जी महाराज के साथ होशियार-पुर मे मनाया। चातुर्मास समाप्त करके वे जालधर, फगवाडा, वगा, नवाशहर, रोपड, गुरुकुल आदि नगरो मे धर्म दीप शिखा प्रज्वलित करते हुए अम्वाला पधारे और फिर पूज्य श्री काशीराम जी के साथ

पानीपत, सोनीपत, खेवडा होते हुए दिल्ली मे दर्शन दिए। महाराज श्री की व्याख्यान शैली और शास्त्रो के प्रचुर ज्ञान की इतनी ख्याति फली कि हासी के श्रावको का एक प्रतिनिधि मण्डल उनकी सेवा म १९९४ का चातुर्मास हासी मे हो करने की विनती लेकर पहुँच गया। दया और त्याग की प्रतिमूर्ति महाराज शुक्लचन्द्र जी ने प्रतिनिधि मण्डल के स्वप्नो को साकार करने के लिए चातुर्मास की विनती स्वीकार कर ली और रोहतक, भिवानी, आदि नगरो मे धर्मापदेश करते हुए हासी पहुंच गए। जनता मे अभूतपूर्व उत्साह था सारा श्रावक समाज महाराज के व्याख्यानो को सुनने के लिए दोड पडता था। अभी चातुर्मास मे कुछ समय था इसलिए व खेडी होते हुए हिसार पधारे। वहाँ के श्रावक महाराज क दर्शन करके गद्गद् हो उठे। धर्मोपदेश की झडी लग गई। प्रतिष्ठित नागरिक व्याख्यान सुनने पहुचते। पर धीरे धीरे चातुर्मास का समय निकट आ रहा था, इसलिए जय जय कार के बीच उन्होने हिसार से विदा ली और हाँसी पहुंच गए। बडे उत्साह से चातुर्मास का कार्यक्रम चलता रहा। अभी चातुर्मास समाप्त भी नही हुआ था कि गुरु जी का आदेश मिला कि बम्बई

काठियावाड का निमन्त्रण स्वीकार कर लिया गया है। इसलिए साथ चलने के लिए नारनौल पहुँचे। चातुर्मास समाप्त होते ही शुक्लचन्द्र जी महाराज नारनौल पहुँच गए।

गुरु जी महाराज के साथ खण्डेला और जयपुर मे दर्शन दिए और उदयपुर निवासियो की विनती पर सम्वत् १९९५ का चातुर्मास उदयपुर मे ही किया। चातुर्मास समाप्त करके वे अपने पथ पर बढ चले। अहमदनगर पहुँचे कितने ही सेठो और साधारण श्रावको ने भक्ति भाव से बडी ही सेवा की। सैलाना रतलाम आदि क्षेत्रो का भ्रमण करते रहे और सम्वत् १९९६ का चातुर्मास उदयपुर मे ही मनाया। धर्मोपदेश करते हुए वे चातुर्मास की समाप्ति पर पूना होते हुए बम्बई पहुँच गए। सोने-चाँदी मे पलने वालो, वैभवपूर्ण बम्बई के, जहा एक ओर लक्ष्मी का नग्न नृत्य होता है तो दूसरी ओर भूख और नग्न पन सडको पर बिखरा होता है, श्रावक गण महाराज श्री के दर्शन करके हर्ष विभोर हो उठे। कितने ही प्रतिष्ठित सेठ और बुद्धिजीवियो ने महाराज का हार्दिक अभिनन्दन किया और भक्तो की विनती स्वीकार करते हुए उन्होने सम्वत् १९९७ का चातुर्मास बम्बई मे ही मनाया।

व्याख्यान चल रहे थे, श्रोता धर्म दर्शन कर रहे थे, भूले भटके धर्म पथ पा रहे थे। और महात्मा शुक्लचन्द्र जी महावीर का सदेश घर-घर पहुँचाते हुए आगे बढ रहे थे। वे एक तपस्वी है जिनकी यात्रा चलती ही रहती है, उस समय तक जबतक आत्मा का सफर पूरा न हो जाय। घाट कोपर, माटुँगा, चीच-पोकली आदि नगरो की जनता को ज्ञान का पथ दर्शाते, आत्मा के उपाय बताते कान्दा वाँडी पहुँच गए और चातुर्मास वही किया। व्याख्यान माला आरम्भ होनी थी कि सारा श्रावक समाज चरणो मे आ गया

पूज्य श्री काशीराम जी साथ ही थे, चातुर्मास समाप्त हुआ तो फिर पग उठाए और सूरत होते पूना मे जा दर्शन दिए यहाँ नवी बार राजकोट का प्रतिनिधि मण्डल राजकोट मे चातुर्मास करने की विनती लेकर पहुँचा। प्रतिनिधि मण्डल ने बताया कि काठियावाड मे कानजी का प्रभाव पड गया है जो आप तथा पूज्य काशीराम जी के बिना दूर नही होगा, यदि काठिया-वाड को सुपथ पर लाना है तो विनती स्वीकार करले। प्रतिनिधि मण्डल के नेत्रो मे पानी आ गया था। इस-लिए इस सोचनीय दशा को सुन कर पूज्य काशीराम जी तथा महात्मा शुक्लचन्द्र जी ने राजकोट पधारने

पहुँच गए। और पालनपुर से विहार करके देलवाडा, आबू, सिरोही होते हुये शिवगज पधारे। जहा से गुरु जी के साथ आप पाली मारवाड का भ्रमण करने लगे। अमृतसर के २५ श्रावक भी महाराज के साथ साथ पैदल यात्रा कर रहे थे। अनेक नगरो और ग्रामो मे धर्मोपदेश करते हुए वे पालीमारवाड पधारे और सवत् १६६६ का चातुर्मास गुरु जी महाराज के साथ जोधपुर मे मनाया। प्रति दिन प्रात काल व्याख्यान आरम्भ हो जाते और सहस्रो ज्ञान पिपासु नर नारी धर्म लाभ उठाने के लिए एकत्रित हो जाते। श्रावको के हृदय पर अपनी विद्वत्ता और ज्ञान की मोहर लगाते हुए वे जोधपुर से भीनासर पधारे। यहा पूज्यश्री जवाहरलाल जी महाराज के दर्शन हुए। आप उस समय अस्वस्थ थे और जब पुन पग उठे तो बीकानेर से अजमेर मे दर्शन दिए। वहाँ पूज्य श्री काशीराम जी का स्वास्थ्य ठीक नही था। इसलिये कुछ दिनो वही ठहरना पडा पर व्याख्यान चलते ही रहे। लोग गद-गद हो कर धर्मलाभ उठाते रहे और शुक्लचन्द्र जी महाराज की ख्याति वायु अश्वो पर सवार होकर सारे क्षेत्र मे फैलती रही और जब गुरु जी स्वस्थ हो गए तो संवत २००० का चातुर्मास जयपुर मे मनाने के लिए चल पडे।

वैराठ, अलवर, बादशाहपुर, गुडगावा, महरोली

और चिराग देहली होते हुए आप देहली पहुँच गए। हजारो मील का भ्रमण कर चुके थे पर न पग थके थे और न मन ही थका था। इसलिए गुरु जी महाराज की आज्ञा से वे उत्तर प्रदेश के कई क्षेत्रो का भ्रमण करते हुये और जिला मुजफ्फरनगर मे धर्म ज्ञान बखेरते हुये कांधला पधारे। परन्तु तभी गुरु जी महाराज ने उन्हे देहली बुला लिया और वहाँ से पूज्य श्री को सन्तो ने डोली मे बैठा कर खेवडा, पीपलीखेडा, गनोर मण्डी, पानीपत, करनाल, शाहबाद, अम्बाला छावनी को स्पर्शते हुए अम्बाला नगर पहुँचा दिया। गुरु जी महाराज ने शुक्लचन्द्र जी को समाना और पटियाला की ओर भेज दिया और वे सवत् २००१ मे स्वर्ग सिधार गए। ज्ञान की एक ज्योति बुझ गई थी। सारे भक्त समाज मे शोक की लहर दौड गई थी पर सभी का सन्तोष था कि पूज्य श्री काशीराम जी का जीवन दीप तो बुझा, पर वे अपने ज्ञान दीप से एक अन्य दीपको जला गए है जो मानव समाज के पथ को प्रशस्त कर सकता है। वह दीप है पण्डित रत्न शुक्लचन्द्र जी महाराज। जो अपने गुरुदेव के पद चिन्हो पर चलते हुए आज भी सत्य अहिंसा का पथ दिखा रहे है।

। गुरुदेव ने शुक्लचन्द्र जी महाराज को समाना इस लिए भेजा था कि तेरह पथियो ने जो उछलकूद मचा रखे है उसे वे शात करे और शास्त्रार्थ करने की आवश्यकता हो तो डट कर शास्त्रार्थ करे और जनता को पथभ्रष्ट होने से बचाये। महाराज ऐसे समय पर गुरुदेव को नही छोडना चाहते थे, पर वे कहते थे कि मेरे प्राणो की चिन्ता न करो, समाज की चिन्ता करो। अत गुरुदेव की आज्ञा का पालन करने के लिए उन्हे समाना जाना पडा था। और गुरुदेव की आशा के अनुकूल महाराज ने अपने कर्त्तव्य का पालन किया। महाराज की व्याख्यान माला आरम्भ होनी थी कि १३ पथियो का प्रचार निरावरण होने लगा। श्रावको का भटकाव दूर हुआ। शास्त्रार्थ के लिए भी महाराज ने चुनौती दी पर १३ पथी तैयार नही हुए। और वे पटियाला पहुच गए जब महाराज को १३ पथियो के पटियाला पहुंचने का समाचार मिला वे भी पटियाला पहुचे पर इससे पूर्व कि शास्त्रार्थ का अवसर आये १३ पथी साधु वहा से विहार कर गए। उन्ही दिनो महाराज को गुरु जी की चिन्ताजनक स्थिति की सूचना मिली। उन्होने हिसाब लगाकर देखा तो लक्षण अच्छे नजर नही आये और वे अम्बाला की ओर चल

पडे। राजपुरा पहुचने पर गुरु जी के स्वर्ग वास होने का समाचार मिला। पर अम्बाला से सात मील दूर ही सूर्य ने अपनी मजिल पूर्ण कर दी, रात्रि ने डेरे डाल दिये। इसलिए विवश होकर महाराज को जगल मे ही एक वृक्ष के नीचे विश्राम करना पडा। दूसरे दिन ६ बजे अम्वाला पहुचे और सम्वत् २००१ का चातुर्मास उन्होने अम्वाला मे ही किया। चातुर्मास की समाप्ति पर उदयचन्द्र जी महाराज ने महाराज शुक्ल चन्द्र जी को दिल्ली पहुने के लिए निमन्त्रित किया। इसलिये वे राजपुरा पटियाला तथा समाना होते हुए मोनक पधारे। वहाँ श्री वनवारीलाल जी महाराज वृद्धावस्था के कारण विराजमान' थे और व्याख्यान वाचस्पति श्री मदनलाल जी महाराज तथा जैन भूषण श्री प्रेमचन्द जी वहा पहुच गए थे और पूज्य पदवी के सम्वन्ध मे श्री गणी जी महाराज से पत्र व्यवहार चल रहा था। महाराज श्री को इस कारण वही रहना पडा। अन्त मे निर्णय हुआ कि उपाध्याय श्री आत्माराम जी से मिलकर पजाव के किसी नगर मे मुनि सम्मेलन करने की योजना वनाई जाय ताकि पूज्य पद का निर्वाचन हो सके। अत सनाम, धूरी मालेर कोटला होते हुए लुधियाना

पहुचे । वही सम्मेलन हुआ, और पदवियो की घोषणा हो गई, और महाराज श्री फलौर, फगवाडा, जालन्धर, कपूर थला, जडियाला होते हुए अमृतसर पहुचे, और वहा लाहौर के श्रावको की विनती स्वीकार करते हुए लाहौर चले गए । और स्थानक का जो विवाद उन दिनो चल रहा था, उसे श्री मदनलाल जी महाराज के सहयोग से शात किया। विचार विभिन्नता तथा परस्पर शकाओ को दूर किया और सम्वत् २००३ का चातुर्मास भी लाहौर मे ही व्यतीत किया ।
गुजरा वाला के श्रावको की विनती पर वे गुजरा वाला पधारे। और कुछ दिनो वही धर्मोपदेश करके, भगवान महावीर का सन्देश श्रावको को देकर आप जामका पधारे और विद्यालयो मे भाषण दिए । स्यालकोट के भाईयो की वारम्वार विनती पर उन्होने स्यालकोट की ओर पग वढाये । स्यालकोट मे आपका प्रवेश होते ही मुनि जी के दर्शनो की प्यासी सारे नगर की जनता स्थानक की ओर चल पडी । व्याख्यान माला आरम्भ होते ही जनता पर मुनि जी का प्रभाव दिन दूना रात चौगुना वढने लगा । जम्मू की ओर से कितने ही लोग आप से विनती करने आये, पर लुधियाना मे मुनि सम्मेलन होने वाला था अत वे विनती

स्वीकार न कर सके, और पसरूर चले गए वहा से अमृतसर चले गए। अमृतसर पर पूज्य श्री सोहनलाल जी की विशेष कृपा रही है, और अमृतसर श्री सघ ने उनकी बहुत सेवा की थी। इसलिए महाराजश्री अमृतसर में कुछ दिनो धर्मोपदेश करने के लिए ठहर गए और फिर जण्डियाला पहुचे। वहा के श्रावको ने प्रशसात्मक सेवा की। वहा विहार करके आप रैय्या व्यास को स्पर्शते हुए कपूरथला पधारे। यहा भी श्रावको ने अच्छा स्वागत अभिनन्दन किया और कुछ दिनों उपरान्त वे जालधर की ओर प्रस्थान कर गए। जालन्धर से फगवाडा जाकर भाषण किए। जनता पर बहुत प्रभाव हुआ। लुधियाना सम्मेलन की तिथि निकट थी इसलिए लुधियाना पहुच गए और यहा मुनि सम्मेलन मे भाग लिया। वहा से वे रावलपिण्डी जाने के लिए तैयार हुए अभी वे कपूरथले ही पहुचे थे कि भारत का विभाजन हो गया और हिन्दु-मुस्लिम फिसाद भी आरम्भ हो गए। भयकर नर संहार हुआ। श्रावको ने विनती की कि महाराज आगे न जायं। आपने पाकिस्तान में आये नगरो मे ठहरे सन्तों को पत्रो द्वारा सूचना दे दी कि सभी पूर्वी पजाब चले आये। और अपना कार्य-क्रम स्थगित कर दिया।

जेजो के श्रावको ने महाराज श्री से चातुर्मास जेजो मे ही मनाने की प्रार्थना की। उसे स्वीकार करते हुए आप सुल्तानपुर, नकोदर, श्री शकर, जडियाला, फगवाडा, बगा, नवा शहर, बलाचोर होते हुए जेजो पधारे और सवत २००४ का चातुर्मास जेजो मे ही हुआ। सहस्रो नर-नारियो ने प्रतिदिन व्याख्यान सुने। सम्वत २००५ का चातुर्मास बलाचोर और सम्वत २००६ का रायकोट मे हुआ। सम्वत २००७ का चातुर्मास बगा मे, २००८ का सुल्तानपुर मे किया। सुल्तानपुर से शाहकोट, नकोदर, लुधियाना, बलाचोर, रोपड, खरड, पचकुला, डेरा बसी, अम्बाला शाहबाद, थानेश्वर होते हुए कैथल पधारे। यहाँ आल-इण्डिया जैन सम्मेलन का जो सादडी मे होने वाला था प्रतिनिधि मण्डल महाराज श्री के पास सम्मेलन मे शामिल होने की विनती ले आया।

सम्मेलन के लिए जाते हुए रास्ते मे दो पशु साईकिल वाले की भूल के कारण डर कर मुनि जी के ऊपर आ पडे जिस से मुनि जी के पैर मे चोट आई। परन्तु चोट के बावजूद आप सादडी की ओर बढते ही रहे। और ४५ दिन की यात्रा के उपरान्त आप सादडी पहुचे गये। वापसी पर सम्वत् २००९

का चातुर्मास जोधपुर मे व्यतीत किया। और २०१० का चातर्मास देहली मे हुआ।

दिल्ली का चातुर्मास समाप्त करके आप मेरठ पधारे जहाँ अस्वस्थ हो गये और उन्ही दिनो मेरठ में तपस्वी श्री निहालचन्द्र जी महाराज ने नेत्रो का आपरेशन कराया था इसलिए उनकी इच्छानुसार कुछ दिनो मेरठ मे रहना पडा। और जब उनकी आँखें ठीक हो गई तब वे वहा से विहार कर गए। करनाल, थानेश्वर, शाहबाद, अम्बाला, डेरा बसी, खरड, बलाचोर, नवा शहर और फगवाडा स्पर्शते हुए जालधर पहुचे। सम्वत् २०११ का चातुर्मास आपका जालधर मे ही हुआ।

कौन जानता था कि ब्राह्मण परिवार की सतान एक दिन सारे जैन साधु समाज मे एक रत्न की भाति जगमग जगमग दीप्तिमान होगी। हजारो मील पैदल चलकर वर्षो तक जनता को मुक्ति पथ का सन्देश देने वाले महात्मा शुक्लचन्द्र जी ससार मे भटकी मानव आत्माओ को सुख और शान्ति का मार्ग बताने के लिए अनथनक परिश्रम करते ही जाते है। जालधर मे चातुर्मास समाप्त करके फगवाडा और लुधियाना पहुचे। और जगराव, मोगा, फरीदकोट,

कोटकपूरा और जैतो मे ज्ञानामृत वर्षा करते हुए महात्मा जी भटिण्डा पधारे। भक्तजना को व्याख्यानो के द्वारा शास्त्रो की शिक्षा देकर गीदड वहा, डबवाली सगरिया मण्डी, हनुमान गढ, राणिया, सरसा, कालावाली, रामा की जनता मे धर्म प्रचार करते हुए पुन भटिण्डा पधारे और महावीरजयन्ति के उत्सव मे भाग लिया।

महात्मा शुक्लचान्द्र जी आजकल सादडी सम्मेलन मे निर्मित श्रमण सघ के पजाव मन्त्री के पद को सुशोभित कर रहे है। उनके त्याग, तपस्या, और ज्ञान का प्रभाव सारे जैन समाज पर छाया हुआ है वे जैन साधु समाज के आकाश के चमकते हुए नक्षत्र है। जिन पर सारा पजाव गर्व कर सकता है। उपरोक्त विवरण उनकी जीवन यात्रा की सक्षिप्त सी झाकी है।

—×—

विषय-सूची

विषय प्रवेश

प्रिय सज्जनो ! ससार की हलचल आपके सामने है। प्रातः से रात्रि तक मनुष्य काम के बोझ तले दबे रहते है। कठिन परिश्रम की चक्की मे पिसते है। कोई भूमि का वक्ष चीर कर अपने रक्त को पसीने के रूप मे बहाकर खाद्यान्न उपजाता है। कोई लोहे के टुकड़ों पर अपने परिश्रम की बूँदे बहाकर जीवनोपयोगी वस्तुएं तैयार करता है। कोई प्रात. से सायंकाल तक पैसे की उलट फेर करता है। कोई सहस्रो मील दूर जाकर, अपनी जन्मभूमि को त्याग कर व्यापार करता है। कोई नए-नए अस्त्र-शस्त्र तैयार कर के विश्व-विजय करने का प्रयत्न करता है। कोई अपने भाई का गला काटने मे भी लज्जा अनुभव नहीं करता। कोई तूफानो मे भी वीर रणबाकुरे की भाति छाती ताने बढ़ा चला जाता है। कोई क्षण-क्षण पर अपने प्राणो की बाजी लगाता है। आपने भारत के ऐतिहासिक नगर और ऐतिहासिक भवन देखे होगे। इतने-इतने विशाल किले, भव्य अट्टालिकाएँ भूमि पर सर उठाए खडी है और अपने निर्माताओ की स्मृति मे आसू बहा रही है। आप अपने इतिहास के भीमकाय ग्रन्थो को उठाकर देखिए, कितने लोग आये उन्होने जन्म लिया, बडे हुए, तलवार की धार की झकार पर जीवन के गीत गाए। बडे-बडे युद्ध किए, बड़े-बड़े साम्राज्य खडे किए। कितने ही निरीह मनुष्यो का वध किया। अपने परिवारो के साथ विश्वासघात किया, बेटे ने बाप को बन्दीगृह मे डाला। यह सब क्यो हुआ ? और आज जो कुछ हो रहा

है उसका कारण क्या है ? संसार मे इतनी उलट फेर क्यों होती है, यह हल चल क्यों है ?

इसका उत्तर यह है कि संसार का प्रत्येक प्राणी सुख चाहता है। वह दुख से भागता है। अपने सुख के लिए प्रत्येक उपाय करता है। अपने सुख के लिए मनुष्य छटपटाता रहता है। वह ससार की प्रत्येक वस्तु को अपने सुख के लिए प्रयोग करने का इच्छुक है। उसका वस चले तो वह संसार में फैली प्रकृति को चूर-चूर कर डाले अपने सुख के लिए। बड़े साम्राज्यवादियों ने युद्ध लडे अपने सुख के लिए। किसी ने किसी को दास बनाया अपने सुख के लिए। शोषण की व्यवस्था चलाई अपने सुख के लिए। बेटे ने बाप को वन्दीगृह मे डाला तो भी अपने सुख के ही लिए। क्योंकि मनुष्य के जीवन का लक्ष्य ही सुख की प्राप्ति है। और सुख की खोज करना मनुष्य का स्वभाव है।

परन्तु मनुष्य सुख की खोज करता-करता सुख की कामना में पागल हो उठा, पथ-भ्रष्ट हो गया है। वह शारीरिक क्षण-भंगुर, नाशवान सुख को ही अपना सुख मान बैठा है। मनुष्य ने द्रव्यों और पुद्गलों से प्राप्त क्षणिक आराम को सुख समझ लिया है और इसीलिए वह धन सम्पत्ति के लिए रक्त की नदिया बहाने से भी नहीं चूकता। जबकि एक ओर धन-धान्य से कभी भी मनुष्य का पेट नहीं भरता, वह कभी सन्तुष्ट नहीं होता। एक पैसे के पश्चात् दूसरा पैसा, एक महल के पश्चात् दूसरा महल, एक राज्य के पश्चात् दूसरा राज्य पाने की चेष्टा मे वह अपने इस सुख को भी खतरे मे डालने को तैयार हो जाता है और दूसरी ओर यह भी जानता है कि मृत्यु का एक ही झटका उसका इस कृत्रिम सुख से सम्बन्ध विच्छेद करा देगा फिर भी वह इसी कृत्रिमता पर मस्त है और इसी मस्ती मे वह अपने मनुष्यत्व की भी बलि दे डालता है। हिंसक पशुओं से भी पतित दशा मे पहुच

कर वह ऐसा व्यवहार कर डालता है जिसे सुनकर भी हृदय कांप उठता है। फिर पशुओं और मनुष्यों में अन्तर कहां हुआ? जबकि एक ओर मनुष्य योनि को सर्वश्रेष्ठ योनि माना गया है और शास्त्र-कारों ने मनुष्यत्व की महिमा की मुक्त-कण्ठ से विरुदावली गाई है। भगवान् महावीर ने कहा है कि—

कम्माणं तु पहाणाए
आणु पुव्वी कयाइउ।
जीवा सोहि मणुप्पत्ता
आययति मणु स्सयं॥

अर्थात्—अशुभ कर्मों का भार दूर होता है, आत्मा शुद्ध, पवित्र और निर्मल बनता है तब कहीं वह मनुष्य की सर्वश्रेष्ठ गति को प्राप्त करता है।

जैन संस्कृति का अमर गायक आचार्य अमित गति कहता है कि—

नरेपु चक्री त्रिदशेपु वज्री
मृगेपु सिंह प्रशमो व्रतेपु
मतो महीभृत्सु सवर्ण शैलो
भवेपु मानुष्यभव प्रधानम्॥

अर्थात्—जिस प्रकार मानव लोक में चक्रवर्ती, स्वर्गलोक में इन्द्र, पशुओं में सिंह, व्रतों में प्रशम-भाव और पर्वतों में स्वर्ण-गिरि मेरु प्रधान है—श्रेष्ठ है, उसी प्रकार संसार के सब जन्मों में मनुष्य जन्म श्रेष्ठ है।

महाभारत में एक स्थान पर इन्द्र कहता है।

'पाणिमदभ्य स्पृहाऽस्माकम्।'

भाग्यशाली वे हैं जो दो हाथ वाले मनुष्य हैं, मुझे दो हाथ वाले मनुष्य के प्रति स्पृहा है।

किसी ने यहां तक भी कह डाला है कि 'द्विभुज परमेश्वर,

मनुष्य दो हाथ वाला परमेश्वर है। सन्त तुकाराम कहते हैं कि स्वर्ग के देवता इच्छा करते हैं, हे प्रभु ! हमे मृत्यु लोक मे जन्म चाहिए। अर्थात् हमे मनुष्य जीवन की चाह है।

तुलसीदास जी भी कहते है—

बडे भाग्य मानुष तन पाया।
सुर-दुर्लभ सब ग्रन्थहि गावा॥

मनुष्य देवताओं को भी प्रिय होते हैं। ससार मे ८४ लाख योनिया है और उन सब मे श्रेष्ठ बताई गई है मनुष्य योनि। पर जब मनुष्य जीवन प्राप्त करके भी मनुष्यत्व से दूर रहे तो ऐसे जीवन को धिक्कार है।

यूनान का एक दार्शनिक एक बार दोपहर के बारह बजे जलती लालटेन हाथ मे लेकर बाजारों में घूमते हुए देखा गया। लोगो को बडा आश्चर्य हुआ। आश्चर्य की बात भी था। दोपहर मे जलती लालटेन लेकर घूमने की तुक किसी की समझ मे न आई।

एक स्थान पर दार्शनिक के चारो ओर हजारो व्यक्ति एकत्रित हो गए। उन्होंने दार्शनिक से पूछा कि दोपहर के बारह बजे तुम लालटेन जलाकर क्या ढूढ रहे हो?

दार्शनिक बोला मै इन्सान खोज रहा हूँ? सभी ने हँसकर कहा कि हम तो हजारो इन्सान तुम्हारे चारो ओर खड़े हैं।

दार्शनिक बोला, नहीं, नहीं, तुम इन्सान नहीं हो, इन्सान की सूरत के जीव अवश्य हो। यदि तुम भी मनुष्य हो तो फिर पशु और राक्षस कौन होगे? तुम दुनिया भर के अत्याचार करते हो, छल प्रपच रचते हो, भाइयों का गला काटते हो, काम-वासना की पूर्ति के लिए कुत्तो की तरह मारे-मारे फिरते हो, और फिर भी मनुष्य हो? क्या तुम भी अपने को मनुष्य समझते हो? मुझे मनुष्य चाहिए वन मानुष नहीं।

उक्त दार्शनिक की यह कठोर, किन्तु सत्य उक्ति, प्रत्येक मनुष्य

के लिए चिन्तन की बात है। क्यों कि हमारे जीवन का लक्ष्य क्या है, जब तक हमे यह ज्ञात नहीं और यह बात साफ नहीं तो बिल्कुल उसी मृग की भान्ति दौडते रहेंगे जो कस्तूरी की सुगध के प्रति आकर्षित होकर मदानो मे चौकडिया भरता है, परन्तु कस्तूरी उस के अन्दर ही होती है। कहीं हम भी उस कस्तूरी के लिए ही तो नहीं दौड रहे जो हमारे अन्दर ही विद्यमान है।

एक बात ध्रुव सत्य है कि हमारे जीवन का लक्ष्य वास्तव मे सुख ही है। परन्तु वह कहीं बाहर नहीं वरन् हमारे अन्दर हमारी आत्मा मे ही विद्यमान है। चादनी रात मे मृग रेत की चमक को पानी की चमक समझ कर दौडता रहता है और जब चमकते स्थान पर पहु च कर देखता है तो रेत पाकर फिर इधर-उधर देखता है और दूर चमकते रेत को देख कर फिर दौडने लगता है। आज मनुष्य ऐसे ही मृग की नाई दौड रहा है। वह कभी धन प्राप्ति को सुख समझता है तो उसकी ओर दौडता है, भोग-विलास को सुख ससमझता है तो उसकी ओर दौडता है, पर उसे सुख कहीं नहीं मिलता। क्योंकि सुख आत्मा मे है और धर्म द्वारा ही प्राप्त हो सकता है।

सव्व विलविय गीय सव्व नट्ट विडविय।
सव्वे आभरणा भारा सव्वे कामा दुहावहा॥

सब वैषयिक गान विलाप है, सब नाच रग विडवना है, सब अलकार शरीर पर बोझ है, कि बहुना ? जो भी काम भोग है सब दुख के देने वाले है।

छान्दोग्य उपनिषद् मे सुख की परिभाषा करते हुए कहा है कि 'जो अल्प है, विनाशी है,-वह सुख नहीं है और जो भूमा है महान् है, अनन्त है, अविनाशी है, वस्तुत वही सच्चा सुख है।

यह माना कि गृहस्थ जीवन व्यतीत करने वाले वैरागियो की भाति त्याग नहीं कर सकते। क्योंकि उन पर कितने ही

उत्तरदायित्व होते हैं। संसार के प्रत्येक प्राणी को अपने ग्राम, नगर, राष्ट्र, गण आदि से सम्बन्ध रखना पड़ता है और उन सभी के प्रति उनके कुछ कर्त्तव्य भी होते हैं। इन अपने कर्त्तव्यों को निभाता हुआ भी मनुष्य धर्म पथ पर चल सकता है और धर्म पथ पर ही चल कर मनुष्य सुख प्राप्त कर सकता है। धर्म के दो भेद हैं—निश्चय धर्म और दूसरा व्यवहार धर्म।

आत्मा के धर्म को निश्चय धर्म कहते हैं। परन्तु व्यवहार धर्म से ही निश्चय धर्म प्रगट होता है। जैसे तिलों में तेल है, पर इसका पता बिना तेल को कोल्हू में पेले नहीं चल सकता।

व्यवहार धर्म निश्चय धर्म का आधार है। बिना आधार के निश्चय धर्म का महल खड़ा नहीं हो सकता। उस महल की बुनियाद ही व्यवहार धर्म है। यदि बुनियाद ही दृढ़ नहीं होगी तो महल भी नहीं खड़ा हो सकता। इसलिए मनुष्य को चाहिए कि धर्म की नींव मजबूत बनाने के लिए व्यवहार धर्म का पालन करे। इस बात को दृष्टि में रखते हुए शास्त्रकारों ने निम्नलिखित दस प्रकार के धर्म बताए हैं और उन धर्मों के पूर्ण-रूपेण पालन के लिए दस स्थविरों की व्यवस्था की है।

ग्राम धर्म, नगर धर्म, राष्ट्र धर्म, पाखण्ड धर्म, कुल धर्म, गण धर्म, संघ धर्म, सूत्र धर्म, चारित्र धर्म, अस्तिकाय धर्म।

शास्त्रों में बताए गए इन दस धर्मों और उनके स्थविरों की व्याख्या आगे क्रमानुसार की जायेगी। आप इन्हें धर्म की नींव के पत्थर समझकर, धर्म भवन की सीढ़िया जानकर उनका पालन करें। फिर आपको अपने सुख की खोज में पशुता पूर्ण कार्य नहीं करने पड़ेंगे। तब आप मनुष्य कहलाने के अधिकारी होंगे और आप चिर सुख भी प्राप्त कर सकेंगे।

मिलने का पता :—

१–पूज्य श्री सोहनलाल जैन
रजोहरण पात्र भण्डार अम्बाला शहर ।

२–जैन धर्म प्रचारक सामग्री भण्डार
जैन स्थानक सदर बाजार डिप्टीगज देहली ।

३–बनारसीदास, प्रेमचन्द ओसवाल
सदर बाजार देहली ।

४–उलफतराय जैन
दुकान न० १०५, वेअर्ड रोड, नई देहली ।

सम्राट् प्रेस, पहाडी धीरज, देहली ।

धर्म दर्शन

※ प्रथम सोपान ※

ग्राम धर्म

यदि ग्राम धर्म की बात हम किसी के सामने कहे तो कदाचित् शाब्दिक अर्थ कहने की आवश्यकता नहीं अनुभव की जाएगी। क्योंकि सभी जानते है कि ग्राम का अर्थ है कुछ घरो का छोटा समूह, जिसमे एक निश्चित सख्या मे लोग आबाद रहते है। परन्तु ग्राम का अर्थ इन्द्रियो से भी है। यदि 'ग्राम' को 'इन्द्रियो' के अर्थ मे प्रयोग किया जाय तो ग्राम धर्म का अर्थ उस धर्म से हो जाता है जो मनुष्य की इन्द्रियो से सम्बन्धित है। आप जानते है कि प्रत्येक इन्द्रिय किसी न किसी उपयोग के लिए है, उसका अपना एक गुण है, अपना स्वभाव है, जिस वस्तु का जो स्वभाव होता है वह उसका धर्म है जैसे अग्नि का स्वभाव है जलाना, इसलिए अग्नि का धर्म ही जलाना हुआ। इसी प्रकार कानो का स्वभाव है सुनना, कानो का उपयोग भी सुनने के लिए ही होता है, इसी लिए उसका धर्म सुनना है। परन्तु धर्म की एक अपनी मर्यादा है, कान सुनने को अवश्य मिले है परन्तु इसका यह अर्थ नहीं हो जाता कि कानो को कोई मानसिक व्यभिचार के लिए

प्रयोग करे। सिनेमा के गन्दे गाने सुनते रहना, गालियों और अपशब्दों की ओर कान लगाना, चुगली और दुराचारी वार्ताओं को सुनने का कार्य कानों से लिया जाय तो वह अधर्म हो जाता है। क्योंकि इससे मनुष्य पतन की ओर जाता है। इससे मन लोकोत्तर धर्मों की ओर से हट जाता है और आर्त तथा रौद्र ध्यान जन्म लेने लगते है।

इसी प्रकार नेत्रो को ही ले लीजिए। आप को नेत्र मिले हैं देखने के लिए। देखना नेत्रों का धर्म है, लेकिन गन्दे चित्र देखना, नारियों की ओर वासना पूर्ण दृष्टि डालना तो नेत्रों का धर्म नहीं है। और नेत्र आते है पढने के काम। पुस्तकों के पन्नों पर जो लिखा है उसे नेत्रो द्वारा आप अपने मस्तिष्क तक ले जा सकते हैं, परन्तु यदि आप दूषित साहित्य पढने में ही अपने नेत्रों को लगाए रहे तो आप अपने नेत्रों के धर्म का उल्लघन करते हैं। और यह अधर्म आपको पतन की ओर ही ले जायेगा। इसके प्रमाण आज के युवकों के जीवन को तनिक निकट से देखने से आपको मिल सकते है।

यही बात अन्य तीन इन्द्रियो के सम्बन्ध मे कही जा सकती है।

इन्द्रियो की अपनी एक शक्ति होती है। यदि किसी एक इन्द्रिय से आप उसकी शक्ति से अधिक, कार्य ले तो शनै-शनै उसकी शक्ति क्षीण होती जायेगी और एक दिन ऐसा भी आयेगा जब वह अपना गुण खो बैठेगी।

उदाहरण के लिए हम बैटरी को ही लें। यदि किसी रेडियो की बैटरी चार घटे प्रतिदिन कार्य करने से तीन मास तक काम दे सकने की क्षमता रखती हो और आप उससे प्रति दिन १२ घटे काम ले, तो वह एक मास के उपरान्त ही बेकार हो जायेगी। इसी प्रकार टार्च यदि सारी रात जलाते रहे तो उसका शीघ्र ही मसाला

समाप्त हो जायेगा, यही बात इन्द्रियों के सम्बन्ध मे भी है। आपने देखा होगा कि जो लोग पढने लिखने का कार्य ही अधिक करते हैं, उन्हे ऐनक लगाने की शीघ्र ही आवश्यकता पड जाती है। इसका एक ही कारण है कि वे अपने नेत्रों की शक्ति से अधिक कार्य लेते हैं।

यदि इन्द्रियों के धर्म का उल्लघन होगा तो या तो मनुष्य अपने कर्त्तव्य, अपने धर्म, से गिर जायेगा, पथ भ्रष्ट हो जायेगा वह। अथवा जिस इन्द्रिय से उसके धर्म की परिधि से बाहर निकल कर काम लेगा वही उसको योग दान करना बन्द कर देगी।

अतएव इन्द्रिय धर्म का पालन करना मानव की उन्नति के लिए परम आवश्यक है।

अब मैं ग्राम धर्म के उन अर्थों पर आता हूँ जो प्राय ग्राम के सम्बन्ध मे लगाये जाते है। मेरे कहने का यह अर्थ कदापि नहीं है कि ग्राम धर्म से गांव के प्रति मानव के धर्म का अर्थ निकालना गलत है, अपितु मेरा तो आशय यह है कि ग्राम धर्म हमे दो धर्मों के सम्बन्ध मे सकेत करता है। एक इन्द्रियो सम्बन्धी धर्म और दूसरा ग्राम सम्बन्धी।

ग्राम धर्म आज के प्रजातान्त्रिक युग मे अपना विशेप स्थान रखता है। क्योंकि ग्राम धर्म अब कुछ व्यक्तियों के घरों के समूह के रूप मात्र मे ही नहीं रहा, अब उसका विकास हो गया है, और भविष्य मे ग्राम का और भी विकास होगा। आज ग्राम देश की एक इकाई और शासन की भी एक इकाई के रूप मे आ गया है। जैन धर्म के शास्त्रों मे जिस ग्राम को व्यवहारिक धर्मों मे प्रथम स्थान दिया था आज वही ग्राम प्रजातन्त्र की आधार शिला बन गया है। एक युग था जब सारी शक्ति शासन के केन्द्र, राजधानी मे केन्द्रित होती थी, ग्राम केवल उत्पादन क्षेत्र था, वहा के निवासी

भूमि से सोना उगलवाते थे, अपने खून-पसीने की कमाई, खाद्यान्नो को बाजार और शासन के भण्डारो को सौप देते थे और अपने जीवन की उपयोगी वस्तुओ के लिए अश्रुपात करते रह जाते थे। पर अब युग बदल रहा है, और उसके साथ-साथ नया समाज अगडाई ले रहा है। एक नई क्रांति आ रही है समाज मे। आज शक्ति के विकेन्द्रीकरण पर जोर डाला जा रहा है, आज ग्रामो मे खाद्यान्न ही नहीं उगते, अब वहा देश के शासक भी उगते है, ग्रामीण पहले अधिनियमो और राजकीय आज्ञाओ का पालन करते थे, पर आज अधिनियम निर्माताओ को चुनना, आदेशको को बनाना ही उनके अधिकार की बात हो गई है। आज ग्रामो के खेतो मे खाद्यान्नो के साथ-साथ राजनीति भी उगती है। इसलिए ग्राम का महत्व बढ गया है।

महात्मा गांधी ने जिस राम-राज्य का स्वप्न देखा था उसमे भी ग्राम को राज्यकीय व प्रशासकीय शक्ति का भागीदार माना जाता है।

गांधी जी ग्राम को शासन की पहली यूनिट अथवा इकाई बनाने के इच्छुक थे। और आज आप देखते है कि कितने ही शासकीय अधिकार ग्रामीणो और उनकी चुनी हुई पंचायतो को सौपे जा रहे है। प्रत्येक ग्राम एक छोटा सा राज्य बनता जा रहा है। जैन शास्त्रो मे इस उगते 'राज्य' के प्रति मानव के कर्तव्यो की पहले से ही व्याख्या उपलब्ध है।

यह तो साधारण समझ की बात है कि जिस ग्राम मे मनुष्य रहता है, जिस भूमि मे उसने नेत्र खोले, जिसका जल और जिसके खेतो के अन्न से उसके मानव शरीर का विकास हुआ, उस के प्रति उसका कुछ कर्तव्य है, कुछ धर्म है। क्योकि ग्राम की रक्षा ही उसकी रक्षा है। ग्राम की उन्नति मे ही ग्रामीण की उन्नति निहित

है। ग्राम में यदि शान्ति है, तो वह भी अपना जीवन शान्ति पूर्ण ढंग पर निबाह सकता है। ग्राम में यदि दुःख है, क्लेश और आपसी भेद भाव है तो फिर उसमे रहने वाले व्यक्ति को भी दुखित होना पडेगा, और आपसी वैमनस्य से उत्पन्न स्थिति का प्रभाव उस पर भी पड़ेगा। इस लिए उसके स्वार्थ सम्पूर्ण ग्राम के स्वार्थों से जुड़े हुए है। अतः यह देखना प्रत्येक ग्रामवासी का धर्म है कि उसके किसी कार्य से ग्राम के हितो को चोट तो नहीं पहुँच रही।

ग्राम की उन्नति के लिए और उस मे शान्ति बनाए रखने के लिए यह आवश्यक है कि सारे ग्राम वासी एक दूसरे से प्रेम करें। प्रेम ही वह शक्ति है जो मानव के हृदय मे आर्त और रौद्र ध्यान उत्पन्न नहीं होने देती। प्रेम की डोर मे ही सारे ग्राम को बाधकर प्रगति के पथ पर ले जाया जा सकता है। जो लोग अपने स्वार्थों के लिए अपने दूसरे ग्रामवासी के साथ अन्याय करते है उन्हे सोचना चाहिए कि यदि वही अन्याय उनके साथ हो तो उन के ऊपर क्या बीतेगी? उन्हे कैसा लगेगा अन्यायी का व्यवहार?

जिस ग्राम मे प्रेम नहीं होगा वहां के निवासियों में आपसी सहयोग भी नहीं रह सकता। और यदि आपसी सहयोग नहीं होगा तो आपस मे मन मुटाव, वैमनस्य की उत्पत्ति होगी। जो ग्राम की अवनति का कारण बनेगी।

मनुष्य का जीवन एक-दूसरे के सहयोग पर ही चलता है। ग्राम मे एक व्यक्ति कृषि करता है, तो दूसरा उसके लिए हल बनाता है, कृषि सम्बन्धी दूसरे यन्त्रो को तैयार करता है। कोई किसान के बाल काटता है, कोई उसके लिए कपड़ा बुनता है। और वे सब एक-दूसरे के जीवन से जुड़े हुए है। बिना एक के दूसरे का कार्य चलना दुर्लभ है। मानव जीवन में जब इतना सहयोग

वांछनीय है तो फिर सहयोग उनके जीवन का प्रमुख अंग बन जाता है। पर यदि वही सहयोग जो एक दूसरे के सुख का कारण बना है लुप्त हो जाय, तो क्या फिर भी कोई सुखी हो सकता है? "नहीं।"

एक ग्राम में एक निर्धन व्यक्ति को एक बार कुछ रुपयों की आवश्यकता पड़ी। वह अपने गांव के एक लाला के पास गया। वहा जाकर उसने कहा "लाला जी! एक काम से आया हूं" लाला जी ने उसे डाण्ट दिया और कह दिया कि "जाओ इस समय मुझे फुरसत नहीं है, फिर आना।" वह बेचारा फिर बोला "लाला जी! काम बहुत ज़रूरी है अगर आप इसी समय सुन ले तो बडी कृपा हो।"

लाला जी क्रोध में आ गए "नहीं नहीं, मेरे पास वक्त नहीं है" उस बेचारे को उन्होने बुरी तरह घुडका।

आदमी गरीब था, मजबूर होकर वापिस चला आया। कुछ दिनो उपरान्त लाला जी को किसी काम में उसी निर्धन व्यक्ति की सहाय्ता की आवश्यकता पडी। वह रास्ते में जाता हुआ दीख पडा, लाला जी ने उसे पुकारा और कहा "भाई! तनिक सुनना" उसने पीछे घूम कर देखा और बिना रुके ही अपने रास्ते पर चलने लगा। लाला जी ने फिर जोर से पुकारा और कहा "भाई, सुनो तो, मुझे तुमसे एक जरूरी काम है।" उस व्यक्ति ने पीछे मुड कर उत्तर दिया, "मेरे पास वक्त नहीं है लाला जी!"

लाला जी ने पूछा "वक्त कैसे नहीं है।" उस निर्धन व्यक्ति ने उत्तर दिया, "जैसे उस दिन आपके पास वक्त नहीं था।"

लालाजी बुरी तरह झेप गए। और उन्हे उस दिन महसूस हुआ कि ग्राम के प्रत्येक व्यक्ति से कोई न कोई काम निकल ही आता है इसलिए सभी के साथ सहयोग करना आवश्यक है।

इसी प्रकार यह भी आवश्यक है कि ग्राम का प्रत्येक व्यक्ति, ध्यान रखे कि ग्राम को उसकी किस सेवा की आवश्यकता है। जो व्यक्ति ग्राम की सेवा करता है ग्राम मे उसे ही उच्च स्थान प्राप्त हो जाता है। जो व्यक्ति अपने ग्राम मे ही आदर नहीं पाता, उस का बाहर भी कोई आदर नहीं करता।

ग्राम की बहुत सी बातो का उत्तरदायित्व सयुक्त रूप से सारे ग्रामवासियो का होता है। जैसे ग्राम की सफाई का ही प्रश्न लीजिए। यदि ग्रामवासी केवल अपने-अपने घरों की सफाई ही रखना अपना उत्तरदायित्व समझे और घर का कूडा-करकट सामने सड़क व गलियों मे फेंक दे, तो ग्राम की सारी सड़कें और गलिया कूडे-करकट से भर जायेगी और इससे ग्राम मे रोगो के फैल जाने का भय उत्पन्न हो जायेगा। आजकल होता भी यही है। सड़कों व गलियो की सफाई करना ग्राम वासी अपना कर्त्तव्य नहीं समझते और इसके कारण कभी पशुओं मे और कभी मनुष्यों मे छूत की बीमारिया फैल जाती है। और फिर इसी प्रकार एक ग्राम से दूसरे ग्राम मे पहुँच जाती है। अपने धर्म का पालन न करने से कितने ही ग्रामीण परिवार नष्ट हो जाते है।

ग्राम के कुओं को ही लीजिए। चूंकि वे किसी एक की सम्पत्ति नहीं होते इस लिए कोई उनकी परवाह ही नहीं करता। कितने ही लोग अंध विश्वासो के शिकार होते है और यदि उनके बालक को कोई रोग हो जाये तो वे किसी भगत के कहने से बालक के ऊपर गुड आदि कितनी ही वस्तुएं उतार कर कुएं मे फेंक आते है, जिस से कुएं का पानी सड़ जाता है और इससे फैलने वाले रोगो का प्रभाव सारे ग्राम पर होता है। यह कुकर्म केवल इसलिए होता है कि ग्राम वासी ग्राम के प्रति अपने धर्म को नहीं निभाते। जिस ग्राम मे रहते है उसी ग्राम के विरुद्ध अपने स्वार्थ पूरा करने के

लिये नीच से नीच कार्य कर बैठते है।

'पशु' ग्राम का बहुमूल्य धन है। उसके प्रति भी ग्रामवासियो का कुछ कर्त्तव्य है। पशुओ को गन्दे स्थान पर बांध दिया जाता है, मनुष्य अपने स्वाथ्य की तो चिन्ता करता है पर इन बेचारे बेज़बान पशुओ के स्वाथ्य की ओर उसका ध्यान नहीं जाता। यदि कोई पशु अपने मालिक के अतिरिक्त अन्य किसी की पशु-शाला मे चला जाय, किसी दूसरे के खेत मे पहुँच जाय, या किसी दूसरे के चारे पर जाकर मुंह लगावे, तो उसी क्षण वह व्यक्ति जो पशु की यह अनाधिकार चेष्टा समझता है लाठियो से उस पर टूट पडता है। यदि उस से पूछा जाय कि तुम इसे क्यो मारते हो? तो उत्तर मिलेगा, "यह मेरी पशुशाला मे, अथवा मेरे खेत मे क्यो आया? इसने मेरे पशुओ का चारा क्यो खाया?" अब भला उस से पूछे कि वह बेचारा पशु क्या जाने कि इस पर उसके मालिक का अधिकार नहीं है। तनिक सी भूल का इतना कडा दण्ड? यह तो हिंसा है। पाप है। पर ऐसे पाप होते रहते है और दूसरे ग्राम वासी देखते रहते है। कोई इसके विरुद्ध नही बोलता। जबकि इस क्रूरता को रोकना प्रत्येक ग्राम वासी का धर्म है।

कितने ही ग्रामों मे यात्रियो की सुविधा के लिये कुओ पर डोल डलवा दिया जाता है। पर कितने ही ऐसे व्यक्ति है जो रात्रि को उसे खोल लाते है। सारे ग्राम की सम्पत्ति को चुराना कितना पाप है। न इसका उन्हे ध्यान और न इस बात का ही कि यह ग्राम धर्म के प्रतिकूल है। सच्चा ग्राम धर्म का पालन कर्ता वही है जो ग्राम की सम्पत्ति की रक्षा करे।

कुछ व्यक्ति चोरी करने लगते है और बहुत से उनसे मेल होने के कारण उनके कुकर्म की सूचना नहीं देते। यह बात वे साधारण सी समझते है, पर इसका परिणाम यह निकलता है कि

फिर चोरी की आदत आम हो जाती है और प्रत्येक व्यक्ति दूसरे की चोरी करने का प्रयत्न करने लगता है। और फिर ऐसे ग्राम में कोई सभ्य व्यक्ति जाना पसन्द नहीं करता। साधु भी उस ग्राम की ओर मुंह नहीं करते।

इसी प्रकार जिस ग्राम में दलबन्दी हो जाती है वहां ग्राम धर्म का नामोनिशान तक नहीं रहता और इसी लिए वहां साधुगण नहीं जाते।

मैं समझता हूँ कि जिस ग्राम में चोरी न होती हो, लोगों में सहयोग हो, वैमनस्य न हो, दलबन्दी का नाम न हो, गुणियों व विद्वानों का समुचित आदर होता हो, मुकदमे बाजी न हो, दुराचारियों को शरण न मिलती हो, पशु वध न होता हो, और सारे कार्य धर्मानुकूल चलते हों, वहीं ग्राम धर्म का पालन होता है और वैसा ही ग्राम उन्नति की ओर जा सकता है।

यह मत भूलिये कि यदि ग्राम में चोरी होती है, दुराचारी बसते हैं, मुकदमेबाजी चलती है, विद्वानों का अपमान होता है, और इसी प्रकार के अन्य अधर्म होते हैं तो इस में सारे ग्राम वासियों को दोष पहुँचता है। क्योंकि सभी की संयुक्त जिम्मेदारी है कि ऐसे कुकर्म न हों। ग्राम की व्यवस्था ठीक तभी रह सकती है जबकि सभी अपने-अपने कर्त्तव्य का का पालन करते हों। आत्मा का धर्म आत्मा से अलग नहीं होता और मनुष्य के व्यवहार से ही उस की आत्मा का गुण प्रकट होता है।

ग्राम व्यवस्था ठीक रहे, ग्राम धर्म का पालन हो, इस के लिए यह भी आवश्यक है कि ग्राम का एक स्थविर हो, और सारा ग्राम उसके आधीन अनुशासित हो।

शास्त्रों ने ग्राम के लिए ग्राम स्थविर की आवश्यकता पर भी प्रकाश डाला है।

ग्राम स्थविर

अब मै आपको ग्राम स्थविर की आवश्यकता और उसके धर्म के सम्बन्ध मे बताऊँगा। ध्यान रहे कि जहां शास्त्रो मे ग्राम धर्म का वर्णन है वहीं ग्राम स्थविर की आवश्यकता भी स्पष्ट की गई है।

ग्राम स्थविर ग्राम के मुखिया अथवा नेता को कहते है। जो ग्राम मे व्यवस्था स्थापित करता है और ग्राम धर्म का सरक्षण करता है, वही स्थविर है। शास्त्रो मे कहा गया है कि जिसके मस्तक के बाल सफेद हो गए है अथवा जो वयोवृद्ध [दाना] हो गया है वह स्थविर नहीं कहलाता, किन्तु जिसके हृदय मे अहिसा, सत्य, सयम, दम और तप आदि धर्म वास करता है तथा जो दोष रहित एव धीर है, वही सच्चा स्थविर अथवा 'धर्म-नायक' है।

जैसे किसी भी हरे-भरे खेत की फसल की रक्षा के लिए किसी रखवाले की आवश्यकता होती है। किसी सेना मे अनु-शासन बनाए रखने के हेतु सेना नायक की आवश्यकता होती है उसी प्रकार ग्राम सुव्यवस्था बनाए रखने के लिए स्थविर की आवयश्कता है। जिस ग्राम का कोई स्थविर नहीं हो, जहा लोगो को धर्म पथ बताने वाला कोई न हो, क्या वहा ग्राम धर्म चल सकता है। 'कदापि नहीं'।

स्थविर वही हो सकता है जो धर्म को भली भाति समझता हो, जिसे अनुभव भी हो और जो स्वय धर्म का अवलम्बन करता

हुआ दूसरों को भी धर्म ज्ञान करा सके। जो सारे ग्राम को अपनी संतान के समान समझे उसमें ही ग्राम में सुव्यवस्था बनाए रखने की क्षमता हो सकती है।

जो पक्षपात न करता हो, जो न्याय करने में झिझकता न हो, जिसे धर्म का ज्ञान हो, वह ही स्थविर के धर्म का पालन कर सकेगा।

सम्राट् चन्द्रगुप्त के दरबार में ग्रीस निवासी मैगस्थनीज आया था। उसने उस समय के भारत के सम्बन्ध में जो लिखा है, वह हमारे लिए आदर्श बन सकता है। उसने लिखा है कि भारतवासी अपने घरों में ताला नहीं लगाते, क्योंकि यहा कोई किसी की वस्तु नहीं चुराता, यहां के लोग झूठ नहीं बोलते। परन्तु मैगस्थनीज द्वारा वर्णित व्यवस्था का एक ही रहस्य था कि प्रत्येक ग्राम का एक नायक, मुखिया अथवा स्थविर होता था, जो देखता था कि कोई व्यक्ति किसी की वस्तु तो नहीं चुराता, कोई किसी नारी की ओर कुदृष्टि तो नहीं डालता। सारा ग्राम उसके आदेशों का पालन करता था। पर आज की दशा उसके विपरीत है। मुखिया तो आज भी होते हैं पर न कोई उनकी चिन्ता करता है और न स्थविर अपने धर्म को ही समझते है। पर जिस ग्राम मे स्थविर नहीं, कोई व्यवस्था नहीं, वहा महात्मा भी नहीं जाते।

एक ग्राम मे एक दिन एक थानेदार पहुँचा और वह कई बार एक विधवा के घर की ओर जाता दिखाई दिया। मुखिया ने देखा कि वह विधवा के घर मे कई बार जा चुका है। उसे बात खटक गई। जब फिर थानेदार उधर से निकला, मुखिया ने बिना इस बात की चिन्ता किए कि वह राज्यकीय कर्मचारी है, थानेदार को रोक कर कहा कि क्या बात है जो आप बार-बार उस घर में जाते है, आप हमे बताइये कि आप का क्या कार्य है? आपको पुरुष

वर्ग से बाते करनी चाहिये, जनाने घर मे आप इस प्रकार न जाइये।

उस मुखिया ने फिर थानेदार को उधर न जाने दिया। चाहे उसे कितनी ही परेशानियां उठानी पड़ीं। यह था स्थविर का कर्तव्य। जहा ऐसे कर्तव्य परायण स्थविर हों वहा दुराचार फिर क्यो फैलेगा?

स्थविर के अभाव मे ग्राम मे फूट हो जाती है, लोग अपनी मनमानी करने लगते है और ग्राम अवनति की ओर जाने लगता है।

एक ग्राम में ग्राम स्थविर का चुनाव होना था। सारे ग्राम के लोग एकत्रित हुए। ग्राम का एक निर्धन व्यक्ति सभा मे जाकर आगे बैठ गया। जिन के सामने वह जा कर बैठा था उन्होंने ताना मार कर कहा कि देखो तो आगे आकर ऐसे बैठ गया है जैसे मानो गाव का चौधरी यही हो। और उसे वहा से उठा दिया। वह बेचारा लज्जित होकर सब से पीछे जा बैठा और उसने इसे अपमान समझ कर निर्णय कर लिया कि वह ग्राम का चौधरी ही बन कर दिखायेगा। उसके पास धन नहीं था। पर अपने सकल्प को पूरा करने के लिए उसने दूसरे ही दिन से सारे ग्राम की सेवा करनी आरम्भ कर दी। कोई बीमार पड जाये तो उसकी खबर लेने, औषधि आदि लाने के लिए वह पहुँच जाता, किसी के यहां विवाह आदि कोई उत्सव हो तो वह सहयोग देता, प्रत्येक ग्राम वासी के लिए हर समय उसकी सेवा प्रस्तुत रहती थी। अन्ततः ग्राम वासी सभी उसे आदर की दृष्टि से देखने लगे। सभी मे उसके प्रति प्रेम उमड आया।

कुछ दिनों उपरान्त ग्राम के चौधरी का निर्वाचन पुन होने लगा। सभा बुलाई गई। वह व्यक्ति सभा में जाकर सब से पीछे

बैठ गया। पर कितने ही लोग दौड़ पड़े उसे आगे ले आने के लिए। उसने आगे बैठने से इंकार किया पर सभी ने मजबूर कर दिया और एक स्वर से सभी ने उसे ही चौधरी बनाने का प्रस्ताव किया। सर्व सम्मति से वह चौधरी बन गया, तो उसने उन्हीं व्यक्तियों को जिन्होंने एक बार यह कह कर कि देखो तो कैसा आगे आकर बैठ गया है मानो गाव का चौधरी है, उसे आगे से उठा दिया था, उस दिन ललकार कर कहा, देखो बन गया ना मैं गाव का चौधरी ? और यह कह कर उसने वह बीती बात दोहराई। ग्राम का एक अनुभवी वृद्ध बोला—'हा तुम ग्राम के चौधरी बनने योग्य हो तभी तो सभी ने सर्व सम्मति से चौधरी चुना है। पर तुम ने वह बात दोहरा कर अमृत मे विप घोल दिया है। तुम्हे अहकार नहीं होना चाहिए।'

यह उदाहरण इस बात का ज्वलत प्रमाण है कि ग्राम का मुखिया वही होता है जो सारे ग्राम की सेवा करे, सारे ग्राम को अपना कुटुम्ब माने और जिसने अपने सहयोग और प्रेम भाव से सारे ग्राम को जीत लिया है। भगवान् ने महात्माओं को भी यही कहा है कि अभिमान मत करो, जिस व्यक्ति मे अभिमान आ जाता है वह भी स्थविर के धर्म को नहीं निभा सकता।

जिस ग्राम का स्थविर कुशल शासक होता है, जो न्याय को अपना धर्म बना लेता है, जो दुराचार को सहन नहीं करता, वह अपने ग्राम की सुव्यवस्था करने मे सफल हो जाता है। ग्राम मे यदि चोर उचक्के और दुराचारी है तो यह भी ग्राम स्थविर का ही दोप है। क्योंकि वह अपने कर्तव्य का पालन करता है तो कोई कारण नहीं कि ग्राम मे ऐसे लोग रहे जो पतित है। समस्त ग्राम वासियो के प्रति उसके कर्तव्यो की एक लम्बी सूची है। यदि स्थविर सुयोग्य है तो फिर ग्राम वासी पतित हो ही नहीं सकते।

मान लीजिए आप ही ग्राम स्थविर हैं और आप जानते हैं कि उक्त व्यक्ति का आचरण दोषपूर्ण है, तो आपका कर्तव्य हो जाता है कि आप उसे सुपथ पर लायें। उसे ऐसी शिक्षा दे कि वह कुपथ को त्याग दे।

ग्राम समृद्धिशाली हो, दु ख दरिद्रता का ग्राम मे प्रवेश न हो, इसका ध्यान ग्राम स्थविर को रखना चाहिए। एक ग्राम का स्थविर कर्तव्य परायण व्यक्ति था। वर्षा ऋतु थी, मूसलाधार पानी गिर रहा था, ग्राम के निकट मे ही एक नहर थी जो कुछ मील दूर पर वहती एक नदी से निकलती थी। रात्रि का समय था, सारा ग्राम सोया पडा था। ग्राम स्थविर की आंख खुली और वह कम्बल ओढकर नहर की ओर जाने को तैयार हुआ, उसकी पत्नी ने रोक कर कहा "घोर अधकार है, मूसलाधार पानी गिर रहा है, बिजली चमक रही है, बादलों का आर्त्तनाद हृदय को कम्पित कर रहा है। रास्तो मे पानी भरा है, आप ऐसे मे आधी रात के समय घर से बाहर न जाइये।"

ग्राम स्थविर बोला "तुम जानती हो मै ग्राम स्थविर हूँ। ग्राम वासियो ने ग्राम की रक्षा का भार मेरे कधो पर डाल दिया है और वे निश्शक होकर सो रहे है, वे सोचते होगे कि उनका स्थविर योग्य है फिर उन्हे चिन्ता करने की क्या आवश्यकता है ? कई दिन से वर्षा हो रही है यदि कहीं नदी मे भयकर बाढ आ गई हो, और बाढ का पानी नहर मे आ गया हो और नहर ग्राम की ओर टूट पडे तो ग्राम बह जायेगा। इस लिए मै घर मे सोया नहीं रह सकता।"

पत्नी के बहुत मना करने पर भी वह नहर की ओर चल पडा। वहा जाकर देखता है कि नहर लबालब भरी है। और नहर का ग्राम की ओर का किनारा एक जगह टूटने ही वाला है।

वह फावड़ा तो लेकर चला ही था, लग गया मिट्टी डालने। पर जहा वह मिट्टी डाल रहा था, वहां पानी की टक्कर बढ़ती जाती थी, बहुत प्रयत्न करने पर भी जब पानी ऊपर से उतरने ही लगा, उसे कोई उपाय सुझाई न दिया। ग्राम मे जाता तो इतनी देर मे सारी नहर का बहाव ग्राम की ओर हो जाता और फिर उसने आवाज लगाना भी इस लिए अच्छा न समझा कि ग्रामवासी भरी नींद सो रहे है, जगाऊँगा तो उन्हे कष्ट होगा। सोचते सोचते एक ही उपाय उसे सूझा, वह जहा से किनारा कट रहा था, वहीं लेट गया, पानी फिर भी पूरी तरह न रुका, तो वह बहुत चिन्तित हुआ और सोचने लगा कि यदि मै अपने ग्राम को बहने से न रोक पाया तो ग्रामवासी कहेंगे कि उनका स्थविर अयोग्य है। मैंने आज तक अपने धर्म का पालन किया है परन्तु एक यही विपत्ति क्या मेरे किए कराये पर पानी फेर देगी ?

बाढ़ के पानी मे किसी पेड का तना बहता आ रहा था। वह स्थविर के शरीर से आ टकराया। बिजली चमकी, तो स्थविर ने देखा कि यह एक मोटा तना है जो उससे टकराया है। उसने तुरन्त उसे अपनी ओर खीच लिया और किनारे पर उसे रख कर स्वय उसे सम्भाल कर बैठ गया। सारी रात ऐसे ही बैठा रहा। प्रात. हुई तो लोगो ने देखा कि उनका स्थविर नहर पर एक पेड के तने को पकड़े बैठा है। सारे ग्राम वासी उसकी मुक्त कण्ठ से प्रशसा करने लगे और फावडे लेकर किनारे को ठीक करने मे जुट गए।

यह था स्थविर का आदर्श। परन्तु यह अदर्श भी तभी निभाया जा सकता है जब सारा ग्राम अपने स्थविर के प्रति वफादार रहे। जिस ग्राम के निवासी अपने स्थविर की आज्ञाओं का पालन नहीं करते वह कभी खुशहाल नहीं हो सकता।

स्थविर के आदर्श का एक दृष्टात मै आपके सामने रखता हूँ ताकि आप समझ जाये कि स्थविर किस प्रकार ग्राम की सेवा करने के लिए प्रतिक्षण तत्पर रहता है।

एक ग्राम मे यह रिवाज था कि स्थविर के मर जाने पर उसके पुत्र को ही स्थविर बना दिया जाता। एक पण्डित जी उस ग्राम के स्थविर थे। परन्तु उनका पुत्र बुद्धिहीन था। पण्डित जी की मृत्यु हो जाने पर ग्राम वालो की सभा हुई, नए स्थविर की घोषणा करने के लिए। परन्तु सभा मे सभी ने एक स्वर से कहा कि पण्डित जी का पुत्र स्थविर बनने योग्य नहीं है, क्यो कि वह शिक्षित नहीं है, इसलिए रिवाज तोडकर किसी दूसरे ही व्यक्ति को स्थविर बना दिया जाय। सर्व सम्मति से एक दूसरे व्यक्ति को स्थविर बना दिया गया। पण्डित जी के पुत्र को बड़ी आत्मग्लानि हुई और वह इसे अपना अपमान समझ कर चिन्तित रहने लगा, उसकी मा भी उसे ताना दिया करती कि ऐसे पुत्र से जिसने अपने कुल की मर्यादा की रक्षा ही नहीं की, वह निपूती होती तो अच्छा था।

कुछ दिनो बाद ग्राम मे अकाल पड गया। अनावृष्टि के कारण। उस ग्राम के पास ही एक तालाब था। उसकी तल-हटी मे एक मूर्ति दबी हुई थी। ग्रामीणो मे यह अध विश्वास था कि यदि वर्षा न हो तो उस मूर्ति को खोदकर निकाल लिया जाए और उसकी पूजा की जाए तो वर्षा हो जाती है, पर जो व्यक्ति उस मूर्ति को निकालने के लिए पहला फावडा चलाता है उसकी सप्ताह उपरात मृत्यु हो जाती है। इस लिए जब पशु और ग्रामवासी पानी न मिलने के कारण प्यासे मरने लगे और खेत भी खडे-खडे सूख गए तो ग्राम स्थविर ने ग्रामवासियो की एक सभा इस स्थिति पर विचार करने के लिए बुलाई। ग्राम वालो ने

विचार करके यह निश्चय किया कि वही तालाब खोद कर मूर्ति निकाली जाय और उसकी पूजा की जाय। बात तय होनी थी कि यह प्रश्न आन खडा हुआ कि मूर्ति निकालने के लिए पहला फावडा कौन मारेगा। वृद्ध जनों ने बताया कि अब तक की रीति के अनुसार सर्व प्रथम स्थविर ही फावडा उठाता है। पर वह स्थविर मरने से घबराता था, उसने कहा कि आप लोग स्थविर दूसरा चुनलें। मै अपनी बलि देने को तैयार नहीं हूँ। अब ग्रामीणों के सामने जटिल समस्या आगई।

मृत पण्डित जी का पुत्र सभा मे सब से पीछे बैठा था। वह सभी लोगों की बात सुन रहा था। लोग स्थविर पर जोर डाल रहे थे कि जो भी हो तुम स्थविर हो तो तुम्हें ही मूर्ति खोदने का उद्घाटन करना पड़ेगा। पर वह तैयार नहीं होता था, लोग उसे बुरा-भला कहने लगे। जब समस्या न सुलझी और मृत्यु के भय से किसी ने स्थविर बनकर मूर्ति खोदने का उद्घाटन करना स्वीकार न किया तो, मृत स्थविर का पुत्र पीछे से उठा और कहने लगा कि "यह काम मैं करूंगा" सभी लोग जो उसे मूर्ख और पतित समझते थे, आदर और आश्चर्य से उस की ओर देखने लगे।

तिथि निश्चित हुई और निश्चत दिन सारे ग्राम ने उसे सुन्दर वस्त्र पहना कर तिलक लगाया, सभी ने उस की जय-जय कार मनाई। स्थविर की पगडी उसके सिर पर रखी और जलूस बनाकर तालाब की ओर चले। उस ने ज्यो ही फावड़ा उठाया, उसकी मां चीख पड़ी, वह अपनी मां से बोला, "तुम्हे तो आज प्रसन्नता होनी चाहिए कि तुम्हारा पुत्र सारे ग्राम का स्थविर है, और ग्राम की रक्षा के लिए अपनी जान हथेली पर रख कर आगे आया है।"

उसकी मां का करुण क्रन्दन सुनकर ग्राम वासियों का दिल पिघल गया। उनकी आंखो मे आंसू आ गए। वृद्ध जन बोले, "यह ब्राह्मण की इकलौती सन्तान है इसकी वलि का अर्थ है, ब्राह्मण परिवार का अन्तिम दीपक बुझ जाना। इस लिए इस से यह काम मत कराओ" सारे ग्राम ने यह बात मान ली और सभी नर नारी उसे फावडा उठाने से रोकने लगे।

पर वह न रुका, वह बोला, "इस समय मै ग्राम का स्थविर हूँ। आपका धर्म है मेरी आज्ञा का पालन करना और मेरा धर्म है ग्राम की रक्षा के लिए प्राण तक दे देना। मै ग्राम को भूखे-प्यासे मरते नहीं देखना चाहता। मूर्ति खोद कर निकालने से तो केवल मेरी ही मृत्यु होगी, ग्राम के कितने ही परिवारो के दीपक बुझने से बच जायेंगे। और यदि मूर्ति न निकाली गई तो कौन जाने ग्राम के सारे ही दीपक बुझ जायें। इस लिए तुम तैयार रहो, फावडा उठाये। पहले मुझे खोदना आरम्भ करने दो, वाद को तुम सब उसे खोदने मे लग जाओ।"

उसने फावडा उठाया और खोदना आरम्भ कर दिया और ग्राम के सारे युवक तालाब खोदने मे लग गए। मूर्ति बहुत गहरी दबी थी। खोदते-खोदते पानी निकल आया। बात यह थी कि तालाब की तली मे नीचे एक जल स्रोत था और उसके निशान के लिए वहां एक मूर्ति दाब दी गई थी। आडम्बर रचने वालो ने उसकी कुछ और ही कथा बना दी थी। पानी निकला और इतना निकला कि उन्होने अपने ग्राम के खेत सींच लिए और पशु धन व ग्राम के सारे प्राणी मृत्यु का ग्रास होने से बच गए। पडित जी के पुत्र का भी वाल बांका न हुआ।

इस दृष्टांत से स्पष्ट हो जाता है कि स्थविर को ग्राम के हित मे अपने प्राण तक न्योछावर करने को तत्पर रहना चाहिए।

ग्राम स्थविर को ध्यान रखना होता है कि कहीं कोई किसान अपने बैलो पर अधिक बोझ तो नहीं लाद रहा ? यदि ऐसा होता हो तो उसे रोकना चाहिये। उसे ग्राम के वृक्षा की रक्षा करनी चाहिए। विद्वानो और गुणियो का आदर करने के लिए सारे ग्राम को प्रेरणा देनी चाहिए।

ग्राम स्थविर अपने ग्राम का पूर्ण शासक, नेता, सरक्षक और सेवक होता है।

* द्वितीय सोपान *

नगर धर्म

ग्राम धर्म और ग्राम स्थविर की व्याख्या तो मै कर ही चुका हूँ, अब मैं नगर धर्म पर प्रकाश डालूंगा जो हमारे आधार भूत धर्मों मे द्वितीय है।

नगर और ग्राम मे कोई विशेष अन्तर नहीं है, अन्तर जो भी है वह इन दोनो की स्थितियो का है। ग्राम और नगर एक-दूसरे के आधाराधेय है, एक दूसरे पर आधारित है। विना ग्राम के नगरो का कार्य नहीं चल सकता और विना नगरो के ग्रामो का कार्य चलना दुर्लभ है। यदि ग्राम शरीर है तो नगर मस्तिष्क है। जिस प्रकार शरीर के प्रत्येक अग का केन्द्र मस्तिप्क है, मस्तिष्क द्वारा ही सारा शरीर शासित है। हाथ उस समय कार्य करता है जब मस्तिष्क का आदेश मिलता है और मस्तिष्क का आदेश बिल्कुल विद्युत् के स्विच की ही भाति है। जैसे स्विच दबा और प्रकाश हो गया, उसी प्रकार मस्तिष्क मे विचार आया और अग कार्य करने लगा। पर मस्तिष्क बिना शरीर के कुछ नहीं है। इसी प्रकार नगर और ग्राम का सम्बन्ध है। बल्कि ग्राम और नगर एक-दूसरे के पूरक है।

ग्राम खाद्यान्न उत्पन्न करने के छोटे-छोटे केन्द्र है, पर नगर

वह स्थान है जहाँ से उत्पादन का वितरण और वस्तुओ की अदला-बदली होती है। नगर मे मनुष्य जाति की जीवनोपयोगी अन्य वस्तुएँ तैयार होती है। खेती के उपयोग मे आने वाले यंत्रों का उत्पादन केन्द्र है नगर और ग्रामो के समूह के लिए आवश्यक वस्तुएँ एकत्रित करके जरूरतमन्दों के पास तक पहुँचाने का कार्य भी नगर के हाथो मे ही होता है।

नगर स्वय मे एक वड़े ग्राम अथवा कितने ही ग्रामो के समूह से अधिक कुछ नहीं है। यदि ग्रामो की जनसख्या कुछ सैकडो मे होती है तो नगरो की सहस्रो मे, अथवा किसी-किसी नगर की लाखो मे भी होती है। नगर या तो मण्डी होता है अथवा औद्योगिक केन्द्र, और कभी-कभी शासन केन्द्र होने के कारण ही कोई वस्ती नगर वन जाती है। भारत का इतिहास साक्षी है कि जितने वडे-वडे नगर आज भारत मे है, जिनकी लाखो तक जनसख्या पहुँच गई है, उनकी उत्पत्ति ग्राम से हुई है। पहले किसी युग मे वे एक ग्राम थे, और उन्हे किसी कारण वश उन्नति का अवसर मिला और नगर के रूप मे परिणत हो गए। परन्तु अधिकतर नगर नदियो अथवा सागर के तट पर है, जो इस बात का प्रतीक है कि जहाँ यातायात के साधन उपलब्ध हुए, वहीं ग्राम नगर वनते रहे। भारत मे वीते युग मे यातायात का सावन नौकाएं थीं, माल लाने व लेजाने के लिए उस से वडा और सुलभ साधन पहले नहीं था इस लिए व्यापारियो ने कुछ विशेष ग्राम चुन कर अपनी सुविधा अनुसार उन्हे केन्द्र वनाया। और ज्यों-ज्यो सभ्यता का विकास हुआ, उसके साथ-साथ परिवहन साधन का भी विकास होता रहा। शासको ने जलवायु के विचार से भी कुछ स्थानो को उन्नतिशील वनाने का प्रयत्न किया। प्रकृति भी कुछ स्थानो को सुरम्य नगर वनाने मे सहायक हुई पर वे स्थान जो नगर वन

गए, उस युग मे भी और आज भी ग्रामो के आधार पर ही टिके है। यदि कोई औद्योगिक केन्द्र है तो वह इस लिए कि उस के चारो ओर फैले ग्रामो मे उस नगर के उद्योगों के लिए कच्चा माल आसानी से मिल जाता है। अतएव ग्राम और नगर एक-दूसरे से हाथ-पैरों की भांति, हृदय-मस्तिष्क की भांति, सम्बन्धित है। और उनकी परिस्थितियो की भिन्नता के कारण ही वहाॅ के नागरिको के जीवन मे कुछ हद तक भिन्नता है। इसलिए ग्राम धर्म और नगर धर्म लगभग एक समान होते हुए भी थोड़ी सी भिन्नता लिए हुए है। और इसी लिए शास्त्रकारो ने नगर और ग्राम धर्म को अलग-अलग स्थान दिया है। परन्तु स्थान-स्थान पर इन दोनो धर्मो मे एकरूपता मिलती है।

'नगर धर्म' नगर के प्रति कर्तव्यो की ही सूची है। क्योंकि यह तो मै पहले ही कह चुका हूॅ कि कर्तव्य ही धर्म है। नगर मे चूंकि एक विशेष प्रकार के प्राणी अधिक संख्या मे मिलते है इस लिए उन के सोचने के तरीके भी अपने ही ढग के होते है। जैसे मान लो कि कोई नगर व्यापारिक केन्द्र है इस लिए उस नगर की अधिक जनसंख्या व्यापार पर आधारित होगी, कोई व्यापारी होगा, तो कोई व्यापार का दलाल और कोई व्यापारिक कर्मचारी। व्यापारियों की अपनी एक विशेष मनोवृत्ति होती है, इस लिए उन के नगरवासियो के सोचने, समझने तथा व्यवहार का तरीका भी व्यापारिक रग लिए होगा और यदि कोई औद्योगिक केन्द्र है तो उस नगर की अधिक जनसंख्या मजदूर वर्ग की होगी। और उनकी मनोवृत्ति भी मजदूरवर्गीय ही होगी।

परन्तु चूंकि नगर वस्तुओ की अदला-बदली करने वाली एक बहुत बडी जनसख्या की बस्ती होती है, वहाॅ यातायात परिवहन के साधन उपलब्ध होते है, वे किसी न किसी प्रकार के केन्द्र होते

हैं, इस लिए ग्रामों की पूंजी उन नगरों में खिंच कर चली आती है। और वहां एक वर्ग ऐसा बन जाता है जिस पर धन आ जाता है जो अपने जीवन को वैभव पूर्ण बनाने की सामर्थ्य रखता है, इसलिए वहां शिक्षा आदि के साधन अधिक मात्रा में मिल जाते हैं, मनोरंजन के साधन भी होते हैं और प्रत्येक विचार की सभा-सोसाइटियाँ भी मिल जाती हैं, जो नगर की उन्नति में सहायक हो सकती हैं। परन्तु देखा यह गया है कि आजकल जिस नगर में मानव उन्नति के साधन अधिक मात्रा में उपलब्ध हैं वहीं मानव के पतन के साधन भी उतनी ही अधिक संख्या में प्राप्त है। और वहीं मानवता का अधिक ह्रास हो रहा है। क्योंकि लोग नगर धर्म को भूलते जाते हैं और स्वार्थों के चक्कर में पडकर वे नगर को तबाही के रास्ते पर ले जाते हैं। उसकी बड़ी वजह होती है पैसे का मोह। क्योंकि नगर में लखपति-करोडपति भी होते हैं, उनके महलों और उनके ऐश्वर्य के प्रसाधनों को देख कर मुँह में पानी भर आता है, "हाय मैं ऐसा क्यों न बनूं ?" कितने ही लोग ऐसा सोचकर प्रत्येक अनुचित से अनुचित कार्य करने में भी नहीं हिचकते।

जैन धर्म के शास्त्रकारों ने 'नगर-धर्म' की जो व्याख्या की है यदि उसका पालन नगर निवासी करते तो नगरों में इतना पतित और कुत्सित जीवन दिखाई न पडता। जैन शास्त्रकारों के अनुसार नगर के प्रत्येक व्यक्ति पर नगर के हित में कुछ कर्तव्य निभाने का उत्तरदायित्व आ जाता है। क्योंकि जिस नगर में व्यक्ति रहता है वहाँ की सड़कों, प्रकाश और अन्य साधनों से वह लाभान्वित होता है, इसलिए नगर की उन्नति ही उसकी उन्नति है। जब नगर निवासी इस बात को हृदयगम कर ले तो नगर के प्रत्येक अंग के प्रति उन्हे प्रेम हो और प्रेम ही एक ऐसा जादू है

जो मनुष्य को उसके प्रति जिस से वह प्रेम करता है, कोई अन्याय नहीं करने देता।

भगवान महावीर ने अहिंसा पर बल दिया है। क्योंकि अहिंसा ही मनुष्य में मनुष्यता को जीवित रखती है। अहिंसक कभी किसी के परिश्रम पर डाका नहीं डालता। यदि नगर निवासी अहिंसा-व्रती हो तो फिर नगर में कोई दुखी न रहे।

आपसी सहयोग जिस प्रकार ग्राम धर्म का प्रमुख अंग है इसी प्रकार सहयोग को नगर धर्म में भी मुख्य स्थान प्राप्त है। नगर निवासी को सोचना चाहिए कि यह नगर मेरा अपना ही परिवार है। यदि मैं नगर के काम नहीं आऊँगा तो नगर में रहने का मुझे भी कोई अधिकार नहीं रहेगा।

माण्डवी का किला एक विराट् किला था जिसके सामने चित्तौड जैसे किले तुच्छ है, उस किले मे कभी ओसवालो के १ लाख परिवार बसते थे, परन्तु आज एक ही परिवार है। इसका रहस्य खोजिये तो आप को ज्ञात होगा कि जिस समय १ लाख ओसवाल परिवार थे उस समय उनमे आपसी सहयोग था। यदि किसी ओसवाल की आर्थिक स्थिति बिगड जाती थी, वह निर्धन हो जाता था, तो दूसरे ओसवाल बिना किसी को बताए गुप्त रूप से ही उसकी सहायता करते थे, किसी को कानो-कान पता भी नहीं चलता था और वह ओसवाल फिर समृद्धि शाली हो जाता था। पर धीरे-धीरे सहयोग समाप्त हो गया, वैमनस्य ने जड पकडी और ओसवाल बिरादरी पतन की ओर जाने लगी, जिसका परिणाम आपके सामने ही है।

नगर मे शांति बनाए रखना प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य है। आपने देखा होगा कि जब पंजाब मे झगड़े उत्पात हुए, मार्शल-ला लगा, गोलिया चलीं, न जाने कितने निरपराध व्यक्तियो

के रक्त से नगरो की सडके लाल हो गई। क्या नगरों को इस रक्तपात से कोई लाभ हुआ ?

पजाब मे हिन्दु-मुस्लिम दगे हुए, कितने ही लोगो के घर अग्नि मे स्वाहा हो गए। मुसलमान यहा से चले गये। पर कितने ही हिन्दुओ के व्यापार ठप हो गए। कितने ही उद्योग समाप्त हो गए। उस समय तो पागलपन मे किसी को कुछ नहीं सूझा। पर आज लोग पछताते है। पिछले दिनो अमृतसर और जालधर मे पाकिस्तान से मुसलमान आये, उन्हीं हिन्दुओ ने, जो सन सैतालीस मे उनके शत्रु थे, उनका भव्य स्वागत किया। ऐसा स्वागत किया कि लगता था मानो दो बिछडे हुए भाई बडी मुद्दत के बाद बडी कठिनाई से मिले है।

सहयोग किसी भी नगर की उन्नति का रहस्य है। जिस नगर मे सहयोग न होकर दलबन्दी हो जाती है उसकी उन्नति अवरुद्ध हो जाती है।

नगर के प्रत्येक निवासी का कर्तव्य है कि वह इस बात का ध्यान रखे कि कहीं उस का कोई कार्य नगर के अहित मे तो नहीं ? यदि ऐसा है तो उसे वह कार्य नहीं करना चाहिए।

मैने स्वय अपनी आखो से देखा है कि लोग केला खाते है और छिलका सड़क पर फेक देते है। और जब कोई व्यक्ति उधर से निकलता है, और छिलके पर पैर पड जाने के कारण फिसल कर गिर जाता है तो वे खड़े-खडे हसते है। अपने इस कृत्य पर वे पुलकित हो उठते है, जब कि उन्हे अपने इस कुकर्म पर लज्जा आनी चाहिए थी। क्योकि उन्हें यह नहीं भूलना चाहिए कि सडक के अकेले वे स्वामी नहीं है, नगर की सडक पर ऐसी वस्तुए फेकने का उन्हे नैतिक अधिकार नहीं है जो दूसरे आने-जाने वालो को कष्ट पहुँचाए। सद्गृहस्थियों को अपने बालको को

ऐसी शिक्षा देनी चाहिए कि वे बडे होकर इन बातो का ध्यान रखे।

हमारे देश से कितने ही लोग चीन गए। मैं उनके राजनीतिक विचारो और व्याख्यानो की चर्चा नहीं करना चाहता। परन्तु एक बात सभी लोग कहते है कि वहा सडको पर घूम जाइये, आप को कहीं कोई कूडा-करकट नहीं मिलेगा। बल्कि लोग सडको पर थूकते तक नहीं है। थूकने और छिलके आदि फेंकने के लिए सडकों के किनारे बरतन रखे होते है, प्रत्येक नागरिक अपना यह धर्म समझता है कि यदि वह थूकना चाहता है तो थूकने के लिए रखे बरतन मे जाकर थूके। क्यो कि वह समझता है कि सडक पर थूकने से नगर मे रोगो के फैल जाने की सम्भावना रहती है। परन्तु हमारे देश के नगरो मे ऐसी बात नहीं, यहा के लोग सड़को पर थूकते और कूडा-करकट, छिलके आदि तो फेंक ही देते है। साथ ही कितने लोग तो अपने बच्चो को सुबह सुबह टट्टी भी सडकों के किनारे अथवा नालियों मे ही करा देते है। आप कह सकते है कि जब कूडा करकट फेकने और थूकने आदि के लिए नगरपालिकाएं कोई स्थान निश्चित नहीं करतीं अथवा बरतन आदि नहीं रखती तो फिर बेचारे नागरिक ही क्या करें? परन्तु यह भी नगर निवासियो की ही कमी है। नगरपालिकाओ मे भी तो उनके ही प्रतिनिधि है। क्यो नहो वे ऐसे प्रतिनिधि चुनते जो इन बातो की ओर समुचित ध्यान दे? किन्तु मुझे तो सन्देह है कि यदि नगरपालिका चीन की भाति कूडा-करकट और थूकने के लिए बरतन रख भी दे तो नागरिक उनका उपयोग भी करेंगे? क्योंकि प्राय: बडे-बडे रेलवे प्लेट फार्मो और यात्रियों के विश्रामालयों मे थूकदान और कूडा-करकट फेंकने के स्थान बने होते है पर यात्री अपनी आदत से बाज नही आते और जहा-तहा थूकते

और कूड़ा फेंकते हुए देखे जाते हैं। इसका एक ही कारण है कि हम अधिकारों की बातें तो करते है पर अपने धर्मों का पालन करना पाप समझते है।

आप अपने मनको टटोलिए और देखिये कि आप स्वय कितने धर्म परायण हैं। दूसरों की बात जाने दीजिए, मैं जैनी भाइयों से कहता हूँ। आप के शास्त्रों मे तो 'नगर धर्म' का मुख्य स्थान है, आप क्यों नहीं नगर धर्म का पालन करते ? आप विश्वास रखें कि यदि जैनी ही नगर धर्म का पालन करने लगे तो वे नगर के श्रेष्ठ नागरिक माने जाने लगें और फिर वे नगर के आदर्श बन जाय। और अजैन भी उनके आचरण से शिक्षा ग्रहण करें।

नगर मे न्याय हो, किसी पर अन्याय न हो, इस का उत्तर-दायित्व समूचे नगर पर है, प्रत्येक नगर निवासी पर है। क्योंकि यदि नगर मे अन्याय होगा तो फिर नगर मे शांति नहीं रह सकती। धर्म परायण वह है जो न किसी पर अन्याय करे और न अन्याय सहन ही करे। बल्कि अन्याय चाहे किसी पर भी हो उसका विरोध करे। अहिंसा हमे यही सिखाती है और नगर धर्म मे इसको महत्व दिया गया है।

आप बाजार जाते है, देखते हैं कि एक ठेले मे जिस मे एक ही पशु जुता हुआ है, बीसो मन भार लदा है। आप को यदि उसकी तनिकसी भी चिन्ता नहीं होती तो याद रखिये आप अपने धर्म का पालन नहीं कर रहे। क्योंकि बेजबान पशु पर इतना भार लदा है और आप मनुष्य होकर सहन करते है। यह आप का भी कर्तव्य है कि आप पशु की पीड़ा को समझें और उसे इस दुख से छुड़ायें।

आज तो विधान और अधिनियमो मे भी ऐसी व्यवस्था है कि जिस घोड़े की पीठ मे घाव है अथवा जो रोगी है, उस पर सवारी

करना अथवा माल लादना अवैधानिक और अपराध है। पर इन अपराध को रोका जा सकता है नगर वासियों के सहयोग से। यदि आप इस पाप को होते देखते है तो आप भी उसके जिम्मेदार हो जाते है। मेरे कहने का अर्थ यह नहीं है कि आप प्रत्येक ऐसे व्यक्ति से जो घोडों, भैसे आदि पशुओ पर अत्याचार करता है, लडते-झगडते फिरे, अपितु मेरा कथन और जैन धर्म का आदेश तोयह है कि आप अपने व्यवहार, अपनी विनती से प्रयत्न कीजिए कि पशुओ पर अन्याय न हो।

जिस नगर मे पशु वध होता है वहा नगर धर्म नहीं है, यह ध्रुव सत्य है। क्योंकि पशु वध भयकर पाप है और इस पाप का उत्तरदायित्व केवल वधिक पर ही नहीं है वरन उन पर भी है जो यह जानते हुए भी कि उनके नगर मे पशु वध होता है, कभी उसे रोकने का प्रयत्न नहीं करते। क्योंकि सारा नगर किसी विधान के आधीन शासित है। यदि आप के नगर मे ऐसा विधान है जो पशु वध को नहीं रोकता तो इस का अर्थ यह है कि नगर निवासी अपने धर्म का पालन नहीं करते। क्योंकि आज तो प्रजातन्त्र का युग है सरकार आप के द्वारा निर्वाचित सदस्यों से बनती है और नगरपालिकाएं आपके मतो से चुनी हुई सस्थाए है। यदि सरकार और आपकी नगरपालिका चाहे तो नगर मे पशु वध करने का किसी को अधिकार नहीं मिल सकता। पर आप क्या कभी निर्वाचन के समय सोचते है कि हम ऐसे ही व्यक्ति को अपना मत दे जो नगर मे पशु वध जैसे पाप के विरुद्ध अधिनियम बनवाने का प्रयत्न करे ? "नहीं" आप तो उस समय पक्षपात करते है, आपके सामने तो यह उद्देश्य रहता है कि नगरपालिका या विधान सभा का सदस्य वह बने जो आपकी बिरादरी, जाति अथवा पार्टी का व्यक्ति हो। फिर वह चाहे अधर्मी

ही क्यों न हो ? भगवान् महावीर जब सारे संसार को पाप रहित करने के लिए प्रयत्न कर सकते हैं तो आप उनके अनुयायी क्या अपने कुशल व्यवहार और आत्मबल से अपने नगर के दूसरे व्यक्तियों पर इतना प्रभाव नहीं डाल सकते कि वह पशु वध न करें ? मैं आप को स्पष्टतया बताना चाहता हूँ कि जो लोग यह समझते हैं कि—

कबीरा तेरी झोंपड़ी गल कटियन के पास,
अपनी करनी आप भरेगा तू क्यों होत उदास ॥

उन्हें अपने नगर धर्म का ही ज्ञान नहीं है। एक अहिंसावादी तो सारे संसार के पापों के विरुद्ध टक्कर ले सकता है।

आप जानते हैं कि अहिंसा जैन धर्म का स्वर्णिम नियम है. भगवान् महावीर ने ही सर्व प्रथम संसार को अहिंसा का पाठ पढ़ाया; पर जैन धर्मावलम्बियों की शिथिलता ही समझिए कि इस बहुमूल्य उपदेश को वे संसार को नहीं दे पाये। अपितु यदि इस युग में किसी ने अहिंसा का डंका बजाया तो वह थे महात्मा गांधी। और इसी एक मंत्र के कारण मोहनदास करमचन्द गांधी महात्मा कहलाए, आज सारा संसार महात्मा गांधी को युग-पुरुष के नाम से पुकारता है और उनके बताए अहिंसा मार्ग को ही मानव जगत् के कल्याण का एक मात्र मार्ग समझता है। जबकि यह मार्ग तो जैनधर्म का मार्ग है। महात्मा गांधी का उदाहरण इस बात का सबूत है कि जिसने इस मार्ग को अपनाया वही संसार का नेता बन गया। यदि अहिंसा द्वारा महात्मा गांधी अंग्रेज साम्राज्य से भारत को मुक्ति दिला सकते हैं. यदि अहिंसा द्वारा एक देश स्वतन्त्रता प्राप्त कर सकता है, तो क्या अहिंसा द्वारा नगर से पशु वध समाप्त नहीं हो सकता ? "अवश्य हो सकता है"। पर प्रश्न यह है कि हम अहिंसा का कहां तक प्रयोग करते हैं ?

नगरों मे राज्यकीय कार्यालय होते है, और पुलिस चौकियां भी होती है। पुलिस का कर्तव्य है कि वह नगर निवासियो के जान-माल की रक्षा करे। परन्तु आज तो पुलिस जनता के तन व धन की रक्षक न होकर भक्षक हो गई है। आये दिन पुलिस-अत्याचारो की कितनी ही घटनाएं सुनाई पडती है। थानो मे निरपराधियो को पकड कर मारा-पीटा जाता है, निरपराधियो की चीखे नगर मे सुनाई देती है। आप के नगर मे यदि किसी निरपराधी पर अत्याचार होता है तो क्या आप समझते है कि इसका दोष आपको नही लगता? नगर मे जो होता है उसका उत्तरदायित्व संयुक्त है। यदि निरपराधी का चीत्कार सुनकर आप का हृदय नहीं तड़पता तो यह निश्चित है कि आप अहिंसावादी नहीं है। और यदि आप वास्तव मे भगवान् महावीर के बताये मार्ग के पथिक है तो आप को पुलिस-दमन के विरुद्ध आन्दोलन मे भाग लेना चाहिए।

पुलिस का कोई भी कर्मचारी जब किसी नगर मे अपनी ड्यूटी पूरी करने के लिए नियुक्त किया जाता है तो उस नगर के प्रति उस पर भी नगर धर्म लागू हो जाता है। उसे अपना धर्म निभाना चाहिए। यदि वह जनता को सताता है तो वह पतित हो जाता है। मानवता तक से गिर जाता है वह।

लोकतन्त्र के इस युग मे जब कि जनता के वोटो से ही सरकारे बनती है, प्राय नगरो के हाथ मे बडी शक्ति आगई है, क्योंकि प्राय नगर निवासी ही राजकीय कर्मचारी होते है और विधान सभा और लोक सभा के सदस्य भी नगर निवासी ही होते है। इस प्रकार से नगर निवासियो को ग्रामो पर राज्य करने का अवसर मिल गया है। तो आपका कर्तव्य होता है कि आप यह देखे कि आपके नगर के विधान सभा और लोक सभा के सदस्य अथवा

सत्तारूढ एव राजकीय पदों पर आसीन व्यक्ति कहीं जनता के हितों के विरुद्ध तो कार्य नहीं करते ?

यदि ऐसा होता हो तो आप उन्हे सुपथ पर लाने के लिए आन्दोलन करें, वह आन्दोलन अहिंसक हो, और शातिप्रिय भी।

इस्लाम धर्म की प्रशसा करने वाले कहते है कि उस धर्म मे नगर धर्म को बहुत महत्व प्राप्त है। जैसे उनके धर्म की शिक्षा है कि यदि किसी ने कोई अच्छा भोजन पकाया है और उसकी सुगध उसके पडौसी के घर मे जाती है तो उसका कर्तव्य है कि स्वय भोजन करने से पहले थोडा सा भाग अपने पडौसी के घर पहुँचाये, तभी खाये। जैन धर्म भी इस से किसी से पीछे नहीं है शास्त्रों मे कहा है कि—

असविभागी नहु तस्स मोक्खो

आप स्वय खाने से पहले यह सोचे कि आप के नगर मे कोई ऐसा तो व्यक्ति नहीं है जो भूखा है। सोने से पहले सोचे कि आप तो छक कर सो रहे हैं कहीं आपके नगर मे ऐसा कोई व्यक्ति तो नहीं है जो भूखा ही सो रहा है ? यह मानवता की चरम सीमा है। यदि आप अपने इस धर्म का पालन करें तो नगर के आप आदर्श बनेंगे और फिर यह आदर्श ही नगर मे शाति बनाए रखने मे सफल होगा।

जो लोग नगरपालिकाओं के सदस्य निर्वाचित होते है वे आजकल तो अपने को बडा समझकर अहकार करने लगते हैं। वे समझते है कि हम नगरपिता हो गए। पर यह नहीं सोचते कि नगरपिता बनने पर उनके कर्तव्य भी बढ़ गए। क्योंकि फिर सारे नगर की सेवा का कार्य उनके कधों पर आ जाता है।

नगरों मे आजकल फैशन बहुत बढ रहा है। और यह फैशन दुराचार के प्रसार का साधन बन गया है। नगर में सिनेमाओं

का रिवाज बढ रहा है और चित्रो मे अभिनेता और अभिनेत्रियों का जैसा फैशन देखा जाता है, नगर के युवक और युवतिया उसी प्रकार का फैशन करते है। और बाजारो मे उसका प्रदर्शन करते फिरते है जो दुराचार को जन्म देता है। नगर निवासियों का कर्तव्य है कि विलासिता एव वासना पूर्ण फैशन को बढने से रोके। क्योकि सदाचार के लिए सादा जीवन व्यतीत करना बहुत ही आवश्यक है।

जिस नगर मे दुराचार चलता है उस नगर मे धर्म को भयंकर खतरा उत्पन्न हो जाता है, क्योंकि दुराचार के बहुत लम्बे हाथ होते है। वह शनै-शनै सारे नगर की गर्दन दबोचने लगता है। और फिर ऐसे नगर मे जहॉ दुराचार बस जाता है गुणी-मुनि जन भी उपदेश करने नहीं पहुँचते।

नगर मे दलबन्दी चलने लगती है तो अन्याय और पक्षपात का जन्म होने लगता है और सारा नगर अन्यायों का अड्डा बन जाता है। इसलिए नगर धर्म को जीवित रखने के लिए नगर मे दलबन्दी होने से रोकना बहुत ही आवश्यक है।

नगर मे जो कुछ होता है उसका प्रभाव अकेले नगर पर ही नहीं पड़ता बल्कि उसका प्रभाव उस क्षेत्र के ग्रामों पर भी पड़ता है। अतएव नगरो की बडी जिम्मेदारी है। वे यदि बिगडते है तो ग्राम भी पतन की ओर जाते है। इस लिए नगर वासियो को अपना आचरण शुद्ध बनाना चाहिए। इस प्रकार आप देखेगे कि नगर धर्म मे ग्राम धर्म का पूरी तरह समावेश है, नगर देश का मस्तिष्क है, यदि मस्तिष्क ही विकृत हो जाता है तो फिर शरीर ही बेकार हो जाता है। इसी प्रकार यदि नगर बिगड गए तो उसका सारे देश पर प्रभाव पडेगा। अत. नगर धर्म के प्रति नगर वासियों को सतर्क रहना चाहिए।

जब हिटलर ने रूस पर आक्रमण किया तो रूस की सेनाएँ हिटलर के भयंकर आक्रमण का सामना नहीं कर पाईं। प्रति दिन पत्रों में हिटलर की सेनाओं की प्रगति और रूस की सेनाओं के पीछे भागे जाने के समाचार आते थे और ऐसा प्रतीत होने लगा कि रूस शीघ्र ही हिटलर के अधिकार में चला जायेगा। परन्तु कुछ ही दिनों बाद हिटलर हारने लगा और एक दिन ऐसा आया जब रूस का जितना क्षेत्र हिटलर के अधिकार में चला गया था वह सब रूस के हाथ में आगया। इसका प्रमुख कारण था रूस के लोगों में नगर धर्म की भावना। हिटलर ने जिस देश पर भी विजय प्राप्त की, वहाँ के नगरों में उसे ऐसे व्यक्ति मिल जाते थे जो अपने नगर के प्रति द्रोह करके हिटलर की सेनाओं की सहायता करते थे पर रूस के एक भी नगर में, जहाँ हिटलर की सेनाओं ने अधिकार कर लिया, एक भी व्यक्ति ऐसा नहीं मिला जो हिटलर की किसी प्रकार की सेनाओं की सहायता करता। वरन उसके विपरीत अपने-अपने नगरों को हिटलर से स्वतन्त्र कराने के लिए नगर के प्रत्येक नर-नारी ने गुरिल्ला युद्ध किया। नगर निवासियों ने ही अपने गुरिल्ला युद्ध के द्वारा अपने-अपने नगर स्वतन्त्र करा लिये और हिटलर की सेनाओं के पैर उखड़ने लगे। क्योंकि जिन नगरों में हिटलर की सेनाएँ अधिकार कर चुकी थीं, उन्हीं में बराबर उन्हें युद्ध करना पड़ा। जिस देश के नागरिक अपने नगर धर्म के इतने कट्टर पालन कर्त्ता होंगे उस देश के नगर कभी अवनति का मुँह नहीं देख सकते।

पं० जवाहरलाल नेहरू आज भारत के प्रधान मंत्री हैं, परन्तु वे यह नहीं भूल सकते कि इलाहाबाद उनकी जन्म-भूमि है और उसके प्रति भी उनके कुछ कर्त्तव्य हैं। वे स्वयं जब इलाहाबाद पहुँचते हैं तो कहते हैं कि इलाहाबाद की गोद में मैं पला हूँ, मुझे

इससे बहुत प्यार है।

आप को यह ध्यान रखना चाहिए कि प्रेम और त्याग इन दो शब्दो मे ही भक्ति का सार है, धर्म का सार है। अपने नगर मे प्यार हो और त्याग करने की भावना हो तो फिर नगर धर्म निभाया जा सकता है।

आज तो नगर धर्म का ही लोगों ने त्याग कर दिया है। पर इसके कारण कितना वैमनस्य आ गया है नगरजीवन मे, यदि हम इस पर विचार करें तो मन सिहर उठता है। अभी ही कुछ दिनों पूर्व एक पत्र मे समाचार छपा था कि किसी ने न्यायालय मे अपने पडौसी के विरुद्ध शिकायत की कि उसकी बिल्ली मेरे घर मे आजाती है और घर की वस्तुओं का सफाया कर जाती है, बार बार समझाने पर भी उसका पडौसी बिल्ली को सम्भाल कर नहीं रखता। एक बार उसकी बिल्ली मेरे घर मे घुस आई और मेरे घर के कांच और चीनी के १५०) के बरतन तोड गई। इस लिए पडौसी को दण्ड दिया जाय।

एक बार पत्रो मे छपा कि एक व्यक्ति ने न्यायालय मे अपने पडौसी पर आरोप लगाया कि वह रात्रि को शोर-शराबा करता है, और सोने नहीं देता।

नगर का यह विधान है कि सडकों पर खाट डाल कर न सोया जाय वरना सडक रोकने के अपराध मे चालान हो सकता है। पुलिस इस कानून से सडकों मे सोने के अपराध को तो क्या रोकती उल्टे उसे 'ऊपर की आमदनी' अर्थात् घूंस लेने का उपाय बनाए है। कितने ही लोग यह तो शिकायत करते है कि आजकल घूंस बहुत बढ गई है पर स्वय भी घूंस देते हैं और नगर धर्म को तोड़ने के अपराध से छुट्टी पाते है।

जब नगर निवासी अपने पड़ौसियों को भी प्रेम की डोर मे

नहीं बांध सकते, जब अपने पड़ौसी से भी सहयोग नहीं कर सकते, जब अपने कुकर्मो को घूंस देकर छुपाना चाहते है, तो नगर मे शाति कैसे रह सकती है और कैसे नगर धर्म चल सकता है ?

नगर मे रोगो का प्रकोप न हो, यह सारे नगर के हित की तो बात है ही, प्रत्येक नगर निवासी के व्यक्तिगत स्वार्थ की भी बात है। पर प्राय हलवाई सडी हुई मिठाइया और खराब दूध बेचते है। कानून कहता है कि किसी भी खाने वाली वस्तु पर दुकानदार मक्खी न बैठने दे। पर केवल पैसे के लोभ से कानून तोडते है और नगर निवासियो के स्वास्थ्य को खराब करने का पाप भी करते है। और अपने इस अपराध का दण्ड न पाने के लिए इन्स्पैक्टर को घूंस देते है। यह सारे नगर के प्रति अन्याय है। स्वास्थ्य इस्पैक्टर का धर्म है कि नगर के स्वास्थ्य की रक्षा के लिए वह हलवाइयो और होटलों पर गदी और स्वास्थ्य को हानि पहुचाने वाली वस्तुओ को न बिकने दे। सफाई का निरीक्षण करे। पर वह अपने धर्म को केवल कुछ पैसो के लोभ से भूल जाता है। वह यह नहीं सोचता कि ऐसा करके वह अपने धर्म को खो रहा है और इससे नगर वासियो के साथ जो अन्याय हो रहा है, नगर के प्रति जो पाप किया जा रहा है, उसका सब से अधिक जिम्मेदार वह है।

गांधी जी के परम अनुयायी सन्त विनोबा भावे आज ग्रामो मे जाकर उपदेश देते है कि ग्राम वाले शहर की हवा से बचे। नगरो की बुराइयों को ग्राम मे न आने दे, यह बात इस सत्य की द्योतक है कि नगर मे 'नगर धर्म' नाम की कोई बात नहीं रह गई है और नगरो मे सभ्यता पनपने की अपेक्षा बुराइया पनप रहीं है। इस बात से नगर वालो को लज्जा ही आनी चाहिए।

मेरा यह निश्चित मत है कि नगरो की बढ़ती हुई जन-संख्या

का यह अर्थ कदापि नहीं है कि नगर उन्नति कर रहे हैं। सूरी की संतान बढ़ती ही जाती है तो क्या वह उन्नति करती है। उन्नति जनसंख्या की वृद्धि में नहीं आकी जा सकती। देखना तो यह है कि दुर्व्यसन, दुराचार, अत्याचार, अन्याय, पक्षपात, दलबन्दी, फैशन और अधर्म कितनी मात्रा में समाप्त हुए। आपने इतिहास में कितने ही ऐसे नगरों का हाल पढ़ा होगा जो किसी युग में भारत के प्रसिद्ध नगर थे, पर आज उन में से कितनों का तो यही पता नहीं चलता कि वे थे कहां ? क्यों ? इसका कारण भी यही है कि वहाँ अधर्म पनपने लगा था। जिसका परिणाम नगर के विनाश के रूप में प्रगट हुआ।

जैन शास्त्र कहते हैं कि 'ग्राम धर्म' और 'नगर धर्म' धर्म परायणता की भूमिका है। यदि भूमिका ही नहीं बनेगी तो निश्चय धर्म कैसे चलेगा। आत्मा उस समय तक निर्मल नहीं हो सकती, जब तक कि हम इन व्यावहारिक धर्मों का पालन नहीं करते।

नगर स्थविर

जिस प्रकार ग्राम स्थविर ग्राम की व्यवस्था करने के लिए होता है इसी प्रकार नगर स्थविर वह है जो नगर की कुव्यवस्था समाप्त करके सुव्यवस्था करे।

मैंने नगर धर्म के सम्बन्ध में जो कुछ बातें नगर निवासियों के कर्तव्य के रूप में बताई हैं, उन सब की देखभाल करना नगर स्थविर का कार्य होता है। नगर स्थविर सारे नगर के प्रति जिम्मेदार है। उसे देखना होता है कि कहीं नगर धर्म का उल्लंघन तो नहीं हो रहा।

लोकतन्त्र की स्थापना से पूर्व ही अंग्रेजों ने स्वायत्त विभाग खोलकर नगरों में नगरपालिकाएँ अथवा नगर पंचायतों की स्थापना कराई थी, और उन स्थानीय निकायों का एक मुखिया होता है जिसे चैरमैन अथवा अध्यक्ष के नाम से पुकारा जाता है। किसी युग में नगर नेता का नाम नगर स्थविर था और नगर पालिकाओं के जो कर्तव्य हैं वही कर्तव्य नगर स्थविर के थे। अन्तर केवल इतना है कि उन दिनों का स्थविर अधिकारों पर ध्यान न देकर अपने कर्तव्यों की पूर्ति में मन लगाता था। और आज के स्थविर कर्तव्यों की चिन्ता नहीं करते अपितु वे अपने अधिकारों का उचित और अनुचित प्रत्येक ढंग पर उपयोग करते हैं। इसी लिए आज स्थविर बनना सेवाधर्म नहीं रह गया बल्कि

आज तो नगर का स्थविर बनना उच्च पद प्राप्त कर स्वार्थ सिद्धि का साधन बन गया है। इसीलिए लोग नगर पालिका का अध्यक्ष बनने के लिए हजारो रुपये व्यय करते हैं, जोड-तोड़ लगाते हैं और इस प्रकार यह भी एक अच्छा खासा व्यापार ही बन कर रह गया है।

परन्तु स्थविर कैसा होना चाहिए, इसके सम्बन्ध मे उपासक दशांग सूत्र के प्रथम अध्याय मे एक उदाहरण मिलता है। उसमे एक स्थविर के सम्बन्ध मे लिखा है कि —

से ण आणन्दे गाहावई बहुण राईसर जाव सत्थवाहाण बहुसु कज्जेसु य कारणमसूय मन्तेसु य कुडुम्बेसु य गुज्झेसु य रहस्सेसु य निच्छएसु य ववहारेसु य आपुच्छणिज्जे पडिपुच्छणिज्जे सयस्सवि य ण कुडुम्बस्स मेढी पमाण आहारे आलम्बण चक्खू, मेढ़ीभूए जाव सव्वकज्ज वट्टावए यावि होत्था।

भावार्थ—वह आनन्द गृहपति, बहुत से राजेश्वर यावत् सार्थवाहियों को बहुत से कार्यो मे, बहुत कारण मे, बहुत विचार-विमर्श करने मे, उनके कुटुम्ब मे और बहुत से गुप्त कार्यो मे, बहुत से रहस्यपूर्ण कार्यो मे, निश्चित कार्यो मे, एक बार तथा बार बार पूछने लायक था। वह अपने कुटुम्ब मे भी मेडी के समान और प्रमाण आहार आलम्बन, चक्षु और मेडीभूत होकर सब काम मे वर्ताने वाला था।

इसे हम सार रूप मे यूं कह सकते है कि आनन्द मेडी के समान था, बैल दावन मे जिस लकडी के सहारे फिरते है उसे मेडी कहते हैं। इस लिए इसका अर्थ है कि आनन्द के बताए हुए नियमो के अनुसार सारे मनुष्य कार्य करते थे।

आनन्द कभी अप्रामाणिक बात न कहता था और इस लिए उस की प्रत्येक बात ही प्रमाण के रूप मे प्रयोग की जाती थी।

आनन्द आदार अर्थात अन्य मनुष्य की रोटी था। रोटी जैसे मनुष्य के प्राण की रक्षा करती है, आनन्द भी अन्य मनुष्यों की रोटी के समान रक्षा करता था।

आनन्द आलम्बन अर्थात् सहारा था। सारे मानव समुदाय के लिए वह सहारा था।

आगे आनन्द को चक्षु वताया गया है। अर्थात् वह सभी को सन्मार्ग दिखाता था।

भगवान् कहते है कि आनन्द ने चौदह वर्ष तक श्रावक व्रत पाला और इन्हीं व्यवहारों मे रहा। जव इनको छोड कर ऊंची अवस्था मे जाना था, तव उसने सव लोगो को वुला कर कहा कि जो वात आप लोग अव तक मुझ से पूछते थे अव मेरे पुत्र से पूछा करना। वह आपकी सेवा करेगा।

यह उदाहरण एक श्रेष्ठ नगर स्थविर का है। इससे यह वात स्पष्ट हो जाती है कि नगर स्थविर सभी का चक्षु, सभी का अवलम्बन, रोटी और मेडी होता है। ऐसा स्थविर न्यायप्रिय होता है।

कहते है कि एक अंग्रेज भारत मे कई वर्ष से रहता था। उसने यहाँ वहुत धन कमाया और एक वार जव कुछ दिनो के लिए इंगलैंड जाने लगा तो वह एक व्यापारी सेठ के पास पहुँचा और उस से कहा कि मै इगलैंड जा रहा हूँ। मेरे वापिस आने तक के लिए आप मेरा कुछ सहस्र रुपया अपने पास अमानत मे रख ले। सेठ मान गया और उसने अंग्रेज को एक तिजोरी वता कर कहा कि आप अपना रुपया इस तिजोरी मे रख दे और चावी अपने साथ ले जाये। अंग्रेज तिजोरी मे रुपया रखकर और धनराशि सेठ को वता कर चावी लेकर चला गया।

कई मास पश्चात् वह इगलैंड से लौट आया और सेठ से

अपनी अमानत मांगी। सेठ ने उसी तिजोरी की ओर संकेत कर के कह दिया कि आप ताला खोलकर निकाल लें। अंग्रेज ने अपना रुपया गिना, रुपया पूरा था, और अन्त में सेठ से बोला कि इस रुपये का व्याज और दीजिए।

सेठ जी चक्कर में पड गए, वे बोले, "आप अपना रुपया जहाँ रख गए थे वहीं रखा रहा, हमने तो छुआ भी नहीं, फिर व्याज किस बात का?"

अंग्रेज ने वह मामला स्थविर के सामने रखा। दूसरे लोगों ने कहा कि जब अंग्रेज का रुपया सेठ ने बरता ही नहीं तो व्याज मांगना अनुचित है। पर स्थविर बडा बुद्धिमान और सुयोग्य था। उसने लाला जी के पुराने वही-खाते देखे। उसने देखा कि अंग्रेज के रुपया रखने से पूर्व उनके वही-खाते में एक बडी धन राशि उनके कोष में रही। पर अंग्रेज का रुपया उनकी तिजोरी में रखे जाने के उपरान्त सेठ जी ने सारी धन राशि व्यापार में लगा दी। इसका अर्थ यह है कि सेठ जी ने सोचा होगा कि अंग्रेज का रुपया तो रखा ही है, उनकी सारी पूँजी घाटे में चली गई और फिर भी रुपये की आवश्यकता पडी तो तिजोरी में से निकाल लेंगे।

स्थविर ने इस का अर्थ यूं निकाला कि अंग्रेज की धन राशि सेठजी के व्यापार का सहारा बनी। इसलिए इस सहारे से जितना लाभ उठाया गया है उसका व्याज अंग्रेज को मिलना चाहिए।

स्थविर के आदेश पर सेठ जी व्याज चुकाने पर तैयार हो गए। पर अंग्रेज ने व्याज लेने से इकार करते हुए कहा कि मैं तो भारत वासियों के न्याय की परीक्षा लेना चाहता था। स्थविर के न्याय से वह इतना प्रभावित हुआ कि उसने भारतीय नगर स्थविरों की अपने देश में भी प्रशंसा की।

यह दृष्टांत स्थविरों के 'दूध का दूध और पानी का पानी' करने

के न्याय का उदाहरण है। स्थविर ऐसा योग्य व्यक्ति होता है जो स्वयं धर्मानुकूल चले और सारे नगर को चला सके। जो व्यक्ति स्वयं धर्म की व्याख्या नहीं जानता अथवा जो स्वय अपने कर्तव्यों का पालन नहीं कर सकता, वह स्थविर होने योग्य नहीं है।

ज्यो-ज्यो लोग धर्म के मर्म की ओर से अज्ञानी होते जाते है वे स्थविर की आवश्यकता को ही अनुभव नही करते। परन्तु स्थविर तो पशु-पक्षियों तथा अन्य जन्तुओं मे भी होते है। चीटियों और मधुमक्खियो मे भी स्थविर होते है। जिस प्रकार रेलगाडी के लिए इजन और इजन के लिए ड्राईवर की आवश्यकता है, इसी प्रकार नगर को सन्मार्ग दिखाने वाले और अनुशासन मे रखकर नगर धर्म का पालन कराने वाले की भी आवश्यकता है। यह बात दूसरी है कि आप उसे स्थविर न कहकर चैयरमेन, अध्यक्ष अथवा नेता ही कहे।

जब अग्रेजो का साम्राज्य भारत पर छाया। उन्होंने जगल साफ कराने आरम्भ कर दिये। वन कटने लगे तो वन्दरो को भी मारने की योजना बनी। उपाय यह सोचा गया कि किसी वस्तु मे विप मिला कर वन्दरो को खिला दी जाय ताकि वे मर जाये।

हुआ भी यही, एक बडे कढाव मे विप मिला हलवा बनवाया गया और वह कढाई उस स्थान पर ले जाकर रख दी गई जहाँ वन्दर रहते थे। और कढाव लाने वाले छुप कर वन्दरो की कार्यवाई देखते रहे।

वन्दर वृक्षों पर से नीचे उतरे और साथ ही उनका स्थविर भी आया। सभी ने कढ़ाव के चारों ओर एकत्रित होकर उसे सूंघा और फिर सब, हट गए। स्थविर एक लकडी तोड कर लाया और कई वन्दरो ने मिलकर उसे कढ़ाव मे घुमाया, जैसे कि हलवा घोट रहे हो। कई बार बीच-बीच मे उसे सूंघा और कुछ देर बाद

स्थविर ने स्वय उसे चखा और अन्त मे उसके संकेत पर सारे बन्दरो ने हलवा खाना आरम्भ कर दिया। देखने वाले व्यक्तियो ने समझ लिया कि इस लकडी मे ही विप मारने की शक्ति है। जब वन्दर चले जायेगे वे उसे उठा ले जायेगे। वन्दर न मरे सही एक औपधि तो हाथ लगी।

बन्दरो ने हलवा खाया और अपनी उस लकडी को लेकर चले गए। वन्दरो के मारने का प्रयत्न करने वाले हाथ मलते रह गए।

यह बन्दरो के स्थविर की कर्तव्य परायणता का उदाहरण है जो इस तथ्य उजागर करता है कि स्थविर का उत्तरदायित्व उन समस्त प्राणियो के प्राणो की प्रति है जिनका वह स्थविर है।

स्थविर केवल शासक ही नहीं होता वरन वह उपदेशक, निर्देशक, मार्गदर्शक, परोपकारी और सभी का सहयोगी भी होता है।

एक नगर का स्थविर धर्म परायण व्यक्ति था। वह अपने नगर का अपने ही परिवार की भांति ध्यान रखता था और रात्रि को वेप बदल कर घूमा करता था ताकि नगर मे जो कुछ होता है वह उसकी पूर्ण जानकारी प्राप्त कर सके।

एक बार वह रात्रि को वेप बदल कर घूम रहा था कि उसे एक घर से रोने की आवाज आई। उसका माथा ठनका। वह उस घर मे गया! और जाकर देखा कि एक विधवा स्त्री रो रही है। उसने पूछा कि तुम क्यो रो रही हो?

विधवा वोली, "कल को त्यौहार है और मेरे पास अपने बालको को पहनाने को नए कपडे नहीं है। और इतने पैसे भी नहीं कि पुराने कपडो को ही साबुन से धोकर पहना सकूँ। कल को मेरे बच्चे दुखी होंगे"।

नगर स्थविर तुरन्त अपने घर गया और अपने बालको के नए कपडे लाकर उसे दे दिये। विधवा वोली, "मै कल को नगर

निवासियों को कहूँगी कि नगर स्थविर तुम्हें बनाएँ। इसलिए तुम मुझे अपना नाम बताओ।"

उसने पूछा कि वर्तमान स्थविर में ही क्या दोष है? स्त्री ने उत्तर दिया कि यदि वह अपने धर्म को निभाता तो तुम्हारे स्थान पर आज वह यहां होता?

और जब उसने अपना नाम बताया तो विधवा ने कहा कि तुम जैसे स्थविर के रहते भला किसके बालक अनाथ हो सकते हैं?

अर्थात् स्थविर को अपने नगर का बिल्कुल इस प्रकार ध्यान रखना होता है जैसे गृहस्थी अपनी गृहस्थी का। और ऐसे ही स्थविर की प्रतिदिन प्रशंसा भी होती है। परन्तु जो स्थविर अपनी प्रशंसाएँ सुनकर अहंकार हो जाता है वह स्थविर रहने योग्य नहीं रहता।

हम देखते हैं कि नगरों के वर्तमान नेता इस कसौटी पर पूरे नहीं उतरते। इसका भी एक कारण है, वह यह कि स्थविर भी तो नगर निवासियों में से ही चुना जाता है। जब नगरवासी अपने धर्म से गिर जाते हैं, जब उन्हें अपने कर्तव्यों की अपेक्षा पैसे का अधिक ध्यान रहने लगता है तो फिर स्थविर कहीं आकाश से थोड़े ही गिरेंगे। वे भी इन्हीं लोगों में से चुने जायेंगे और चूंकि चोरों का नेता भी चोर होता है, इसी प्रकार जैसे नगर निवासी होंगे उनका ही प्रतिनिधित्व स्थविर करेगा।

नगर निवासी अपने धर्म का पालन करें, उनमें आर्त्त और रौद्र ध्यान न हो तो फिर कोई कारण नहीं कि उनमें से ही आदर्श मानव न बने?

* तृतीय सोपान *

राष्ट्र धर्म

बात बहुत पुरानी है। दूसरे महायुद्ध मे जापान अग्रेजो के विरुद्ध लड रहा था। उन दिनो युद्ध निर्णायक दौर मे प्रवेश कर चुका था। अग्रेजो ने जापान को परास्त करने के लिए अपनी पूरी शक्ति लगा दी थी। और दूसरी ओर जापान ने भी अपनी सारी शक्ति को दांव पर लगा दिया था। अग्रेजो ने जापान के भयंकर प्रहारो को रोकने के लिए अपना सब से बडा बम वर्षक जहाज मोर्चे पर लगा दिया। उक्त जहाज ऐसी धातु का बना था कि उस पर शत्रु के किसी बम गोले अथवा गोलियो का कोई प्रभाव नहीं होता था। जापानियो ने कितनी ही गोली वर्षा और बम वर्षा की, पर उनके किसी प्रहार का उस बम वर्षक लडाकू जहाज पर प्रभाव न हुआ और जापान की सेनाओ को उक्त जहाज की बमवर्षा से बडी क्षति पहुँची। अन्त मे यह शका होने लगी कि यही अद्भुत जहाज जापान का युद्ध मे परास्त कर देगा। जापानियो ने भी समझ लिया कि यदि यह जहाज न डुबाया गया तो जापान को जीते हुए क्षेत्रो से तो हाथ धोना ही पडेगा, साथ ही उन का देश भी अंग्रेजों का दास हो जायेगा। मोर्चे पर जापान की सेना जी तोड कर लड रही थी, पर अग्रेजो का एक जहाज ही

उन सब का मुकाबला बड़ी सफलता के साथ कर रहा था। अन्त में जापानी सेना नायक इस परिणाम पर पहुँचे कि इस बमवर्षक लड़ाकू जलयान को डुबाने और नष्ट करने के लिए उनका सभी गोला बारूद और सारे अस्त्र-शस्त्र भी अपर्याप्त है, बल्कि बेकार है। अपने देश को परास्त होने से बचाने के लिए इस जहाज को नष्ट करना आवश्यक है और इसका एक ही उपाय है कि किसी प्रकार से जहाज की मशीनरी के अन्दर गोले पहुँचाये जाये। क्योंकि ऊपर से बमवर्षा करना बेकार है। जहाज के इंजन में बम गिराने के लिये एक ही अत्युत्तम द्वार था वह थी जहाज की धुंआ फेंकने की वाली चिमनी। परन्तु प्रश्न था कि चिमनी के द्वारा इंजन में बम कैसे पहुँचे? अन्तत एक ही उपाय खोज निकाला गया कि एक व्यक्ति को छतरी के द्वारा जहाज की चिमनी में उतार दिया जाय। जो अपने शरीर से बम बांधे हो। वह ज्यों ही चिमनी के द्वारा नीचे इंजन में गिरेगा, बम फट पड़ेगे और जहाज डूब जायेगा।

साफ बात थी कि बम ले जाने वाला व्यक्ति बम फटते ही पहले स्वय ही मर जायेगा। इसलिए जान-बूझ कर मृत्यु के मुह में जाने वाले व्यक्ति की खोज हुई। सारा जापान जानता था कि जापान की स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए अंग्रेजो के उक्त जहाज को नष्ट करना आवश्यक है। मृत्यु की गोद मे कूदने के लिये एक व्यक्ति की आवश्यकता थी। सेना में घोषणा की गई कि ऐसा व्यक्ति जो अपने राष्ट्र के लिए जान बूझ कर प्राण देने को तैयार हो वह सामने आये। सबसे पहले एक युवक सामने आया और उसके उपरान्त अन्य कितने ही व्यक्तियो ने अपने नाम दे दिये। पर उस युवक का दावा था कि चूंकि सर्व प्रथम उस ने अपना नाम दिया है इस लिए यह कार्य उसे करने दिया जाय। आये हुए

नामों में से सेना-नायक ने उस युवक का ही नाम चुना और वह युवक कितने ही बम अपने शरीर से बांध कर छतरी द्वारा हवाई जहाज से अंग्रेजों के बम वर्षक जहाज की चिमनी में उतर गया। युवक का नीचे इंजन के पास पहुँचना था कि वहां की अग्नि में ही सारे बम फट गए। युवक का शरीर टुकड़े टुकड़े हो गया और जहाज डूबना आरम्भ हो गया। अनायास गोपनीय ढंग पर हुए इस अनोखे आक्रमण के कारण अंग्रेज अपने उस जहाज को, जो करोड़ों रुपये की लागत से तैयार हुआ था, जो ब्रिटेन के वैज्ञानिकों की अनुपम ईजाद थी, डूबने से न बचा सके।

वह जापानी युवक आज भी अमर है। जापान का बच्चा-बच्चा आज उसे अपना आदर्श मानता है। वह युवक भी किसी मा की आंखों का तारा था, वह भी किसी युवती का सुहाग होगा, वह किसी परिवार का रत्न था उसके मन में भी जीने की चाह होगी। वह भी एक इन्सान था, एक ऐसा इन्सान जो अपने प्राणों की रक्षा के लिए अन्तिम क्षणों तक लड़ सकता था। उसे भी अपनी मां से अपने परिवार से प्रेम होगा, बिल्कुल इसी भांति जैसे आप को अपने परिवार के प्रति है। फिर क्या बात थी जिस ने उसे मौत के मुंह में छलांग जाने की प्रेरणा दी? वह कौन सा भाव था जिस ने उसे अपने जीवन को होम कर देने के लिए प्रेरित किया?

उक्त बात मध्यान्ह के चमकते हुए सूर्य की भांति रोशन है, वह था राष्ट्र प्रेम अथवा राष्ट्र धर्म! जिस के कारण वह अपने प्राणों को न्योछावर करने के लिए तैयार हो गया। इस लिए कि वह जानता था कि यदि अंग्रेजों के उक्त बमवर्षक को न नष्ट किया गया उस का राष्ट्र पराधीन हो जाएगा। उसके खेतों की हरियाली तो ब्रिटेन के महलों के परदों की शोभा बन जाएगी। उसके राष्ट्र के

करोडों श्रमिकों का लहु लन्दन के वार हाउसों के प्यालों मे उण्डेला जाने लगेगा। वह जानता कि जापानी बालकों के कपोलों की लाली ब्रिटेन के धन्ना सेठों की मेमों के अधरों की लिप स्टिक बन जायेगी। वह अपने राष्ट्र को अंग्रेजों का दास बनाना नहीं चाहता था। वह अपने देश के बालकों के अधरों की मुस्कान पर अंग्रेजों का डाका सहन नहीं कर सकता था। उसके हृदय में राष्ट्र प्रेम कूट-कूट कर भरा था। वह अपने राष्ट्र धर्म को अपने प्राणों के मूल्य से भी अधिक आकता था।

यह था जापान का उदाहरण।

और अब लीजिए अपने ही देश की कथा। महाराणा प्रताप का नाम आप सभी ने सुना है। महाराणा प्रताप से पूर्व और उस के उपरान्त भी मेवाड़ के कितने ही नरेश हुए हैं। क्या आप उन सभी के नाम जानते है? यदि नहीं तो महाराणा प्रताप का नाम ही भारत के बच्चे-बच्चे की जबान पर क्यों है? इसका भी उत्तर साफ है। महाराणा प्रताप ने राष्ट्र धर्म को निभाया। उस की रगो मे बहते गरम लोहू के अन्दर राष्ट्र भक्ति का उत्साहवर्धक राग था। परन्तु राष्ट्र धर्म के निभाने मे कितनी ही हृदय कम्पित कर डालने वाली मुश्किले भी आ पडती हैं जो वीरों तक के पग कम्पित कर डालती है।

महाराणा प्रताप उन दिनों वन मे छिपे हुए थे। उनके पास भोजन तक के लिए भी पैसे नहीं थे। कई दिन भूखे रहते व्यतीत हो गए थे। अन्तत. एक दिन बालक की भूख के मारे बुरी दशा दशा हो गई। घास की रोटियाँ पकाई गई। परन्तु जिस समय बालक ने हाथ में रोटी ले कर खाना आरम्भ किया, तभी जगली बिल्ली आई और रोटी हाथ से छीन कर ले गई। बालक के रुदन से महाराणा प्रताप का हृदय भी चीत्कार कर उठा और उन्होंने

एक दिन बैठे बैठे निर्णय कर लिया कि वे वहाँ से भाग कर कहीं चले जायेंगे।

उन्हीं दिनों जैन वीर भामाशाह उनसे मिले। जब प्रताप ने उन्हें अपना निर्णय सुनाया, भामाशाह ने कहा कि "यदि तुम इतनी ही कायरता पर उतर आये हो तो तुम भाग सकते हो। पर तुम अपना यह बलशाली शरीर नहीं ले जा सकते। यह तुम्हारे पास मेवाड की अमानत है। यह शरीर तुम्हें मेवाड की भूमि ने मिला है। मेवाड की भूमि से पैदा हुए अन्न से, यहाँ के जल से और मेवाड की गौओं के दुग्ध से तुम्हारा यह शरीर बना है। इस पर तुम्हारा नहीं मेवाड का अधिकार है। तुम चाहो तो अपनी आत्मा इस शरीर से निकाल कर ले जा सकते हो। पर तुम्हें इस शरीर को ले जाने का कोई अधिकार नहीं है।"

भामाशाह के यह शब्द महाराणा को चुभ गए पर उन्होंने अपनी विवशताएँ उसके सामने रखते हुए कहा कि मातृ-भूमि के लिए मैं अपने प्राण तक न्योछावर कर सकता हूँ पर जब मेरे पास धन ही नहीं तो फिर कैसे सेना रख कर मेवाड को परतन्त्र होने से बचा सकता हूँ ?

भामाशाह ने महाराणा प्रताप को धन दिया और वे अपने मेवाड की स्वतन्त्रता के लिए लडते रहे।

प्रश्न उठता है कि वह कौन-सा जादू था जिसके वशीभूत हो कर महाराणा ने मुगल राज्य के विरुद्ध जीवन के अन्तिम क्षणों तक तलवार म्यान में नहीं डाली ?

वह था राष्ट्र प्रेम। भामाशाह और महाराणा प्रताप ने राष्ट्र धर्म निभाया। और राष्ट्रधर्म की वेदि पर अपना सर्वस्व न्यौछावर कर दिया।

इन दो दृष्टान्तो को आपके सामने प्रस्तुत करने से मेरा आशय

यह है कि राष्ट्र-धर्म वह धर्म है जिसे निभाने के लिए कितने ही शूरवीरों ने अपने प्राणों की हसते-हसते आहुति दी है। क्योंकि किसी राष्ट्र की भूमि से जन्म लेने, वहाँ के अन्न-जल से पलने वाले प्रत्येक व्यक्ति का धर्म है कि वह उस राष्ट्र के लिए अपना सर्वस्व भी अर्पित कर दे।

मैंने इस से पूर्व आपको ग्राम धर्म और नगर धर्म के सम्बन्ध मे बताया था। राष्ट्र धर्म जैन शास्त्रकारों के अनुसार तीसरा धर्म है जो प्रत्येक मानव को निभाना आवश्यक है। क्योकि जिस राष्ट्र के आचल मे आप का ग्राम अथवा नगर स्थित है उस के हितों के साथ ही आप के नगर अथवा ग्राम का स्वार्थ जुडा है। और इस प्रकार आपका सुख सारे राष्ट्र के सुख मे निहित है।

यदि हम राष्ट्र की व्याख्या करने बैठे तो आज तो इस के सिवा और कोई परिभाषा ठीक नहीं बैठती कि महाद्वीप के उस खण्ड को राष्ट्र कहते है जिस मे बसे हुए मनुष्यो पर एक ही विधान लागू होता है। परन्तु इस युग से पूर्व राष्ट्र की परिभाषा बडी विशाल थी। कितने ही पुराने ग्रन्थो मे राष्ट्र की परिभाषा इस प्रकार दी है कि प्राकृतिक सीमाओं से सीमित, ग्रामो और नगरों के उस समूह अथवा भूखण्ड को राष्ट्र कहते है, जहा की सभ्यता, सस्कृति, विधान, धर्म, भाषा तथा ध्वजा एक हो। परन्तु समय का परिवर्तन-चक्र परिभाषाओ को भी परिवर्तित कर डालता है। क्योंकि यदि राष्ट्र की उसी पुरानी परिभाषा को कसौटी पर हम आज के राष्ट्रों को रखे तो कितने ही राष्ट्र, राष्ट्र की परिभाषा मे नहीं आयेंगे। सीमाओं की ही बात ले ले तो हमे मालूम होगा कि आज कितने ही देश ऐसे हैं जिन के चारो ओर प्राकृतिक सीमाएं नही है। भारत और पाकिस्तान के बीच कोई प्राकृतिक सीमा नहीं। दक्षिणी कोरिया और उत्तरी कोरिया को एक काल्प-

निक एव कृत्रिम सीमा से विभाजित किया गया है। और जहा तक धर्म और भाषा का प्रश्न है हमारा अपना देश ही इस कसौटी पर पूरा नही उतरता। यहा तो कुछ मील जाने पर ही भाषा बदल जाती है और आज यद्यपि हिन्दी को राष्ट्र भाषा घोषित कर दिया गया है पर कुछ भागो से अभी तक हिन्दी को राष्ट्र भाषा स्वीकार करने के विरुद्ध आन्दोलन चल रहे हैं। दक्षिणी भारत मे पिछले दिनो तामिल-तेलगू भाषा-भाषी क्षेत्रो मे स्टेशनों पर हिन्दी मे लगे बोर्डों पर कोलतार पोत दिया गया। पजाब मे कितने ही लोग पजाबी का प्रश्न उठा कर हिन्दी की प्रगति रोकने की जी तोड़ कोशिशे कर रहे है। और भारत मे अभी तक विभिन्न धर्मा-वलम्बियो के बीच घृणा है। अभी तक साम्प्रदायिक दगे होते है। दक्षिणी भारत मे द्राविड लोग नारा उठा रहे है कि वे आर्यों के शासन मे रहने को तैयार नहीं है। उन के लिए अलग एक देश बनाया जाये। अर्थात् भारत मे धर्म भी एक नहीं बल्कि धार्मिक भिन्नता इस देश की एकता मे बाधक बनी हुई है।

पाकिस्तान मे तो इस्लाम धर्म के अनुयायी ही हैं, परन्तु भाषा के आधार पर वहा भी दगे हुए। पूर्वी पाकिस्तान मे लोगो ने बगला को ही पूर्वी पाकिस्तान की राष्ट्र भाषा घोषित कराने के लिए प्रदर्शन किए और पाक सरकार ने बगला भाषा को राष्ट्र भाषा बनाने की माग करने वाले कितने ही लोगो को गोलियों से भून डाला।

इस लिए राष्ट्र को पुरानी परिभाषा राष्ट्रो के वर्तमान स्वरूप मे सही नहीं जचती। अत राष्ट्र की यही परिभाषा ठीक है कि ग्रामो और नगरो का वह समूह जो एक विधान के आधीन शासित है, राष्ट्र कहलाता है।

राष्ट्र को हम जननी, जन्मभूमि और मातृभूमि के नाम से

भी पुकारते है बल्कि इन शब्दो मे राष्ट्र के प्रति उचित आदर तथा प्रेम निहित है। राष्ट्र को जननी, जन्मभूमि अथवा मातृ-भूमि कह कर पुकारने से राष्ट्र के प्रति धर्म का भी बोध स्वयमेव हो जाता है क्योंकि माता के प्रति मनुष्य का क्या धर्म है, यह सभी को ज्ञात है। माता के प्रति कितना प्रेम होता है, इसे बताने की आवश्यकता नही है। ससार मे माता का-सा उच्च एव सम्मानित पद जिसे प्राप्त हो वह केवल राष्ट्र ही है। यदि हम गहन दृष्टि डाले तो हमे ज्ञात होगा कि राष्ट्र का दर्जा अपनी उस मा से भी उच्च है जिस की कोख से हम ने जन्म लिया है। क्योंकि मा तो नो मास तक कोख मे हमे मानव शरीर प्रदान करती है पर कोख मे पालने की शक्ति उसे भी राष्ट्र के अन्न-जल से ही प्राप्त होती है और जब बालक जन्म ले लेता है तो राष्ट्र-भूमि के खाद्यान्नों से ही उस की मा के स्तनों मे दुग्ध धार उत्पन्न होती है और एक दिन आता है जब हम केवल मातृ-भूमि की गोद मे आजाते हैं। राष्ट्र का अन्न-जल ही हमे वह शक्ति प्रदान करता है जिस के कारण हमारी बुद्धि और शरीर का विकास होता है। इसलिए मातृ-भूमि का दर्जा उस मा से भी उच्च है जो अपने रक्त से हमे जन्म देती है।

आपने दूसरे महायुद्ध के दिनो मे पड़े बगाल के अकाल की बात सुनी होगी। कहते है लाखों नर-नारी उस भयकर अकाल मे रोटी न मिलने के कारण मृत्यु के ग्रास हुए। काल ने उन बालकों को भी न छोडा जो अपनी मा के स्तनों से ही प्राण रस चूसते थे और उन माताओं को भी जो अपने रक्त से भारत की भावी सन्तानो को पाल रही थी। अपितु अकाल का इतना भय-कर स्वरूप सामने आया कि वे बालक जो माताओं को अपने प्राणों से भी अधिक प्यारे थे, जिन के जीवन के लिए माताएं

अपना सर्वस्व होम सकती थीं, एक-एक मुट्ठी चावल के लिए गाजर-मूलियों और पशु सतानों की भांति बेच दिए गए और यहा तक भी देखा गया कि लोगों ने भूख से परेशान होकर दुध-मुंहे बालकों को चबा डाला। इस लिए मैं कहता हूँ कि राष्ट्र-भूमि ही माता-पिताओं को पालती है अत राष्ट्र धर्म मातृ-धर्म से भी उच्च एव महान् है। किसी भी व्यक्ति के लिए हाड-मास की मां के सेवा करने से अधिक राष्ट्र भूमि की सेवा करना अनिवार्य है।

मुख्य बात यह है कि राष्ट्र के समृद्धिशाली होने पर ही हम सुख प्राप्त कर सकते हैं और राष्ट्र को समृद्धिशाली बनाने के लिए महत्व पूर्ण आवश्यकता यह है कि राष्ट्र मे शाति रहे। शाति ही किसी राष्ट्र की उन्नति की गारटी है। और आज जबकि चारो ओर तृतीय महायुद्ध की चर्चा है, एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र को चबा जाने के लिए प्रयत्नशील है। मानव ससार परमाणु बमों की भयकरता से काप रहा है और अमरीका जैसे देश परमाणु बमो के बल पर अन्य राष्ट्रो की स्वतन्त्रता हडपने के लिए तैयारी कर रहे हैं, अपने राष्ट्र की स्वतन्त्रता को कायम रखने के लिए राष्ट्र मे शाति रखने की अभूतपूर्व आवश्यक्ता हो गई है। क्योंकि आन्तरिक शान्ति जिस देश मे नहीं रहेगी, उसी पर दूसरे देशों को दास बनाने के लिए तैयार बैठे साम्राज्यवादी अपना जाल फेकेंगे। उसी की स्वतन्त्रता छिन जायेगी।

और आज के युग मे।

'कोऊ नृप होत हमे का हानि'

की बात कहने वाले राष्ट्रद्रोही समझे जाने लगे हैं, बल्कि इनकी राष्ट्र के प्रति उदासीनता राष्ट्र धर्म के प्रतिकूल होने के साथ-साथ घोर पाप भी है।

बर्मा पर जापानियो के आक्रमण के समय की बात है, एक

साधु था, जिसके कितने ही शिष्य थे। युद्ध चल रहा था, रगून पर जापानियों का आक्रमण हुआ तो उसके कितने ही शिष्यों ने पूछा कि वे क्या करे? उसके शिष्यों मे कितने ही लोग ऐसे थे जो युद्ध में जापानियो के विरुद्ध लड़ सकते थे। परन्तु साधु ने कहा कि यह तो राजाओं का आपसी युद्ध है हमें इससे क्या? तुम्हे तो भगवान् की उपासना मे ही लगे रहना चाहिए। और उसने अपने किसी शिष्य को जापानियों के विरुद्ध न लड़ने दिया। एक दिन जापानियों का उसी क्षेत्र पर अधिकार हो गया तो जापानी सेनाए उसी क्षेत्र मे लूट-मार और अत्याचार करने लगीं साधु अपनी कुटिया में ही प्रवचन करता रहा। सेना की एक टुकड़ी लूट-मार करते हुए उसकी कुटिया मे भी पहुँची। साधु बहुत हट्टा-कट्टा था, उसे पकड लिया और ले गए अपने साथ और उसे उन्होंने सेनाओं के लिए भोजन बनाने के लिए प्रयोग किया। उसकी कुटिया, जो उसके शिष्यों ने बडा धन व्यय करके बडी सुन्दर बनवाई थी, सेना के कार्यालय के रूप मे प्रयोग की जाने लगी। उसने अपनी आखों से अपने शिष्यो को मौत के घाट उतारे जाते देखा। उसकी एक शिष्या को सेना के अधिकारी वर्ग ने अपनी काम वासना तृप्ति के लिए पकड लिया। जब उसकी चीखे साधु के कानो मे पड़ीं तो वह अपने भगवान् को याद करने लगा कि 'हे भगवान्! इन अत्याचारियो का नाश करो और मेरी शिष्या को इनके चगुल से बचाओ।' पर उसके पत्थर के भगवान् ने उसकी सहायता न की।

जापानियों का अधिकार जब बर्मा से समाप्त हुआ तो उक्त साधु अग्रेज सेनाओं के हाथ लगा और उनके हाथों भी उसे कितने ही अत्याचारों को सहना पड़ा। अन्त में जब बर्मा स्वतन्त्र हुआ तो उसके पुराने शिष्यों ने उससे पूछा कि महात्मा जी सब

से बडा धर्म क्या ?

वे बोले "राष्ट्र धर्म" भाई ! राष्ट्र सुरक्षित है तो हम सब सुरक्षित है। बिना राष्ट्र की सेवा के तो भगवान् भी कुछ नहीं सुनते।

मुझे कथा-कहानी सुनने का शौक नहीं है, वरन मैंने उक्त दृष्टांत इस बात कर प्रमाण स्वरूप आपके सामने प्रस्तुत किया है कि राष्ट्र मे शान्ति रहती है तो आत्म-धर्म का भी पालन हो सकता है, वरना राष्ट्र मे अशांति हो जाने पर तो कोई नियम, कोई धर्म नहीं चल सकता।

आप ने सुना होगा कि आजकल यदि किसी भी देश मे कोई आन्तरिक अशांति हो जाती है तो उस देश के शासनारूढ व्यक्ति उसका दोष अपने किसी शत्रु देश पर मढ देते है कि उक्त देश के एजेन्टो ने ही यह सब किया है। इस का कारण यह भावना है कि आज किसी देश पर बाहर से आक्रमण करना इतना भयानक नही है जितना कि आन्तरिक रूप से अशाति उत्पन्न करके उस देश को कमजोर कर देना। आये दिन पत्रो मे समाचार छपते है कि उक्त राष्ट्र ने उक्त देश के गुप्तचरो को पकड लिया। क्या गुप्तचर केवल उस देश के आन्तरिक रहस्यो का ही पता अपने देश को देते है ? नहीं, केवल इतना ही नहीं, वरन् उस राष्ट्र मे अशांति उत्पन्न करने के लिए ही प्राय गुप्तचर भेजे जाते है।

इसलिए अपने राष्ट्र की प्रथम महान् सेवा तो यही है कि राष्ट्र मे पूर्ण शांति रखी जाय। यदि शाति न रहेगी तो राष्ट्र की शक्ति राष्ट्रोन्नति के कार्यों मे न लग कर अशाति समाप्त करने पर लगेगी।

परन्तु शान्ति स्थापित रखने के लिए यह आवश्यक है कि राष्ट्र की व्यवस्था ठीक रहे और व्यवस्था से सारे ग्राम और नगर

तथा उनमे बसने वाली प्रजा संतुष्ट हो। यदि किसी देश की प्रजा व्यवस्था से सन्तुष्ट नहीं है तो वहां न तो शांति रह सकती है और न वह राष्ट्र अपनी स्वतन्त्रता की ही रक्षा कर सकता है।

आपको याद होगा कि जब हिटलर यूरोप के देशों को पराजित करना चाहता था तो यह अफवाहें फैल रही थीं कि हिटलर भारत पर भी आक्रमण करके अंग्रेजों का शासन समाप्त करेगा। और यहाँ तक अफवाहें थीं कि हिटलर अंग्रेजो से भारत को स्वतन्त्र कराकर यहाँ का शासन भार भारतवासियों को सौंप कर चला जायेगा। अफवाहें सुनकर लोग बड़े प्रसन्न होते थे। उन दिनों के बारे में किसी ने कहा है कि कितने ही भारतीय दस्तर ख्वान* बिछाए प्रतीक्षा में थे कि कब हिटलर आये और कब वे उसके स्वागत में दावत दें।

क्योंकि भारतवासी अंग्रेज शासन से सन्तुष्ट नहीं थे और चूंकि हिटलर अंग्रेजों का शत्रु था इसलिए भारतवासी हिटलर को अपना मित्र समझते थे। जबकि वास्तविकता यह है कि यदि हिटलर रूस में न पराजित होता और वह भारत को जीत लेता तो कौन जानता है कितने वर्ष भारत को हिटलर के तानाशाही शासन में पिसना पड़ता।

मेरे कहने का आशय यह है कि जिस राष्ट्र की जनता व्यवस्था के प्रति असन्तुष्ट होती है, उस राष्ट्र पर कोई भी अधिकार कर सकता है।

जार बादशाह की शासन व्यवस्था से सारा रूस असन्तुष्ट था। प्रथम महायुद्ध में जब जर्मनी की सेनाओं ने रूस पर आक्रमण किया तो रूस धड़ाधड़ हारता रहा। क्योंकि न तो सेना ही जी तोड़ कर लड़ती थी और न नागरिक ही अपने शासन का साथ दे

* वह कपड़ा जिस पर रखकर भोजन किया जाता है।

रहे थे। वल्कि सैनिक शस्त्र फेंककर मोर्चों से भागने लगे थे। सन् १६१७ मे जब जारशाही समाप्त हुई तो रूस के नये शासकों ने सर्व प्रथम जर्मनी से समझौता किया और युद्ध समाप्त कर दिया गया। दूसरे महायुद्ध मे उसी रूस की सेनाओ ने हिटलर के दात खट्टे कर दिये। क्योकि व्यवस्था से रूस के सैनिक सन्तुष्ट थे और वह अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा करना अपना कर्तव्य मानते थे।

आज तो प्रजातन्त्र का युग है। देश मे कैसी व्यवस्था हो इस बात का निर्णय जनता जनार्दन के हाथो मे आ गया है। और जनता की, जनता के हित मे, जनता द्वारा व्यवस्था, अथवा सरकार स्थापित करने को ही प्रजातन्त्र कहा जाता है। प्रजातन्त्र मे अभिव्यक्ति-स्वातन्त्र्य को विशेष महत्व प्राप्त है। प्रत्येक नागरिक को अपने विचार प्रगट करने और अपना मत देने की स्वतन्त्रता है। प्रजातान्त्रिक पद्धति को ही आज सर्वश्रेष्ठ पद्धति स्वीकार किया जाता है क्योकि प्रजातन्त्र मे ही जनता को सन्तुष्ट रखा जा सकता है। यदि कोई व्यवस्था हानिप्रद और असन्तोषजनक प्रतीत होती है तो जनता उसे बदल सकती है। और जनता को इसलिए सन्तोष रहता है कि वह वर्तमान व्यवस्था के लिए जिम्मेदार है। अपने राष्ट्र की रक्षा करने को भी प्रत्येक व्यक्ति को इसलिए चिन्ता रहती है कि अपना शासन रहने पर तो वे अपनी इच्छानुसार व्यवस्था मे परिवर्तन करा सकते है पर पराधीन होने पर उन्हे मुंह खोलने की भी स्वतन्त्रता नहीं रहेगी।

कुछ लोग जैन शास्त्रों की शिक्षाओ का गलत अर्थ लगाते है। शास्त्र मे एक स्थान पर आया है कि—

"विरुद्ध रज्जाई कम्मे।" (उपासक दशांग सूत्र)

अर्थात् राज्य के विरुद्ध कार्य न करना चाहिए। शास्त्र तो

कहते हैं कि राज्य के विरुद्ध कार्य न करना चाहिए। पर लोगों ने इसका अर्थ लगा लिया है कि राजा के विरुद्ध कोई काम नहीं करना चाहिए।

राज्य भी राष्ट्र को ही कहते है। अर्थात् राष्ट्र के हितों के विरुद्ध कार्य करना वर्जित है। क्योंकि राजा अथवा सत्ताधीश यदि जन-हितो के विरुद्ध कार्य करते है तो जनता को अधिकार है कि वे ऐसे राष्ट्र हित विरोधी सत्ताधीशों, ऐसी जनविरोधी सत्ता को उतार कर फेंक दे, उनके प्रति विद्रोह करे। क्योंकि जनहित विरोधी सत्ताधीशो के रहते, राष्ट्रहित विरोधी शासन के चलते, राष्ट्र का भविष्य अन्धकारमय है और एक सम्पूर्ण राष्ट्र को तबाही के गर्त मे ले जाने का किसी को अधिकार नहीं है, न शासितों को ही और न शासकों को। जो सत्तारूढ होकर स्वार्थ-सिद्धि करते हैं, जनता पर अत्याचार करके और भ्रष्टाचार से राष्ट्र की सम्पत्ति को हड़प रहे है, अपने स्वार्थों के लिए राष्ट्र-हितो को ठेस पहुँचा रहे हैं, उनसे शासन सत्ता छीन लेना, उनके विरुद्ध आन्दोलन चलाना राष्ट्र-धर्म है क्योंकि उसमे राष्ट्र का हित है। परन्तु अपने किन्हीं स्वार्थों की पूर्ति के लिए शासन अथवा राजा के विरुद्ध कार्य करना, राष्ट्रहित नहीं है।

हमारे देश का पिछली एक शताब्दी का इतिहास राष्ट्र-धर्म के लिए होने वाले बलिदानों और संघर्षों का इतिहास है। १८५७ का विद्रोह अग्रेजो के विरुद्ध अपने राष्ट्र को स्वतन्त्र कराने के लिए ही हुआ था। महारानी लक्ष्मीबाई ने राष्ट्र-धर्म को निभाने के लिए ही हाथों मे तलवार सम्भाली थी।

राष्ट्र यदि स्वतन्त्र है तो सूत्र चारित्र धर्म भी चल सकता है, अन्यथा नहीं।

ठाणाग सूत्र के पाँचवे ठाणे मे कहा गया है कि —

"धम्मं चरमाणस्स पच णिस्साठाणा"

प० त०–छक्काए, गणे, राया, गिहवता, सरीर, अर्थात् सूत्र चारित्र धर्म को जिसने स्वीकार किया है, उसको भी पाँच वस्तुओं का आधार है। वे ये है छ काय गच्छ, राजा, गृह देने वाला और शरीर।

इसका स्पष्ट अर्थ है कि इन छ. आधारो के बिना सूत्र चारित्र धर्म टिक ही नहीं सकता। यहाँ राजा से राज्य अथवा राष्ट्र का आशय है।

सूत्र चारित्र धर्म का पालन करना और राष्ट्र धर्म की अवहेलना करना बिल्कुल ऐसा ही हे जैसे भवन की नींव खोदकर अथवा वृक्ष की जड काट कर उसकी रक्षा का उपाय खोजना।

वीर भगतसिह का नाम आप सभी ने सुना है। भगतसिह के शरीर का अन्त हो गया पर उसका नाम आज भी जीवित है। आज भी उसके गीत गाए जाते है। क्योंकि उसने राष्ट्र धर्म का पालन करते हुए अपने प्राणों की आहुति दी थी।

महात्मा गांधी आज राष्ट्र-पिता कहलाते है क्योंकि उन्होंने जीवन भर राष्ट्र धर्म का पालन किया। उन्होंने सूत्र चारित्र धर्म का कितना पालन किया, यह दूसरी बात है, पर केवल राष्ट्र धर्म के पालन करने से ही उन्हे महात्मा की पदवी मिली।

सुभाषचन्द्र बसु ने राष्ट्र धर्म के पालन के लिए ही अपने राष्ट्र को छोड कर अन्य देशो की खाक छानी। आज भी वे हमारे देश के लिए परम आराध्य देव के भांति है।

उन दिनो महाराणा प्रताप ने मेवाड के नवयुवको से सेना मे भरती होकर मुगल साम्राज्य के विरुद्ध लडने की अपील की थी। सारे कडियेल जवान महाराणा की सेना मे भरती हो रहे थे। एक

बालक रोता हुआ आ रहा था। उसकी माता ने उसे रोते हुए देखा तो बोली कि "आज मेवाड पर शत्रुओं ने आक्रमण कर रखा है, सारे मेवाड के लोग राणा की सेना मे भरती हो रहे हैं और तू रोता है? कायर! यदि तेरे स्थान पर मेरी कोख से पत्थर ही पैदा होता और चित्तौड के किले की कोई दीवार हिलती तो उसकी नींव मे ही लगा देती। पर तू तो पत्थर भी नहीं। जा डूब मर।"

बालक ने कहा कि मैं कायर होने के कारण नहीं रोता, मा! मै तो इसलिए रोता हूँ कि सारा मेवाड जब सेना मे भरती हो रहा है, मैं भी भरती होने के लिए गया पर मुझे भरती नहीं किया गया। यही मेरे रोने का कारण है।

मा ने पूछा कि वह कौन-सी कमी बताई है तुझ मे? जिस के कारण तुझे भरती करने से इकार कर दिया गया?

बालक ने कहा कि भरती करने वाले कहते है कि मै तुम्हारा इकलौता पुत्र हूँ। मै मारा गया तो तुम्हारी सेवा कौन करेगा?

वह एक क्षत्राणी थी। बोली "तो फिर देखना क्या है, मै ही तो तेरे राष्ट्र-धर्म के पालन करने मे रोडा बन गई हूँ। मेरा सिर काट दे और जाकर सेना मे भरती हो जा।"

राष्ट्र धर्म के प्रति कितना अनुराग था उनमे? पर आज तो दशा ही दूसरी है। सन् ४७ व ४८ मे हमारे देश मे कपडे की बडी कमी थी, लोगों को अपने प्रिय जनो के शवो के लिए कफन भी नही मिलता था। परन्तु हमारे ही देश के कुछ उद्योगपतियो ने चोरी से पाकिस्तान को कपडा सप्लाई किया। हमारे देश की माताओ, बहनो को अपनी लाज ढापने के लिए कपड़ा नहीं था और वे केवल धन के लालच मे विदेश को कपडा भेज रहे थे। यह है उन लोगो की दशा जो अपने को सभ्य कहते है और धर्म

के नाम पर लाखों रुपये मन्दिर बनवाने में व्यय करके वाह-वाही लूटते है। पर वास्तव में वे लोग राष्ट्र द्रोही हैं।

देश की सम्पत्ति की रक्षा करना राष्ट्र के प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य है। परन्तु हम देखते है कि लोग अपनी व्यक्तिगत सम्पत्ति मे वृद्धि करने के लिए राष्ट्रीय सम्पत्ति पर डाका डालते है। कुछ वर्ष पूर्व की बात है, हमारे राष्ट्र के लिए जीपकारो की आवश्यकता पडी। लन्दन से हमारे देश के हाई कमिश्नर के कार्यालय ने लाखो रुपयो मे कारो का सौदा कर लिया और जब वे भारत आई तो सब बेकार व खराब थीं। पीछे पता चला कि जीपकारों की खरीद मे लाखों का घोटाला हुआ है। कई वर्ष पश्चात् मामला पिछले दिनो लोकसभा मे आया और अन्त मे सरकार की ओर से उस काण्ड का पटाक्षेप कर देने की घोषणा कर दी गई। इस काण्ड मे चाहे कितने ही सम्मानित जन शामिल हो, पर राष्ट्रीय धन की लूट क्षम्य नहीं है। और यदि राष्ट्रीय धन के लुटेरों के विरुद्ध कोई आवाज उठाता है तो वास्तव मे वह राष्ट्र धर्म का पालन करता है। क्योंकि राष्ट्रीय धन पर भारत के प्रत्येक नागरिक का अधिकार है।

राष्ट्र को विदेशियो को लूटते रहने की स्वतन्त्रता देना राष्ट्र धर्म के प्रतिकूल है। पर हमारे देश का दुर्भाग्य समझिए कि आज हम स्वतन्त्र है परन्तु अंग्रेज धन्ना सेठ आज भी हमारी मातृभूमि के लाखो रत्नों की कमाई पर डाका डालने के लिए स्वतन्त्र है और उनकी लूट वैधानिक बनी हुई है।

चाय के बागात आज भी अंग्रेजों की सम्पत्ति हैं। करोड़ो रुपया प्रति वर्ष वे हमारे देश से चाय के बागात के मुनाफे के रूप से लूट कर ले जाते है। जबकि स्वतन्त्रता के उपरान्त वे बागात हमारे राष्ट्र की सम्पत्ति हो जाने चाहिएँ थे।

आज भी कोयले और लोहे की कितनी ही खाने अंग्रेजों के अधिकार मे हैं और गत ७ वर्ष मे वे अरबों रुपया भारत से खींच चुके हैं। यह राष्ट्रीय सम्पत्ति की लूट नहीं तो और क्या है? इस लूट को रोकने के लिए जो भी उपाय किए जायेंगे वे राष्ट्र धर्म के अनुकूल ही कहे जा सकते हैं।

वृक्ष राष्ट्र की सम्पत्ति हैं। और वृक्षों से राष्ट्र को जितना लाभ है, उसका अनुमान नहीं लगाया जा सकता। परन्तु आप सभी ने देखा कि विगत वर्षों मे देश मे वृक्षों की इतनी कमी हो गई कि भारत सरकार को वन महोत्सव मनाने का आन्दोलन चलाना पड़ा। लोगों से वृक्ष लगाने की अपीलें की गईं। परन्तु एक ओर तो नए वृक्ष लगाए जा रहे थे दूसरी ओर कितने ही लोग 'वृक्ष काटो आन्दोलन' चला रहे थे।

यह बात वैज्ञानिकों ने मान ली है कि वृक्ष का राष्ट्र की जल-वायु पर बहुत प्रभाव होता है। जिस देश मे वृक्ष अधिक होते हैं वहाँ वर्षा अधिक होती है। इसलिए राष्ट्र धर्म निभाने के लिए यह आवश्यक है कि हम वृक्षों की रक्षा करें। हमारे पूर्वजों मे पहले यह विश्वास था कि एक वृक्ष लगाना एक सन्तान के पुण्य के समान है। इसलिए प्राय लोग वृक्ष लगाया करते थे। सन्तान की भांति ही उसे पालते थे। जैन शास्त्रों मे तो किसी हरे वृक्ष की डाल तोड़ना धर्म के प्रतिकूल बताया है। परन्तु यह निषेध उस ही दशा मे लागू होता है जब कोई व्यक्ति बिना किसी मानवीय लाभ के डाल तोड़े। किन्तु आज तो लोग फैशन मे ही वृक्षों को बरबाद कर डालते हैं। जैसे किसी का स्वागत करना है तो हरे-भरे वृक्षों की डाल तोड़ कर द्वार बना देते हैं। फूलते-फलते मनमोहक पुष्पों की डाल तोड़ कर कोट के कालर मे लगा लेते हैं। यह राष्ट्र धर्म का सरासर उल्लंघन है।

आप ने सुना होगा कि कितने ही वृक्ष ऐसे हैं जो आक्सीजन छोड़ते हैं और नाइट्रोजन गैस को खाते हैं। आक्सीजन मानव समाज के जीवन के लिए बहुत आवश्यक है। परन्तु बिना इस बात का ध्यान किए कि कोई वृक्ष मनुष्य समाज की कितनी सेवा करता है, मानव अपने स्वार्थ के लिए उसे बरबाद कर डालता है।

पशु राष्ट्र की बहुमूल्य निधि है। परन्तु हमारे राष्ट्र में पशु वध होता है और उसे रोकने के उपाय नहीं किए जाते। आज प्रत्येक नगर में मांस की दुकानें हैं। परन्तु पशु वध को धार्मिक प्रश्न बना कर उसे साम्प्रदायिक रंग दे दिया गया है। और मानवीय प्रश्न के स्थान पर वह साम्प्रदायिक प्रश्न बनकर विवादास्पद समस्या बन गई है। कितने ही लोगों को शिकार खेलने के लिए ही शस्त्रों के लाईसेंस दिये जाते हैं। इसका अर्थ यह है कि राष्ट्रीय विधान पशु वध की आज्ञा देता है जो राष्ट्र धर्म के प्रतिकूल है। परन्तु जब राष्ट्र के नागरिक अपने कर्तव्य भूल गए, उन्हें अपने राष्ट्रीय धर्म का ही ज्ञान नहीं तो फिर यह पाप कैसे रुके।

न्याय राष्ट्र की मुख्य आवश्यकता है। जिस राष्ट्र में न्याय नहीं उसका पतन अवश्यम्भावी है। इसलिए राष्ट्र के शासन को न्याय की ओर विशेष तौर पर ध्यान देना चाहिए। और न्याय कराने की चिन्ता केवल शासन को ही नहीं वरन सारे राष्ट्र को होनी चाहिए। क्योंकि प्रजातन्त्र में जनता से पहले शासन भ्रष्ट होता है। और यदि शासन सो जाता है तो जनता का कर्तव्य है कि वह उसे जगाए, यदि जनता ही सो गई तो फिर शासन मदांध होकर अन्याय करने लगता है। क्योंकि

"प्रभुता पाय काहू मद नाहि"

पर यदि जनता जागरूक रहती है तो शासन का साहस नहीं

कि वह प्रभुता पाकर मदांध हो जाय। क्योंकि अकुश जनता के हाथ मे है और जिस शासन को वह अपने मतो से बनाती है उसे समाप्त करने का भी उसे पूर्ण अधिकार है।

आज की न्याय व्यवस्था दोष पूर्ण है। बात यह है कि न्याय व्यवस्था अंग्रेजो के जमाने की चली आ रही है। इसलिए इस न्याय व्यवस्था के द्वारा न्याय तो नहीं अन्याय की ही रक्षा होती है। न्यायालयों मे न्याय बिकता है। जिसके पास उसका मूल्य चुकाने की शक्ति नहीं है उसे न्याय नहीं मिल सकता। कानून इतना दोष पूर्ण है कि वह सताए हुए की भी रक्षा करता है और सताने वाले की भी। दोनो ओर को उसका मुह है फिर जो अधिक प्रसाद चढा देता है उसी पर वह प्रसन्न हो जाता है। एक बात मैं आप से पूछता हूँ कि क्या कोई किसी स्त्री के साथ भरे बाजार बलात्कार कर सकता है? आप कहेंगे "नहीं"

आपने भी सुना होगा कि प्राय बलात्कार के केस निर्जन स्थानो पर ही होते हैं, यदि वहाँ दूसरे सभ्य जन जो बाद को बलात्कार कर्त्ताओं के विरुद्ध न्यायालय मे भी गवाही देने का साहस कर सकते है, घटनास्थल पर हो तो क्या गुण्डो का साहस हो सकता है कि वे किसी स्त्री की लाज लूट सके?

पर यदि कोई बलात्कार का केस न्यायालय मे जाय तो वहाँ उस स्त्री से गवाही मागे जाते है। अब यदि ऐसे गवाह मिल गए जो करारा झूठ बोल कर भी वकीलो की दाव-पेच की बहस से मार न खाये तो बलात्कारी को दण्ड मिल जाता है। कितनी ही सच्ची घटनाओ मे झूठ के सहारे सजा करानी पडती है। कितने ही केस ऐसे होते होते है कि निरपराध सजा पा जाते हैं और अपराधी मौज करते हैं।

एक न्यायालय मे किसी ने एक व्यक्ति के विरुद्ध कुछ रुपये के

लेने के बारे में केस दायर किया। वादी की ओर से एक ऐसा गवाह पेश किया गया जिसने वह मकान भी नहीं देखा था जिस मे लेन-देन हुआ था। प्रतिवादी ने यह बात अपने वकील से बतादी, वकील ने गवाह को झूठा साबित करने के लिए प्रश्न किया कि "क्या तुम ने वह मकान देखा है ?"

गवाह बोला 'जी हाँ'।

"उसका दरवाजा किस दिशा मे है" वकील ने पूछा।

गवाह ने उत्तर दिया "मै तो, इस अदालत का दरवाजा किस दिशा मे है, यह भी उस समय तक नहीं बता सकता जब तक बाहर सूर्य को न देख लू। और वह ठहरी बम्बई की बात जहाँ मकान ही इतने ऊँचे है जहाँ सूर्य दीखना ही दुर्लभ है।"

वकील ने देखा कि गवाह बच निकला। उस ने फिर चक्कर मे लेने के लिए पूछा। "जब तुम सडक से उस मकान की ओर जाते हो तो वह कौन से हाथ पडता है"

गवाह बहुत होशियार था बोला। "यह भी कोई बात हुई, बम्बई मे सडके तो चारो ओर है, इस सडक से जाय तो बाये हाथ पर और उस सडक से जाय तो दाये हाथ पर पडती है। अब आप कौन सी सडक को पूछते है ?"

वकील साहब को स्वय मकान की स्थति का ज्ञान नहीं था। इस लिए वे चुप हो गए और गवाह सच्चा साबित हो गया।

इसी प्रकार आज के न्यायालयों मे अंधा सौदा चलता है। इस लिए न्याय नहीं हो पाता और जिस राष्ट्र मे न्याय नहीं होता वहा राष्ट्र धर्म तो क्या कोई भी धर्म निभाना दुर्लभ है। जहां अन्याय होता है वहां अशाति और अव्यवस्था फैल जाती है। और उस राष्ट्र के नागरिको मे आपसी प्रेम व सहयोग नहीं रहता। जब कि किसी भी राष्ट्र को शक्तिशाली बनाने के लिए

नागरिकों मे एकता की भावना आवश्यक है जो प्रेम और सहयोग के द्वारा ही उत्पन्न होती है। जिस राष्ट्र में फूट हो जाती है वह स्वतन्त्र नहीं रह सकता। उस पर विदेशियों का शासन हो जाता है।

भारत का इतिहास साक्षी है कि यदि जयचन्द और पृथ्वीराज में फूट न होती तो यवनो का राज्य भारत मे न आता। मोहम्मद गौरी को उस जयचन्द ने ही भारत मे आक्रमण करने का निमन्त्रण दिया था, जो पृथ्वीराज का भाई था। गौरी बार-बार पृथ्वीराज से परास्त होता रहा और पृथ्वीराज उसे क्षमा दान करता रहा। अन्त मे १७वीं बार वह पृथ्वीराज को परास्त कर उसे बन्दी बनाने में सफल हुआ। जैन शास्त्रकारों ने बताया है कि किसी अपराधी को अधिक से अधिक तीन बार क्षमा किया जा सकता है, यदि चौथी बार फिर वही अपराध करे तो उसे दण्ड देना ही धर्म बन जाता है। परन्तु किसी भी बार क्षमा भी उसी दशा में किया जाना चाहिए जब अपने अन्दर इतनी शक्ति हो कि पुन. उपद्रव करने पर उसे दण्ड दे सके। अत. जयचन्द के राष्ट्र-द्रोह और पृथ्वीराज की अनुचित क्षमाशीलता ने ही भारत मे दासता की नींव डाली।

उस समय की फूट से भारत पराधीन हुआ और फिर मुगलो के शासन काल मे हिन्दु राजाओं की फूट के कारण सारा देश मुगल साम्राज्य के आधीन चला गया और मुगल साम्राज्य के पतन के समय मुस्लिम बादशाहो की फूट के कारण अंग्रेजो ने भारत पर अधिकार कर लिया। "फूट डालो और शासन करो" की नीति अपनाकर अंग्रेज ने भारत पर २०० वर्ष तक शासन किया। और फूट के ही कारण भारत खण्डित हुआ। आज फूट के ही कारण हम उन्नति की राह पर पूरी गति से नही बढ़ रहे।

इस लिए फूट राष्ट्र-पतन का बड़ा कारण है। राष्ट्र में एकता लाने के लिए प्रयत्न होने चाहिएँ। जो लोग जनता के बीच किसी नस्ल, धर्म, जाति, भाषा, सभ्यता आदि के नाम पर फूट डालने की चेष्टा करते हैं वे घोर पाप के भागी है। उन्हें कभी राष्ट्र-भक्त नहीं कहा जा सकता। महात्मा गाधी ने इस राष्ट्र की कमजोरी को परखा और यह मानना पड़ेगा कि उन्होंने राष्ट्र की एकता के लिए ही बलिदान किया।

राष्ट्र के प्रत्येक व्यक्ति के साथ राष्ट्रहित का सम्बन्ध है। आज स्वार्थों की इतनी कालिख लोगों के दिलों में पुत गई है कि उन के सामने राष्ट्र धर्म जैसा कोई धर्म ही नहीं रह गया है। जब तक वे अपने स्वार्थों का त्याग नहीं करेंगे, राष्ट्र धर्म निवाह ही नहीं सकते। त्याग ही वह गुण है जो आदमी को धर्म पथ पर ले जा सकता है। युद्ध के समय जापान को मजबूत रस्सों की आवश्यकता थी और मजबूत रस्सों के लिए बालों की आवश्यकता अनुभव की गई तो जापानी स्त्रियों ने अपने सुन्दर बाल कटवा कर रस्से बनाने के लिए दे दिए थे। यह था उनका राष्ट्र-धर्म।

कृषि राष्ट्र को जीवन दान करने का साधन है पर हम देखते है कि आज किसान वह वस्तुएं उत्पन्न करने की ओर अधिक ध्यान देते हैं जिनसे पैसा अधिक मिले। राष्ट्र की आवश्यकता हो गेहूँ की अधिक, पर गन्ने की खेती में पैसा अधिक मिले तो किसान गन्ना अधिक पैदा करने का प्रयत्न करेंगे। इसी प्रकार उद्योगों की बात ले लीजिए, यदि देश को धोती जोड़ों की अधिक आवश्यकता हो, पर उद्योगपतियों को दूसरा कपड़ा बनाने मे अधिक लाभ होता हो, तो वे धोती जोड़े न बना कर दूसरे प्रकार का कपड़ा अधिक तैयार करते हैं। आजकल कोई नया उद्योग

आरम्भ करते समय यह नहीं सोचा जाता कि देश को किस वस्तु की अधिक आवश्यकता है, वरन कोई उद्योग-धंधा आरम्भ करते समय पूंजीपतियों के मस्तिष्क मे यह बात चक्कर काटती है कि पैसा किस उद्योग-धन्धे से अधिक कमाया जा सकता है। लोगों को यह अनुभव हुआ कि वर्फ के कारखाने मे मुनाफा अधिक होता है, बस वर्फ के कारखाने ही अधिक खुलने आरम्भ हो गए। लोगो के पेट को चाहे रोटी मिले या न मिले, तन ढांपने को कपड़ा मिले या न मिले, पर बर्फ तैयार है। यह बाते राष्ट्र धर्म के प्रतिकूल हैं।

हमारे ही पड़ौसी देश चीन मे कोई उद्योगपति अपनी इच्छा से कोई मिल नहीं लगा सकता अपितु उसे सरकार बताती है कि वह इस प्रकार का मिल लगाए। वहां की सरकार मिलों के उत्पादन को स्वयं खरीद लेती है। इसलिए मिल लगाने वाले को यह भय भी नहीं रहता कि उक्त उद्योग मैंने आरम्भ कर दिया तो ठप तो नहीं हो जायेगा। फिर वहाँ के उद्योगपति भी अपने राष्ट्र धर्म को समझते हैं। 'राष्ट्र धर्म' राष्ट्र के नागरिकों को राष्ट्र हित मे ही कार्य करने की आज्ञा देता है।

आप देखते हैं कि आजकल दूषित साहित्य की भरमार है, कला मे नग्नपन आ रहा है। नगे चित्र आपको बाजार मे बहुत से मिलेगे। चल चित्रों मे नारीशरीर के अवयवों को अधिक नग्न दिखाने की चेष्टा केवल इसलिए की जाती है ताकि पैसा अधिक बटोरा जा सके। हिंसा की प्रवृत्ति को जन्म देने वाले जासूसी उपन्यासो की देश मे धूम मची है, यह सब राष्ट्र धर्म का उल्लंघन हो रहा है बल्कि कटु शब्दों मे यह राष्ट्र द्रोह हो रहा है, क्योंकि इससे नागरिकों के चरित्र बिगड़ते है। यह राष्ट्र द्रोह अक्षम्य है।

आप पत्रो मे प्रतिदिन कितने ही गदे विज्ञापन पढ़ते हैं, कुछ लोग गन्दी औषधिया बेच कर पैसा कमाते हैं। ऐसी-ऐसी औषधियो का प्रचार होता है जो व्यभिचार और दुराचार में सहायक होती है। लोग इसे व्यापार कहते है, यह व्यापार नहीं वरन राष्ट्र के साथ गद्दारी की जा रही है। राष्ट्र धर्म का पालन करने वालो का कर्तव्य है कि वे राष्ट्र के वातावरण को दूषित करने वालो के विरुद्ध आन्दोलन करें।

पुलिस और अन्य सरकारी कर्मचारी देश मे अपराधो की रोकथाम करने और जनता को राष्ट्रीय कर्तव्य सिखाने के लिए रखे गए है। वे राष्ट्र के वैतनिक सेवक है। पर आप स्वय देखते है कि राष्ट्रीय सेवा आजकल शोषण का साधन बन गई है। राजकीय कर्मचारी राष्ट्र धर्म का पालन नहीं करते। आये दिन पत्रो मे ऐसे समाचार छपते रहते है कि उक्त स्थान पर पुलिस ने ही नारियो के साथ बलात्कार किया। पुलिस कर्मचारी भी डकैती और चोरी की वारदाते करते पकडे जाते है।

कुछ कर्मचारियो का कर्तव्य है कि वे राज्यकीय कोष के लिए कर एकत्रित करे। पर वे लोग घूस लेकर करदाताओं को कर की चोरी कर देने मे सहयोग देते है। ऐसे कर्मचारियो को क्या कहा जायेगा? क्या वे अपने धर्म का पालन करते है?

उत्तर स्पष्ट है कि 'नहीं'

फिर भी यह कुकर्म चलते है। क्योकि स्वराज्य का अर्थ उच्छृंखलता की खुली छूट लगा लिया गया है। वे लोग जो जनता द्वारा निर्वाचित हो कर विधान सभाओ, लोक सभा आदि मे जाते है और सरकार बनाते है, राष्ट्र धर्म को ठुकरा कर अपने स्वार्थों की पूर्ति मे लग जाते है। और अपने दल के लोगो और अपने सगे-सम्बन्धियो को अनुचित लाभ पहुँचाने मे लग

जाते हैं। इसलिए यदि कभी किसी भी कर्मचारी के सम्बन्ध में सरकार के पास शिकायतें पहुँचती हैं तो लोग उनकी सिफारिशों को दौड़ पड़ते हैं। सत्तारूढ़ व्यक्ति चूंकि स्वार्थ सिद्धि में लिप्त हैं इसलिए वे जनता के मन को तो जीत नहीं पाते। किन्तु उन्हें चुनाव जीतने की चिन्ता रहती है अतः अपने दल वाले और प्रभावशाली लोगों की बात माननी पड़ती है। अन्त में कितने ही अपराधी सरकार की छत्रछाया में ही पनपते रहते हैं।

जनता की भी अपनी कमजोरी है। लोग बेईमानी, भ्रष्टाचार, और घूसखोरी होते देखते रहते हैं और इन सब का रोना तो रोते हैं, पर इन्हें दूर कराने के लिए आगे नहीं आते। प्रत्येक यही सोच लेता है कि तुम क्यों झंझट में पड़ते हो। किन्तु इस भावना का इतना कुप्रभाव पड़ता है कि राष्ट्र विरोधी कार्य चलते रहते हैं और इससे सारा राष्ट्र भ्रष्टाचार का अड्डा बन कर रह गया है, मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि राष्ट्र के प्रत्येक नागरिक को राष्ट्र धर्म के प्रतिकूल होने वाली बातों और हरकतों का विरोध करना चाहिए। क्योंकि जिस प्रकार किसी ग्राम में प्लेग फैल जाये तो ग्राम के सभी परिवारों पर उसका प्रभाव होता है, इसी प्रकार राष्ट्र विरोधी बुराईयों का फैलना सारे राष्ट्र को ही हानि पहुँचाता है।

आप जानते हैं कि आजकल इंजक्शन भी बनावटी चल रहे हैं। आप सोचते हैं कि इससे आप को क्या? पर जब किसी पर रोग का प्रहार होता है तो ठीक इंजक्शन मिलने दुलर्भ हो जाते हैं। कितने ही व्यक्ति आजकल इसीलिए मर जाते हैं कि उन्हें बाजार में शुद्ध औषधियां ही नहीं मिल पातीं। जिन लोगों ने अशुद्ध औषधियों से बाजार पाट दिये हैं, उन्होंने राष्ट्र के प्रति कितना भयंकर विश्वासघात किया है, यह सहज में ही अनुमान

लगाया जा सकता है।

राष्ट्र का मान रखने, राष्ट्र के नाम को कलंकित न करने का उत्तरदायित्व राष्ट्र के प्रत्येक नागरिक पर है। जब हम परतन्त्र थे हमारे देश के एक व्यक्ति ने लन्दन के एक पुस्तकालय की एक पुस्तक का मनमोहक चित्र फाड़ लिया। उस दिन से उस पुस्तकालय पर बोर्ड लगा दिया गया कि 'Indians and Dogs are not allowed' भारतवासियों और कुत्तो का प्रवेश निषिद्ध है।' एक ही व्यक्ति के दुराचरण ने सारे भारत को कलङ्कित कर डाला और उस पुस्तकालय से लाभ उठाने के लिए सारे देश को वंचित कर दिया। परन्तु दूसरी ओर स्वामी विवेकानन्द ने अमरीका मे भारतवासियों की योग्यता की छाप लगा दी।

इस प्रकार प्रत्येक नागरिक के आचरण का उसके राष्ट्र की मर्यादा पर प्रभाव पडता है। इसलिए हमे यह ध्यान रखना चाहिए कि हम ऐसा आचारण करे जो हमारे राष्ट्र के नाम को उज्ज्वल कर दे। आत्म-स्वाभिमान और राष्ट्रस्वाभिमान प्रत्येक नागरिक का आभूषण है। जिसमे आत्मस्वाभिमान और राष्ट्र-स्वाभिमान की रक्षा करने की क्षमता नहीं वह इसान नहीं कहा जा सकता। प्रत्येक व्यक्ति चूंकि राष्ट्र का अग है इसलिए प्रत्येक व्यक्ति मे राष्ट्र-शक्ति बसी हुई है। जिस प्रकार बूंद-बूंद से सागर बनता है इसी प्रकार व्यक्ति-व्यक्ति से मिलकर राष्ट्र बनता है। और यदि बूंद दूषित होगी तो सागर भी दोषो का भण्डार हो जायेगा। इसलिए आप अपने को राष्ट्र-धर्म से ओत-प्रोत बनाएं तभी राष्ट्र सुखी होगा। और राष्ट्र सुखी होगा तो आप भी सुखी रह सकते है। कहते हैं एक मछली सारे तालाब को गन्दा कर देती है। यदि राष्ट्र मे एक व्यक्ति भी दुश्चरित्र है और उसकी दुश्चरित्रता पर कोई रोक नहीं लगती, तो उसके कुकर्मों का अन्य नागरिकों

के चरित्र पर भी प्रभाव पड़ेगा और बालकों मे तो नकल करने की आदत होती है। अतएव प्रत्येक व्यक्ति को कोई भी कार्य करते समय यह स्मरण रखना चाहिए कि उसका जीवन राष्ट्र जीवन के सूत्र मे पिरोया हुआ है।

हमारे देश में कितने ही वर्ग है, और इन वर्गों के अपने-अपने स्वार्थ हैं। कहीं-कहीं यह स्वार्थ एक-दूसरे से टकराते हैं, जैसे मजदूर का स्वार्थ इसी में है कि उसे कम से कम मेहनत की अधिक से अधिक से अधिक उजरत मिले। और उद्योगपति का स्वार्थ यह है कि उसे मजदूर की अधिक से अधिक मेहनत का कम-से-कम मूल्य चुकाना पडे। स्वार्थों के इस टकराव से आये दिन औद्योगिक अशाति उत्पन्न होती रहती है। जिसके परिणाम स्वरूप उद्योगों पर कभी-कभी संकट आ जाता है और देश मे औद्योगिक उत्पादन की वस्तुओं की कमी पड़ जाती है। जिससे राष्ट्र का आर्थिक ढाचा हिल उठता है जो कितने ही संकटो का जन्मदाता होता है।

मजदूर वर्ग राष्ट्र का बहु-संख्यक वर्ग है और एक प्रकार से मजदूर ही देश के हाथ-पाव है। राष्ट्र के जीवन को सौदर्य प्रदान करने वाले है मजदूर। यातायात के साधन, बडे-बडे भवन, सारे उद्योग सभी तो मजदूरो के रक्त की पैदावार है। इसलिए राष्ट्र मजदूर वर्ग के हितो की मुट्ठी भर उद्योगपतियों के स्वार्थ के लिए बलि नहीं दे सकता। राष्ट्र मे औद्योगिक और आर्थिक शाति बनाए रखना वर्तमान युग का महत्वपूर्ण सवाल है। जिसे कितने ही राष्ट्र आज तक सुलझा ही नहीं पाये है। परन्तु जैन शास्त्रों के अनुसार मनुष्य का दूसरों की कमाई पर जीना पाप है। भगवान् महावीर ने तो संसार को बराबर-बराबर बांट कर खाने की शिक्षा दी है। इसलिए यदि उद्योगपति राष्ट्रधर्म का पालन करें तो वे

उद्योगों के मुनाफे को मजदूरवर्ग मे वितरित करके असन्तोष ही कभी न उत्पन्न होने दें। यही इस समस्या का सुन्दर हल है। जिसे उद्योगपति भूल गए और इसी कारणवश नये-नये प्रश्न उठ रहे हैं और वर्ग सघर्ष के कारण मानव समाज मे घृणा उभर रही है।❀

विज्ञान की उन्नति और नई-नई खोज हो जाने के कारण विशाल ससार सिकुडता चला जा रहा है और हजारो मिल दूर, कितने ही समुद्र पार स्थित एक राष्ट्र दूसरे से इतना निकट होता जा रहा है कि मनुष्य उगते सूर्य के दर्शन किसी एक देश मे कर सकता है तो अस्त होता सूर्य सैकडो मील दूर स्थित, दूसरे देश मे दिख सकता है। जिस प्रकार एक ग्राम दूसरे के, एक नगर दूसरे नगर के, और एक व्यक्ति के सहयोग बिना सुखी नहीं हो सकता, अपितु कितने ही कार्य बिना एक-दूसरे के सहयोग के चल ही नहीं सकते, इसी प्रकार आज एक राष्ट्र का दूसरे राष्ट्र का सहयोग लिए बिना काम चल ही नहीं सकता और न प्राकृतिक सीमाओ के द्वारा ही दूसरे राष्ट्र से किसी सकट के समय अपनी रक्षा ही कर सकता है। जिस प्रकार प्रेम, मानव-मानव के बीच सहयोग और मित्रता आवश्यक है, इसी प्रकार राष्ट्रो के बीच सहयोग व मित्रता परम आवश्यक है। कोई भी राष्ट्र दूसरे राष्ट्र से शत्रुता करके शांति से रह ही नहीं सकता। और आज जैन धर्म के समस्त मानव जगत् को विश्व को अपना भाई और मित्र समझाने के सिद्धात की सुख-शांति के लिए बहुत आवश्यकता पड़ गई है। अब मानव समाज हिंसा से घृणा करने पर मजबूर है, अहिंसा का सिद्धात आज विश्व का मूल मत्र होता

❀ वास्तव मे उत्पादन के साधनो पर व्यक्तिगत स्वामित्व ही वर्ग सघर्ष का कारण है। जब तक व्यक्तिगत स्वामित्व बना रहेगा, वर्ग संघर्ष समाप्त नहीं होगा।

जा रहा है। राष्ट्र धर्म के आधीन यह भी आता है कि स्वयं अपने राष्ट्र में शांति और दूसरे राष्ट्रों के प्रति प्रेम व सहयोग की भावना रखो। दूसरे राष्ट्र के प्रति घृणा उत्पन्न करना अपने राष्ट्र की शांति पर संकट को निमत्रण देना है।

अपने राष्ट्र की समस्याएं स्वय अपने आप सुलझाओ। विदेशियो को अपने घर की आग बुझाने की दावत देना राष्ट्र धर्म के प्रतिकूल है। जयचन्द ने यह भूल की तो सारे राष्ट्र को विदेशियों की दासता मे रहना पडा। परन्तु दूसरी ओर चन्द्रगुप्त का चरित्र है, जैन धर्म के सिद्धान्तों पर उसे विश्वास था। उसने भद्रबाहु से दीक्षा ली थी। चाणक्य ने नन्द राजा के विरुद्ध जैन वीर चन्द्रगुप्त सम्राट् को लडाया। सिकन्दर ने भारत पर आक्रमण किया तो उसने चन्द्रगुप्त से कहा कि हम तुम्हारे शत्रु नन्द के विरुद्ध लडने को तैयार है, तुम हमारा साथ दो, नन्द को परान्त करके उसका राज्य हम तुम्हे सौप देगे। पर राष्ट्र धर्म के पालन कर्ता चन्द्रगुप्त ने सिकन्दर का प्रस्ताव ठुकरा दिया और उसने कहा कि यह हम भाइयों का आपसी युद्ध है, इसमे तुम्हे टाग अडाने की आवश्यकता नहीं है। और न मैं यह सहन कर सकता हूँ कि भारत के किसी राजा पर कोई विदेशी आक्रमण करे। आप अपने घर जाये हम अपने झगडे स्वय निपट लेगे। सिकन्दर को चन्द्रगुप्त के उत्तर से निराश होकर वापिस लोटना पड़ा। यह था जैन सम्राट् चन्द्रगुप्त का राष्ट्र धर्म।

जैन सम्राटों के इसी राष्ट्र धर्म के कारण किसी भी जैन सम्राट् के शासन काल मे कोई भी विदेशी भारत पर अधिकार नहीं कर पाया। यह इस बात का प्रमाण है कि यदि शासक अपने राष्ट्र धर्म को निभाए तो किसी भी शत्रु को राष्ट्र पर आक्रमण

करने का साहस नहीं हो सकता और यदि साहस भी हो जाय तो उसका आधिपत्य नहीं हो सकता।

जिन दिनो हिटलर की सेनाएं रूस की सेनाओं को मार भगाती जा रही थीं, और यह शंका हो गई कि हिटलर रूस को परास्त कर देगा। अमरीका ने रूस के पास प्रस्ताव भेजा कि अमरीका हिटलर के विरुद्ध लड़ने के लिए अपनी सेनाएं भेजने को तैयार है। आप जब चाहे तभी अमरीकी सेनाएं पहुँच सकती है।

स्टालिन ने प्रस्ताव सुना और वे कुछ सोचने लगे। उन्होने सोच-समझ कर उत्तर दिया कि रूस की भूमि पर किसी भी पर-राष्ट्र की सेनाएं शत्रु के रूप में ही आ सकती है, मित्र के रूप मे नहीं। रूसी अपनी मातृभूमि पर किसी भी देश की सेनाएं देखना पसंद नहीं करते। हिटलर को हरायेगी तो रूस की सेना ही हरायेगी। मार्शल स्टालिन ने राष्ट्र के नाम अपील निकाली तो रूस का प्रत्येक जवान रणक्षेत्र मे जा डटा।

इसी प्रकार अपने देश के पुराने इतिहास को उठाइये। वराग नाग नतवा १२ व्रत धारी थे। उन्हे चेड़ा राजा का आदेश मिला कि वे युद्ध मे आकर लड़े। दूसरे दिन तेला किया और वे युद्ध मे जाकर लडे। जिस समय वे युद्ध मे घायल हो गए और उनमे लड़ने की शक्ति न रही। रण क्षेत्र मे एक ओर अपना रथ रोक कर उन्होने संथारा कर लिया और वे सीधे स्वर्ग (देवपुरी) मे गए तभी से यह कहावत बन गई है कि राष्ट्र के लिए युद्ध करने वाले सीधे स्वर्ग जाते है।

राष्ट्र पर जब कोई आक्रमण होता है, प्रत्येक राष्ट्र वासी का धर्म हो जाता है कि वह अपने देश की रक्षा के लिए शत्रु को रोके और इस राष्ट्र धर्म को निभाने के लिए यह आवश्यक है कि

राष्ट्र के प्रत्येक युवक को सैन्य शिक्षा दी जाय।

कुछ लोग कहते हैं कि उनकी मान्यताओ का राष्ट्र धर्म से कोई सम्बन्ध नहीं है, यह उनकी भूल है क्योकि उनकी मान्यताओ का अच्छा या बुरा प्रभाव राष्ट्र के जीवन पर पडता ही है। इस लिए प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य है कि वह किसी ऐसे अंध विश्वास मे न फसे जिसका राष्ट्र के जीवन पर प्रभाव पड़े। मेरा मतलब उन अन्धविश्वासों से है जो मनुष्य के आचरण पर प्रभाव डालते है। मान लीजिए आप ऐसा विश्वास करते हैं कि "किसी शत्रु के विरुद्ध लडने की आवश्यकता नहीं है, आप तो भगवान् की उपासना ही मे लगे रहिए, भगवान् स्वय शत्रु को दण्ड देगे।" आप का यह विश्वास राष्ट्र धर्म के पालन करने मे बाधक है। क्योकि एक तो आप स्वय इससे पगु हो जाते है दूसरे हो सकता है अन्य अज्ञानी भी ही आप की ही नकल करने लगे। सोमनाथ का मन्दिर इसी अन्धविश्वास के कारण नष्ट हुआ था। महमूद गजनवी ने जब सोमनाथ पर आक्रमण किया तो राजपूतो ने मन्दिर की रक्षा करनी चाही। परन्तु अन्धविश्वासी पुजारियों ने कहा कि तुम्हे तलवार उठाने की आवश्यकता नहीं है, भगवान् स्वय अपनी और अपने मन्दिर की रक्षा कर लेगे। परिणाम यह हुआ कि महमूद गजनवी ने मन्दिर की सारी सम्पत्ति लूट ली। सोने की मूर्ति, जिस मे हीरे-जवाहरात जडे हुए थे, तोड दी और सारे रत्न और स्वर्ण लूट कर ले गया।

इसी प्रकार कितने ही रीति-रिवाज भी राष्ट्र को हानि पहुँचाते है। राष्ट्र धर्म के पालनकर्ता किसी ऐसी रीति अथवा रिवाज के पक्षपाती नहीं हो सकते जो राष्ट्र को घुन की भाति खोखला कर दे। उदाहरण के लिए मै आप से दहेज प्रथा के बारे मे कहूँगा। दहेज प्रथा हमारे राष्ट्र को घुन की भांति चिपटी हुई

है। सम्भव है यह प्रथा सामन्त युग की देन हो। सुनते हैं बीते युग के सामन्त अपनी पुत्रियों के विवाह के अवसर पर धन-दौलत दिया करते थे। उनके पास धन था और इतना धन था कि वे उसका उपयोग ही नहीं कर पाते थे। व्यभिचार और ऐश्वर्य मे धन व्यय करने की अपेक्षा उनका पुत्री को धन देना कोई बुरा नहीं था, परन्तु सामन्तो की उस प्रथा को सारे समाज ने ग्रहण कर लिया और आज दहेज की प्रथा आम हो गई है। इस दहेज प्रथा ने हमारे राष्ट्र को इस बुरी तरह जकड रखा है कि आज पुत्री के हाथ पीले करने के लिए एक बड़ी धनराशि की आवश्यकता होती है जिस के परिणामस्वरूप कन्या का जन्म ही परिवार के लिए एक अभिशाप समझे जाने लगा है। कन्या को इसी भारत मे गगा जल की भाति पवित्र समझा जाता था पर आज जब किसी के घर कन्या का जन्म होता है, तो रुदन फूट पडता है और जब तक कन्या का पाणिग्रहण सस्कार सम्पन्न न हो जाय तब तक पिता की छाती पर चिन्ताओ का पहाड़ सा लदा रहता है। कितनी ही कन्याओं को योग्य वर नहीं मिल पाते और कितनी ही कन्याएं अपने पिता का बोझ हलका करने हेतु आत्महत्या कर लेती हैं, कितने ही माता-पिता अपनी कन्याओं की हत्या कर डालते हैं, कितनी ही कन्याएं अपने पति के घर जाकर केवल इसीलिए नारकीय जीवन व्यतीत करती है क्योंकि उनके पिता वर पक्ष वालों की इच्छानुसार दहेज नहीं दे पाते। नारी जाति के साथ यह घोर अन्याय केवल दहेज प्रथा के कारण होता है। इसलिए आज हमारे राष्ट्र के वायुमण्डल मे कन्याओं के चीत्कार बस गए हैं।

आप को स्मरण होगा कि सामन्त युग में लोग अपनी निर्धनता के कारण अपनी पुत्रियों को भेड़-बकरियों की भाति बेच

डालते थे, पर आज दहेज प्रथा के कारण पुत्र बिकते हैं और बाकायदा नीलामी बोली बुलती है। राष्ट्र के वातावरण को विषाक्त करने वाली यह प्रथा जिस ने सारे समाज में नारी जाति को पशुओं की भांति जीवन व्यतीत करने पर विवश किया है, जिसने कन्या-जन्म को पाप बना दिया है, जिस ने कन्याओं को आत्महत्याएं करने पर विवश किया है, हमारे राष्ट्र का कलंक है, राष्ट्र धर्म का पालन करने वालों का धर्म है कि वे इस कलंक से राष्ट्र का पीछा छुडाएं।

इसी आधार पर मैं कहता हूँ कि राष्ट्र को हानि पहुँचाने वाली प्रथाओं और रीति-रिवाजों का अन्त करना भी राष्ट्र धर्म है।

संक्षेप में राष्ट्र धर्म वह धर्म है जिस से राष्ट्र सुव्यवस्थित हो, राष्ट्र में शांति रहे, राष्ट्र की उन्नति हो, नागरिक अपने-अपने धर्म का पालन करना सीखे, राष्ट्र की सम्पत्ति सुरक्षित रहे, राष्ट्र की प्रसिद्धि हो, कोई अत्याचारी न रहे और न कोई दुखी हो।

जिस कार्य का फल इस के प्रतिकूल निकलता है वह राष्ट्र धर्म नहीं है।

राष्ट्र स्थविर

राष्ट्र धर्म का इतना विशाल क्षेत्र है कि उस के प्रत्येक पहलू को समझना और उस का पूर्ण रूपेण पालन करना उस समय तक सम्भव नहीं है जब तक राष्ट्र नायक अथवा नेता समय-समय पर नागरिकों का उचित पथ प्रदर्शन न करें। ग्राम धर्म और नगर धर्म की व्याख्या करते हुए मैंने आप को बताया था कि धर्म पालन कराने के लिए स्थविरों की कितनी आवश्यकता होती है। राष्ट्र ग्रामों और नगरो के समूह का नाम है और ग्राम तथा नगर को अपने ऊपर शत्रुओं के आक्रमण का भय नहीं रहता और न शत्रुओं से अपनी रक्षा करने का ही उतरदायित्व उन पर है, विदेशो के साथ कैसे कूटनीतिक सम्बन्ध हों, शासन-प्रणाली कैसी हो, सामाजिक व्यवस्था मे क्या दोष हैं, शाति स्थापना के लिए क्या नीति अपनाई जाय, शिक्षा का प्रबन्ध कैसे हो यह सभी बाते नगर और ग्राम धर्म के आधीन नहीं आतीं, यह सब राष्ट्रीय क्षेत्र की बाते है, इस लिए राष्ट्र स्थविर का कर्तव्य क्षेत्र ग्राम तथा नगर स्थविर के कर्तव्य क्षेत्र से कहीं अधिक विशाल है और इसी लिए राष्ट्र स्थविर वही हो सकता है जो स्वयं राष्ट्र धर्म का पालन करता है, दूसरे से पालन करा सकता है और राष्ट्र की समस्त समस्याओं को भलीभाति समझता है।

यह स्पष्ट सी बात है कि कर्तव्य क्षेत्र जितना विशाल होगा उसे निभाने वाले की सूझ-बूझ और योग्यता भी उतनी ही महान् होनी चाहिए।

एक यूरोपियन लेखक ने कहा है कि कोई कार्य करना इतना कठिन नहीं है जितना वही कार्य दूसरों से कराना। यूरोपियन लेखक की यही बात हमारे देश में कहावत की भाँति भी प्रयोग की जाती है। इस बात में सच्चाई कूट-कूट कर भरी है इस सिद्धान्त को मानते हुए हम कह सकते है कि राष्ट्र धर्म का पालन करना जितना कठिन है उस से अधिक नागरिकों से उस का पालन करना है। क्योंकि लाखों-करोड़ो व्यक्तियों को उन के धर्म का बोध कराना ही इतना कठिन कार्य है कि यह प्रत्येक व्यक्ति से सम्भव नहीं है, परन्तु धर्म बोध कराना भी तो राष्ट्र नायक के कर्तव्य की इतिश्री नहीं है। इस के साथ-साथ उस मार्ग पर जनता को लाना भी है जिस का ज्ञान कराया गया है ।

स्थविर चाहे ग्राम का हो या नगर का अथवा राष्ट्र का, त्याग सभी के लिए प्रथम अनिवार्य है। बिना त्याग के स्थविर के कर्तव्यों को निभाना असम्भव है। अपने बीते युग से आज तक का इतिहास उठाकर पढ़े और उन मे वर्णित राष्ट्रनायकों की जीवन गाथा का अध्ययन करें तो आप को पता चलेगा कि उन सब ने एक प्रकार से बड़ी तपस्या की थी। त्याग सभी के जीवन का अंग था। लाखों-करोडों व्यक्तियों को अपने पीछे चलाना हर किसी के वस की बात नही है, जो लोग ऐसा कर पाते हैं उन मे कुछ विशेष गुण होते हैं और उन गुणों के आकर्षण से ही लोग उन की ओर झुकते हैं।

जिस प्रकार सोना आग मे रखने से ही चमकता है। हिना पत्थर पर घिसने से ही रंग लाती है। इसी प्रकार त्याग की भट्टी

मे से तप कर निकलने वाले जीवन और व्यक्तित्व ही प्रभाव डालते है।

बैरिस्टर तो हमारे देश मे कितने से ही उत्पन्न हुए पर क्या राष्ट्र ने सारे बैरिस्टरो को जाना ? परन्तु महात्मा गांधी बैरिस्टरी पास करके राष्ट्र के इतने महान् नेता बने कि आज उन्हे भारत का बच्चा-बच्चा जनता है। आज हमारे प्रधान मत्री प० जवाहरलाल केवल प्रधान मत्री ही नहीं वरन राष्ट्र स्थविर भी है। शिक्षा सम्बन्धी योग्यता के क्षेत्र मे हमारे ही देश के कितने ही व्यक्ति उनसे बहुत आगे निकलेंगे पर विद्वत्ता मे जवाहरलाल जी से कहीं ऊँचे व्यक्तियो की कौन सुनता है ? आज प० जवाहरलाल नेहरू अकेले ऐसे व्यक्तित्व हैं कि तराजू के एक पलड़े मे उन्हे और स्वय सारी कांग्रेस सस्था को रख दिया तो नेहरू जी का ही पलड़ा भारी रहेगा। आप जानते है कि कांग्रेस के प्रति कितने ही लोग घृणा करते थे। परन्तु आम चुनाव के समय प० जवाहरलाल नेहरू का दौरा हुआ और केवल पण्डित जी के व्यक्तित्व के नाम पर लोगो ने कांग्रेस को वोट दे दिये। क्योंकि राष्ट्र स्थविर मे जो गुण होने चाहिए, राष्ट्र स्थविर के जो लक्षण है, सभी नेहरू जी मे विद्यमान है।

राष्ट्र स्थविर की प्रत्येक बात और उसका प्रत्येक कार्य राष्ट्र के लिए होता है क्योंकि उसका जीवन अपना ही नहीं होता बल्कि उस पर वह अपने राष्ट्र का अधिकार मानता है।

राष्ट्र स्थविर राष्ट्र के नागरिको की भावनाओ का प्रतिनिधित्व करता है और वह अपने नागरिको के प्रत्येक कार्य की जिम्मेदारी स्वय अपने ऊपर ले लेता है।

सन् १६४२ मे महात्मा गांधी ने 'करो या मरो' का नारा लगाया और जनता ने उस नारे को अपनाकर अंग्रेज शासन के विरुद्ध

प्रत्येक सम्भव अस्त्र उठाया। जिसे जनता सरकार की सम्पत्ति समझती थी, सरकार के प्रति रोष प्रगट करने के लिए उसे नष्ट-भ्रष्ट करने की चेष्टा की। तार काटे, लाइनें उखाड़ीं, डाकखाने और थाने फूंके, जो भी जनता के दिल में आया किया। पं० नेहरू जेल से बाहर आये तो उन सब तोड़-फोड़ के कार्यों की जिम्मे-दारी उन्होंने अपने ऊपर ले ली और उन्होंने अंग्रेज सरकार के सामने घोषणा की कि जनता ने जो कुछ किया उसका जिम्मेदार मैं हूँ। जनता गद्‌गद् हो उठी। उसने देखा कि उनका नायक कितना बहादुर है और कितना विशाल हृदय है उसका?

महाराणा प्रताप और वीर शिवाजी अपने समय के राष्ट्र स्थविर ही थे। यह बात दूसरी है कि किन परिस्थितियों में उन्हें कार्य करना पड़ा और कितना कार्य किस प्रकार वे कर पाये। परन्तु यह तो मानना ही पड़ेगा कि वे राष्ट्र की जनता का सही प्रति-निधित्व करते थे और उन्होंने अपने राष्ट्र के लिए अपने जीवन के अन्तिम श्वासों तक संघर्ष किया।

राष्ट्र स्थविर जनता की नब्ज पहचानता है और वह समझता है कि किस समय कौन सा आदेश उसे जनता को देना चाहिए। इसी लिए वह जनता को अपने संकेतों पर इधर से उधर करने में सफल होता है। सफल राष्ट्र स्थविर वही है जो समय की आव-श्यकता को पहचाने।

कभी-कभी वह समय भी आते हैं जब राष्ट्र स्थविर को अपनी परीक्षा देनी होती है और अपने प्राणों तक की बाजी लगा कर अपने राष्ट्र का हित करना पड़ता है। यदि वह परीक्षा में सफल होता है तो जनता उस पर श्रद्धा की पुष्प वर्षा करती है और यदि वह सच्चा नहीं उतरता तो फिर वही जनता जो एक दिन उसे अपना नेता कहते गर्व अनुभव करती थी, दूसरे दिन

उसकी आलोचना करने मे कोई कमी नहीं उठा रखती। महात्मा गांधी को कई बार परीक्षा काल से गुजरना पडा।

जिस प्रकार एक परिवार का सरक्षक यह सहन नहीं कर सकता कि उसके परिवार मे कोई रोग फैले, उसी प्रकार राष्ट्र स्थविर अपने राष्ट्र को रोगो से मुक्ति दिलाने के लिए जी तोडकर परिश्रम करता है जब भारत मे साम्प्रदायिकता का विष फैला तभी महात्मा गाधी की नींद हराम हो गई और उन्होंने अपने राष्ट्र को इस रोग से मुक्त कराने के लिए अपने प्राणो की बाजी लगा दी और लम्बे-लम्बे अनशन किए। परन्तु जनता उन्हे बापू के नाम से पुकारती थी, उनका बलिदान कोई सहन नहीं कर सकता था इस लिए जनता ने अपनी भूल सुधारने का प्रयत्न किया।

सुभाषचन्द्र बोस भी एक राष्ट्र स्थविर ही थे। वे एक ओर नेता थे तो दूसरी ओर सेनानी भी। उनके एक-एक शब्द से भारत के वीर युवको मे नवउत्साह ठाठें मारने लगता था। भारत से फरार होने से पूर्व एक बार उनसे किसी ने पूछा कि आप अभी तक अविवाहित है, आप ने विवाह क्यो नहीं किया ?

सुभाषचन्द्र मुस्करा कर बोले, "मुझे कभी इस विषय पर विचार करने का अवसर ही नहीं मिला।" सुभाष बाबू का उत्तर सुनकर वह व्यक्ति आश्चर्य चकित रह गया। परन्तु यह आश्चर्य की बात नहीं क्योकि राष्ट्र स्थविर के सामने राष्ट्र की ही इतनी समस्याएँ रहती है कि वह उनमे ही खोकर रह जाता है। उसे अपने जीवन के सम्बन्ध मे सोचने का अवकाश ही नहीं मिलता।

राष्ट्र स्थविर राष्ट्र हित के लिए अपने परिवार, सगे सबन्धियो और मित्रों आदि को भी त्याग सकता है। आप को ज्ञात होगा कि शेख अब्दुल्ला पं० जवाहर लाल नेहरू के गहरे मित्र थे। परन्तु

जिस समय शेख अब्दुल्ला ने अमरीका से साठ-गाठ करके काश्मीर का भारत से सम्बन्ध विच्छेद करके स्वतन्त्र राष्ट्र और अमरीकी उपनिवेश बनाने का षडयन्त्र करना आरम्भ किया और उसका पता भारत सरकार को चला, तो पंडित नेहरू ने मित्रता को ताक पर रखकर शेख अब्दुल्ला को गिरफ्तार कराने में ही देश का हित समझा। शेख अब्दुल्ला जिन्हे 'शेरे कश्मीर' कहकर पुकारा जाता था, जेल की दीवारो में बन्द कर दिये गए। राष्ट्र स्थविर के धर्म का पालन करने के लिए पंडित नेहरू ने अपनी मित्रता की परवाह नहीं की।

राष्ट्र स्थविर के चरित्र का राष्ट्र पर बहुत प्रभाव पड़ता है इसलिए उसे सदैव ध्यान रहता है कि वह कोई ऐसा आचरण न करे जिससे उसकी अनुयायी जनता के चरित्र पर कोई कुप्रभाव पड़े। एक वार शिवाजी के साथियों के हाथ एक मुस्लिम युवति लग गई। उन्होने शिवाजी के सम्मुख उसे प्रस्तुत करते हुए कहा कि "हम आपके लिए एक सुन्दरी भेट स्वरूप लाए है।"

शिवाजी ने उस युवति से उसका पता पूछा और उन्हे मालूम हुआ कि युवति उनके शत्रुओ के परिवार की है, शिवाजी ने कहा कि "तुम हमारी बहन हो। घबराने की कोई बात नहीं है।" युवति शिवाजी के इस व्यवहार को देखकर चकित रह गई। उसे तो स्वप्न में भी आशा न थी कि उनके परिवार के साम्राज्य का शत्रु इतना चरित्रवान है।

शिवाजी ने कुछ धन-दौलत देकर उसे उसके परिवार के पास पहुँचा दिया।

शास्त्र कहता है कि चाहे एक भी व्यक्ति हो और वह राष्ट्र के हित की बात सोचे और अपने कार्यों से राष्ट्र का भला करे तो वह राष्ट्र स्थविर है। जो व्यक्ति यह सोचता है उसके खाने-पीने

रहन-सहन और आचरण से राष्ट्र का अहित न हो वह भी राष्ट्र स्थविर ही है। परन्तु आज तो ऐसी रीति चल गई है कि प्रत्येक वस्तु नकली चलने लगी है। घृत नहीं मिलता तो उसके स्थान पर 'डालडा' वनस्पति घी चलता है और वह ही शुद्ध घृत के नाम पर बिकता है। इसी प्रकार कितनी ही वस्तुएँ डालडा मार्का चल रही हैं और नेता भी डालडा मार्का चल पड़े हैं। आज बनाव शृगार की लहर चल रही है, दिखावा बढ गया है। स्थविर के मामले मे भी लोगो ने दिखावे का सहारा लेना आरम्भ कर दिया है। नेताओं की इतनी भीड है कि कोई साधारण व्यक्ति तो यह भी नहीं समझ पाता कि उनमें से वह किसकी बात सुने ? असली कौन है और नकली कौन ? लीडरी के इतने मजनू दिखाई देते है कि उनमे से पता लगाना दुर्लभ है कि इनमे दूध पीने वाले मजनू कितने हैं और खून देने वाले मजनू कितने ? प्रत्येक अपनी राय को सही बताता है और इतने सुन्दर ढग से प्रस्तुत करता है कि लगता है मानो राष्ट्र का एक यही हितचिन्तक है और इसके सिवा दूसरे जितने हैं वे सब झूठे और दगाबाज हैं। अब साधारण जनता चक्कर मे पड जाती है कि वह किसके बताए मार्ग का अवलम्बन करे। बडी मुसीबत तो यह है कि यह लीडर लोग राह बडी जल्दी बदल देते है। कितने ही ऐसे नेता हैं जो आज इस दल मे है तो कल उस दल मे। आज एक बात की आलोचना करते है तो कल उसी की प्रशसा करने लग जाते है। लीडरो की इस भीड ने जनता को चक्कर मे डाल दिया है। परन्तु राष्ट्र धर्म का पालन कितने करते हैं यह पता लगाना आसान नहीं है, क्योंकि प्रत्येक अपनी ही नीति को राष्ट्र के हित मे बताता है और जनता इन स्थविरो के चक्कर मे बट जाती है। कोई व्यक्ति किसी रग के झण्डे के नीचे है तो कोई किसी के। मै यह नहीं कहता कि लोगो को अपनी-अपनी इच्छानुसार अपना पथ चुनने

का अधिकार नहीं मिलना चाहिए। प्रजातन्त्र में यह तो अधिकार सभी को होना ही चाहिए कि वह जिस दल में चाहे कार्य करे पर मैं इस बात की सराहना नहीं कर सकता कि केवल, अपने स्वार्थों के लिए ही दलबन्दी की जाय और जनता की शक्ति को बाटा जाय। इससे तो राष्ट्र को हानि ही होगी। हां राष्ट्रीय व्यवस्था, समाज व्यवस्था और आर्थिक प्रणाली में मतभेद होने, भिन्न समाज-दर्शन और आर्थिक व्यवस्था में आस्था होने पर भिन्न-भिन्न दल बनाकर अपने मत का प्रचार किया जा सकता है। जनता की इच्छा है कि वह जिसे हितकारी व्यवस्था जाने उसे स्वीकार कर ले और अपनी इच्छानुसार जिस 'वाद' को चाहे राष्ट्र में स्थापित करे। परन्तु तनिक-तनिक सा मतभेद होने पर अलग-अलग दल बनाकर शोर मचाते फिरने से तो समाज या राष्ट्र का लाभ नहीं है। उन नेताओं को राष्ट्र की राजनीति में कोई स्थान नहीं मिलना चाहिए जो किन्हीं स्वार्थोवश राष्ट्रहित को तिलाजलि देकर जनता की एकता नष्ट करने पर तुले हैं। लीडरी की इस दौड से तो लोगों ने यह परिणाम निकाल लिया है कि जो अधिकाधिक सफाई से जनता की जेब तराश ले वही होशियार और योग्य नेता है। परन्तु यह स्थिति उसी समय तक है जब तक जनता जागृत नहीं है। जब जनता में जागरण की लहर आयेगी तब रंगे सियारों की नहीं चल सकती। किन्तु जब जनता को जागृति की शिक्षा देने वाले ही उसे पथ भ्रष्ट करने पर तुले हों तब कोई क्या करे?

इसलिए आज सन्तो की पहले से अधिक आवश्यकता हो गई है ताकि वह बिना लीडरी का ताज पहने लोगों को उनके राष्ट्र-धर्म का बोध करा सके और जनता राष्ट्र धर्म की कसौटी पर परख कर देखे, जो उस पर सही उतरता है वह राष्ट्र स्थविर है, जो सही नहीं उतरता वह रंगा सियार है।

* चतुर्थ सोपान *

पाखण्ड धर्म

'पाखण्ड धर्म' का नाम सुनकर ही कुछ लोग चौंक उठेंगे। वे पूछेंगे कि जो पाखण्ड है वह धर्म कैसे हो सकता है? क्योंकि साधारणतया लोग पाखण्ड का अर्थ आडम्बर अथवा दम्भ लगाते है। परन्तु वास्तव मे पाखण्ड का अर्थ इस प्रकार किया जाता है।

पा इति पाप
त खण्डयति पाखण्ड

तदेव धर्म—पाखण्ड धर्म। जो पापो को खण्डित करता है वही धर्म है। दशवैकालिकसूत्र अध्याय २ नियुक्ति १५८ की टीका मे पाखण्ड शब्द का अर्थ इस प्रकार दिया है।

पाखण्ड व्रतमित्याहुस्तद्यस्या स्त्यमल भुवि।
स पाखण्डी वदन्त्यन्ये, कर्मपाशाद्विनिर्गत ॥

अर्थात्—पाखण्ड नाम व्रत का है। जिसका व्रत निर्मल है उस कर्म बंधन से विनिर्मुक्त पुरुष को पाखण्डी कहते हैं।

जिन्हे प्रतिक्रमण आता हो, उनसे पूछते हैं कि प्रतिक्रमण मे पर-पाखण्ड आता है, इसका अर्थ क्या है, यदि पाखण्ड का अर्थ आडम्बर अथवा दम्भ है तो उसके पहले पर लगाने की क्या आवश्यकता थी? क्योंकि जैसे पराया आडम्बर अथवा दम्भ

बुरा है वैसे ही अपना पाखण्ड भी तो बुरा होना चाहिए, फिर "पर" शब्द क्यों जोड़ा गया ? यही कहना चाहिए था कि यदि मैंने पाखण्ड की प्रशंसा की हो तो तस्समिच्छामि दुक्कड़ं। किन्तु ऐसा न कह कर कहा यह गया है कि यदि मैंने पर-पाखण्ड प्रशसा की हो तो तस्समिच्छामि दुक्कड। इसका मतलब यह हुआ कि पाखंड का अर्थ आडम्बर अथवा दम्भ नहीं है। बल्कि पाखंड का अर्थ है जो पाप का खंडन कर सके। और पाप को खडित केवल व्रत ही कर सकता है अतएव जैन शास्त्रो ने व्रत को ही पाखण्ड माना है। जैन शास्त्रों में पाखंड धर्म का स्पष्टतया वर्णन मिलता है। ठाणाग सूत्र मे व्रतधारियों के धर्म की व्याख्या की गई है। प्रश्न व्याकरण सूत्र के दूसरे सम्वरद्वार में एक स्थान पर निम्नलिखित पाठ आया है।

'अरोग पासडि परिग्गहित'

टीका–अनेक पाखडी परिगृहीत नानाविध व्रतिभिरङ्गीकृत।

अर्थात्–अनेक प्रकार के व्रतधारियो से स्वीकार किया हुआ।

इसका साफ मतलब है कि व्रत को ही पाखंड कहते हैं और इसलिए व्रतधारी पाखडी हुआ। जो समस्त व्रतधारियो अथवा पाखडियों ने स्वीकार कर लिया हो वह सत्य व्रत है।

दशवैकालिक सूत्र मे श्रमण शब्द की व्याख्या करते हुए कहा गया है।

पव्वइए, अणगारे, पासंडे, चरग तव से भिक्खू।
परिवाइए, य समणे निग्गथे सजए मुत्ते ॥

इस श्लोक में श्रमण को अणगार पाखड, प्रवर्जित निर्ग्रन्थ सजती आदि बताया गया है। यदि पाखडी शब्द का अर्थ आडम्बरी अथवा दम्भी होता तो शास्त्र कभी श्रमण को पाखंडी नहीं कहता। अत. पाखंड का अर्थ व्रत ही है। व्रत ही पाप से

रक्षा करता है, व्रत से पाप का खडन होता है, अतएव पाप को खंडित करने की शक्ति जिस में हो वही पाखडी अथवा व्रतधारी है।

जब हम पाखड धर्म कहते हैं तो इसका आशय यह होता है कि पाप को खंडित करने वाले व्रत का पालन करने वाले का धर्म अर्थात् जो धर्म व्रत का पालन करना सिखाए, धर्म के मार्ग पर ले जा कर पापों से मुक्ति दिलाए, व्रतधारियों को सुव्रतो पर अडिग रहने की शिक्षा दे उसे ही पाखड धर्म कहते हैं।

व्रत हमारे जीवन को, मुक्ति पथ पर जाने वाले आत्मा को जीवन के साचे मे ढालते हैं। पीछे हम ने ग्राम धर्म, नगर धर्म और राष्ट्र धर्म की व्याख्या की है। पर आप यह भलीभांति समझ सकते हैं कि सुव्रत का पालने वाला ही तो उन धर्मो का भी पालन कर सकता है। जिस के हृदय मे पाप बसा हो, जिस की आत्मा पर पापों का आवरण हो, वह ग्राम धर्म, नगर धर्म अथवा राष्ट्र धर्म का भी तो पालन नहीं कर सकता।

सर्वज्ञ देव के बताए हुए नियम अथवा व्रत समस्त मानव समाज के लिए हैं, जिनमे किसी प्रकार की लचक नहीं है, वरन् उनके व्रतों मे पूर्ण आस्था रखने वाला ही पाप से मुक्ति पा सकता है। व्रत भी दो प्रकार के हैं।

कुछ त्यागियो, साधु सन्तो के हैं और कुछ गृहस्थियो के लिए हैं। साधु और गृहस्थी के जीवन मे काफी अन्तर होता है इसलिए इन दो भिन्न जीवनों के लिए भिन्न व्रत बता कर सर्वज्ञ देव ने मानव के लिए विशेष लकीर खींच दी है, एक विशेष परिधि है जो परिधि के बाहर जायेगा वहीं उसका पतन हो जायेगा। अथवा उनको वहीं सकट का सामना करना पडेगा। राम ने भी

सीता के चारो ओर एक परिधि खींच दी थी*। और कहा था कि उक्त परिधि से बाहर जाने पर संकट आ सकता है। और आपने देखा कि सीता परिधि से बाहर गई और संकट मे फंस गई। राम की वह लकीर खींचने की बात भी एक व्रत के ही समान थी।

सन्त के लिए सर्वज्ञ देव ने पांच व्रत बताए है। यदि सन्त इन व्रतो का पालन नहीं करता अथवा इन व्रतो की परिधि का उल्लंघन करता है, उसका सन्त जीवन वहीं कलंकित हो जाता है। इसी प्रकार यदि गृहस्थी अपने बताए व्रतो का पालन न करे तो वह न सद्गृहस्थी ही बन सकता है और न आत्मा की उन्नति ही कर सकता है। उसकी आत्मा निर्मल नहीं हो सकती। शास्त्र कहता है :—

'गिही वासे वि सुव्वया'

अर्थात्—गृहस्थाश्रम मे रह कर जो सुव्रत का पालन करता है उसे सुव्रती कहते है। धृति आदि सद्गुणो का पालन करने वाला भी सुव्रती कहलाता है शास्त्र मे कहा गया है —

'धृत सत पुरुष सुवत्ता'

जो सत्पुरुष धृति आदि नियमों का पालन करता है उसका नाम सुव्रती है।

जो लोग ऐसा समझते है कि मनुष्य परिस्थितियो का दास होता है और व्रतो का पालन केवल ऐसे समय हो सकता है जब कि परिस्थितिया अनुकूल है वे भूल जाते है कि सुव्रती तो वही कहलाता है जो विपत्तिया मे भी व्रत नहीं त्यागता।

---

*वैष्णवो के मतानुसार सीता के लिए लक्ष्मण ने लकीर खींची थी। पर जैन मतानुसार उक्त परिधि राम द्वारा खींची गई थी।

आपको ज्ञात होगा कि सुदर्शन श्रावक ने प्रसन्नता पूर्वक शूली पर चढ़ जाना स्वीकार कर लिया पर उसने अभया रानी की प्रार्थना स्वीकार नहीं की*। और सुदर्शन के जीवन ने हमारे सामने यह उदाहरण प्रस्तुत कर दिया कि प्राण भले ही चले जायें पर सुव्रती अपने व्रत का त्याग नही कर सकता। यह तो थी एक श्रावक की बात। आप जोधपुर के राठौर दुर्गादास के जीवन को देखें। औरंगजेब की रानी गुलेनार ने उसे दिल्ली का सिहासन का लालच देकर कहा कि मुझे अपनाओ। उसने स्पष्टतया प्रस्ताव किया कि यदि आप मुझे स्वीकार कर लें तो मैं अपने पति को मार कर दिल्ली का राज्य सिहासन आपको अर्पित करके दिल्ली सम्राट् बना दूंगी। पर दुर्गादास के लिए सारे ही प्रलोभन व्यर्थ सिद्ध हुए। उसने सदाचार के सामने दिल्ली के सिहासन को भी ठुकरा दिया। तब रानी ने उसे मृत्यु दण्ड की धमकी दी। बोली कि "यदि तुम मेरा प्रस्ताव स्वीकार न करोगे तो मैं अपने लडके कामबख्श से तुम्हारी गर्दन कटवा दूंगी।" पर दुर्गादास न झुका, उसने कहा कि "मुझे अपने प्राणों की अपेक्षा सदाचार अधिक प्रिय है।"

कितने ही सकट क्यो न आये सुव्रती अपने पथ से विचलित नहीं होते। इसी कारण उनकी आत्मा निर्मल हो जाती है। जो विपत्तियो मे अपने धर्म को त्याग देते है उन्हे व्रतधारी ही नहीं कहा जा सकता।

राजा हरिश्चन्द्र की कथा आपने सुनी ही होगी। उन्होने मेहतर के हाथ बिकना स्वीकार किया, अपनी पत्नी और पुत्र को बेच डाला, पर व्रत नहीं त्यागा और आपने सुना होगा कि अन्त

*अभया रानी सुदर्शन से अपनी काम वासना शान्त कराना चाहती थी।

मे विजय उनकी ही हुई। इस कथा मे कुछ कपोलकल्पित बाते भी हो सकती है पर इतना तो सच ही है कि यह कथा भी मनुष्य को यही शिक्षा देती है कि चाहे जो हो अपने व्रत को न छोड़ो। (पढ़िये जवाहर लाल जी महाराज लिखित हरिश्चन्द्र तारा)

परन्तु आज तो व्रत को एक ऐसे उपवास के रूप मे प्रयोग किया जाता है जिसके रहते अन्न छोड कर सारे दिन दूध और फल खाना धर्म समझा जाता है। यह व्रत न होकर व्रत का उपहास ही कहा जा सकता है।

सुव्रती को न्याय-वृत्ति प्रिय होती है, वह चाहे जो हो, अन्याय को सहन नही कर सकता और न अन्याय को होते देख ही सकता है। वह अन्याय को समाप्त कराने के लिए अपने प्राणों की भी बाजी लगा सकता है।

काबुल के राजा के दरबार मे एक राजपूत रहता था। एक दिन राजा शिकार को गए और अपने साथ अपनी बेगमों को भी ले गए। उनके साथ सभी कर्मचारी शिकार खेलने लगे और बेगमो को एक स्थान पर छोड दिया। दूसरी ओर से ऐसे समय जब राजा शिकार खेलते-खेलते कहीं दूर चले गए, हिंसक पशुओ ने बेगमों पर आक्रमण कर दिया। उस राजपूत ने उक्त दृश्य देखा तो उसने सोचा यदि शस्त्र लेने दौडा जाय तो शेर किसी न किसी एक को खा जाएगा, अत निश्शस्त्र ही शेर पर प्रहार किया और हाथों से ही उसे पछाड दिया। बेगमो को उस राजपूत की वीरता पर बडा आश्चर्य हुआ।

शिकार से वापिस आकर एक दिन राजा अपने महल मे सो रहा था। उसे सोते-सोते ऐसा महसूस हुआ कि कोई जानवर उस पर होकर उतर गया है। वह काप उठा और अपना यह अनुभव उसने बेगम को सुनाया।

बेगम बोली कि आप इस विचार से ही घबरा गए और अपने दरबार के राजपूत को देखिए कि वह निहत्था था फिर भी उसने शेर को पछाड़ दिया।

राजा को बेगम की बात से लज्जा भी आई और राजपूत के प्रति ईर्ष्या भी हो गई। उसने इसे अपना अपमान समझा और अपमान का कारण वीर राजपूत को माना। इसलिए वह क्रोध में बोला कि वह राजपूत वीर है अथवा मुझ में अधिक शक्ति है, इस बात का पता सुबह चलेगा, जब मैं उसे दरबार में बुलाकर कत्ल कराऊँगा। बेगम सिहर उठी। उसे राजपूत को बचाने की चिन्ता हुई और प्रात. ही उसने राजपूत को कहला भेजा कि वह यहाँ से तुरन्त चला जाय वरना राजा उसे मरवा डालेगा।

राजपूत भारत में चला आया और उसने कई राजाओं से शरण मागी, पर काबुल के राजा के भय से किसी ने उसे शरण न दी।

अनिलपुर में उन दिनों चौलक राजा राज्य करते थे, जिसे हस्ती राजा भी कहते हैं। उनका सिपहसालार एक 'श्रीमाल गोत्र का जैनवीर था। राजपूत जब सब ओर से निराश हो गया तो चौलक राजा के पास शरण के लिए पहुँचा। उस दिन राजा बाहर गए थे, इसलिए उसने सिपहसालार से भेंट की, सिपहसालार उस निरपराधी को शरण देने को तैयार हो गया और उसे अपने पास रख लिया। क्योंकि सिपहसालार समझ गया कि राजपूत को शरण न देने का अर्थ है, अत्याचारी राजा के हाथ में एक निरपराधी वीर को सौंप देना।

काबुल के राजा को जब पता चला कि राजपूत को चौलक राजा ने शरण दी है वह अपनी सेनाएं लेकर उसके राज्य की सीमा पर आ डटा। उसके साथ बहुत सा गोला बारूद था।

चौलक राजा यह देखकर भयभीत होगया और उसने सोचा कि इस राजपूत के कारण उसके देश पर आक्रमण होगा, कितने ही लोगों का रक्त बहेगा, हो सकता है कि उसे अपने सिंहासन से भी हाथ धोना पडे। राजा और रानी सिपहसालार के पास गए। उस समय वह उपासना में था। जब वह ध्यान से उठा, राजा-रानी ने कहा कि आई मुसीबत को टालने का एक ही उपाय है कि "राजपूत को काबुल नरेश के हवाले कर दिया जाय। वरना अनर्थ हो जायगा। उसके पास बहुतसा गोला बारूद है वह हमारे राज्य को तबाह कर देगा।"

सिपहसालार ने कहा "नहीं यह कायरता है। हम न्याय की ओर हैं, अन्यायी को इस निरपराध वीर को सौंपना पाप है।" और उस संकट से उबारने का उत्तरदायित्व उसने अपने ऊपर ले लिया।

और अपनी सेनाओं से काबुल नरेश के गोला बारूद पर गोली वर्षा करा दी, जिससे सारा गोला बारूद का भण्डार नष्ट हो गया और काबुल नरेश का अहंकार समाप्त हो गया।

यह थी न्यायप्रियता और अत्याचार के विरुद्ध डटने की मिसाल। जो लोग कहते है कि कोई कुछ करे हमें क्या ? उनकी यह बात शुभ नहीं है, बल्कि यह तो अत्याचार को योगदान देना ही है।

सुव्रती कभी दुराचार को पसंद नहीं कर सकता और न कोई मोह ही उसे पथविमुख कर सकता है। गुरु गोविन्दसिंह के दोनो बालक दीवारों में चिन दिए गए, पर उन्होंने अपने व्रत का त्याग नहीं किया। वीर हकीकत राय ने प्राण दे दिये पर अपने पथ को छोड़ना स्वीकार नहीं किया। ऐसे कितने ही उदाहरण आपको मिल सकते है।

सुव्रती किसी से घृणा नहीं करता। उनसे भी नहीं जो पापी है, अथवा पथ भ्रष्ट है और उनसे भी नहीं जो उसके शत्रु है। वल्कि वह प्रेम से ही संसार को जीतता है। क्योंकि उसके गुणो मे ही वह आकर्षण होता है कि वह चुम्बक की तरह दूसरो को अपनी ओर ही खींचता है।

जिस नगर या ग्राम मे अथवा राष्ट्र मे सुव्रती अधिक होगे वहा प्रेम होगा, सहयोग रहेगा, शाति रहेगी और सभी सुरक्षित रहेगे। जहां तनिक-तनिक से सकट मे विचलित हो जाने वाले लोग होगे, वहा कभी शांति नहीं रह सकती और न ग्राम धर्म, नगर धर्म अथवा राष्ट्र धर्म का ही पालन हो सकता है।

कुछ लोग ऐसे सन्तो को भी महान् मानते है जो तपस्या के समय ही किसी-रूपवती पर मोहित होकर त्याग-तपस्या को भूल वासना पूर्ति मे लिप्त हो गए। ऐसे लोग ऋषि कहलाए अथवा तपस्वी, पर वे सुव्रती नहीं कहे जा सकते और सुव्रती नहीं इस लिए उनकी आत्मा भी निर्मल नहीं हो सकती।

अब मै पाखण्ड धर्म के दूसरे पहलू पर आता हूँ। वह पहलू है, पाखण्ड शब्द का व्यवहारिक अर्थ और उस अर्थ को लगाकर पाखण्ड धर्म की व्याख्या। यदि हम यह मान ले कि पाखण्ड, आडम्बर अथवा दम्भ को भी कहते है तो फिर पाखण्ड धर्म का अर्थ हम इस प्रकार लगायेंगे कि "वह धर्म जो यह ज्ञान कराये कि क्या वात पाखण्ड (आडम्बर) है और उससे बचने की शिक्षा दे, वह पाखण्ड धर्म है।*

आजकल हमारे देश मे 'धर्म' और 'व्रतों' के नाम पर कितने ही आडम्बर चल रहे है, जिन्हे मनुष्य अपनी मुक्ति का साधन

*पाखण्ड की यह व्याख्या=पाखण्ड के व्यवहारिक अर्थ को लेकर की जा सकती है।

समझ बैठे हैं। पर वास्तव में वे मानव जीवन के लिए हितकारी न होकर अहितकारी ही अधिक हैं।

आप प्रतिदिन देखते हैं कि कुछ लोग पीपल को पूजते हैं। पीपल के तने पर सूत लपेट आते हैं, उसे पानी देते हैं और उस की परिक्रमा करते हैं और समझते हैं कि वे एक महान् कार्य कर रहे हैं। क्योंकि उन्हें पीपल देवता स्वरूप लगता है। परन्तु पीपल को पानी देने का रहस्य कुछ और ही था जो अब धार्मिक अन्ध-विश्वास में परिणत हो गया। आपको ज्ञात होगा कि बीते युगों में वृक्षों की रक्षा करना, वृक्ष लगाना लोग अपना धर्म मानते थे। फल देने वाले अथवा दातुन आदि में प्रयोग होने वाले और अन्य कार्यों में लाभ पहुँचाने वाले वृक्षों को तो सभी लोग लगाना धर्म मानते थे, पर पीपल बेचारे से न फल ही मिलते हैं और न कोई अन्य विशेष लाभ ही। छाया के लाभ को कितने लोग देखते हैं? इसलिए किसी ने पीपल की रक्षा करना व उसे सींचना धर्म बता दिया और यही बात एक दिन 'धर्म' बन गई। लोगों ने पीपल की पूजा करनी आरम्भ कर दी। आज लोग इसलिए पीपल की पूजा नहीं करते कि वृक्ष राष्ट्र के लिए आवश्यक हैं बल्कि यह समझकर करते हैं कि पीपल मुक्तिदाता है और इस समझ ने पीपल की वह दुर्गत बना दी है कि इतना पानी दिया जाने लगा है कि उसकी नसें गल जाती हैं।

देवी-देवताओं की पूजा हिन्दुओं में बहुत चल रही है। देवी-देवताओं ने उन के मन को इस प्रकार जकड़ लिया है कि नर-नारी उन के दास होकर रह गए हैं। काली देवी को प्रसन्न करने के लिए बकरे और भैंसे की बलि दी जाती है। क्या यह समझ में आने वाली बात है कि देवी जीवों का रक्त पीकर ही प्रसन्न होती है? यदि यह बात ठीक है तो फिर पशु भक्षक देवी

मनुष्य को पूजनीय नहीं हो सकती।

पिछले दिनों एक रोंगटे खडे कर देने वाला घटना पत्रों में छपी थी। एक व्यक्ति के सन्तान नहीं थी और वह डोरे, गण्डो वीर-भगतों, पण्डे पुजारियों, सभी को आजमा चुका था फिर भी सन्तान नहीं हुई। अन्त में उसे एक पुस्तक मिली जिस में एक 'सिद्धि' लिखी थी। और उसी के साथ एक राजा की कहानी भी दी थी। उस में बताया गया था कि राजा के सन्तान नहीं होती थी, तो उस ने उस पुस्तक में छपी विधि अनुसार पूजा की। आम के वृक्ष के नीचे शिवलिंग लगाया और उसके चारों ओर सात आम रख दिये। फिर पूजा करने के उपरान्त रानी ने सिर झुकाया और राजा ने उस को बलि कर दिया। पुस्तक में एक ऐसा चित्र भी दिया था जिस में राजा को हाथ में तलवार लिए खडा हुआ दर्शाया गया था और रानी का सिर कटा पड़ा था। कहानी में बताया गया था कि इस क्रिया से उन सातों आमों के सात पुत्र बन गए थे।

उस व्यक्ति ने भी वही किया। अपनी पत्नी को एक आम के वृक्ष के नीचे लेजाकर शिवलिंग लगाया। चारों ओर सात आम रखे और पूजा करके, पत्नी का सिर काट डाला, बिल्कुल कहानी के पात्र राजा की ही भांति। परन्तु राजा की भांति उसे सात पुत्र नहीं मिले। आम फिर भी आम ही रहे, तो वह वहां से भाग खडा हुआ। पुलिस को सूचना मिली तो उस हत्यारे की खोज आरम्भ हो गई। यह है हमारे देश में चलते आडम्बरों का परिणाम।

और सुनिये। मारवाड में जिन दिनों मुगलों का आधिपत्य था, राजपूतों के सिर पर प्रत्येक क्षण नंगी तलवार लटकती रहती थी, उनकी इज्जत और सम्पत्ति सभी खतरे में थी। उन दिनों

एक राजपूत विवाह करके ला रहा था, दुल्हन की डोली साथ थी और थोडे से व्यक्ति थे। रास्ते मे मुसलमानों ने घेर लिया। मुसलमानो की सख्या राजपूतों से कहीं अधिक थी। जब राजपूतों ने देखा कि मुसलमानों का एक गिरोह उनकी ओर डोली छीनने के लिए आ रहा है। उन्हें एक तरकीब सूझी। दुल्हन को डोली से निकाल कर एक अर्थी मे बांध लिया, मुसलमान पास आ गए। राजपूतों ने उनसे कहा "हमारे यहा यह रिवाज है कि दुल्हन की अर्थी बनाते है फिर थोडी दूर लेजा कर उसे वापिस ले आते हैं। हमे वह रिवाज पूरा करने दो, तब तुम दुल्हन को ले जाना।"

मुसलमानों ने कहा "अच्छा तुम यह रस्म भी अदा कर लो। पर कहीं अर्थी लेकर ही मत भाग जाना।"

राजपूत बोले "आप मे से कुछ लोग हमारे साथ चले। तब तो आप को विश्वास रहेगा ?"

मुसलमानो ने बात मान ली। कुछ मुसलमानों को साथ भेज दिया और शेष वहीं रह गए। कुछ राजपूत भी उनके साथ वहीं रहे।

अर्थी को ले कर चार राजपूत और उन के साथ कुछ मुसलमान दूर निकल गए। जब वह एक पहाड़ी की ओट मे गए तो राजपूतों ने अर्थी रख दी। मुसलमानों ने पूछा कि 'अब यह क्या करते हो। वापिस चलो ना ?" राजपूत बोले बस एक रस्म और रह गई है उसे और पूरा कर लेने दो"।

मुसलमानों ने पूछा 'वह क्या" ?

राजपूतो ने कहा कि "अर्थी की परिक्रमा करेंगे और उसके बाद अर्थी उठाकर वापिस चल देंगे।"

मुसलमान सुनकर और यह समझ कर कि यह भी निरे मूर्ख ही हैं, हंस पडे। और पास ही खड़े होकर परिक्रमा देखने लगे।

राजपूतों ने अर्थी की परिक्रमा करते-करते अनायास ही तलवारें निकालीं और मुसलमानों पर टूट पडे। अनायास ही हुए आक्रमण से मुसलमान घबरा गए, वे पूरी शक्ति से न लड सके और राजपूतों ने उनको वहीं ढेर कर दिया।

जब बहुत देर हो गई और फिर भी अर्थी वापिस नहीं पहुँची तो प्रतीक्षा में खडे मुसलमानों में से कुछ यह देखने के लिए कि माजरा क्या है? चल पडे। कुछ वहीं राजपूतों के साथ रुक गए।

अर्थी बनाकर ले जाने वाले राजपूतों के पास जब मुसलमान पहुँचे उन्होंने उन्हें भी मार गिराया और दूसरी ओर खड़े राजपूतों ने अपने पास खडे मुसलमानों का सफाया कर दिया। इस प्रकार राजपूतों ने दुल्हन छिनने से बचाई।

वह बात आज प्रथा में परिणत हो गई है। कुछ राजपूत आज मारवाड में इस की नकल करते हैं। अर्थात् दुल्हन को अर्थी पर रख कर कुछ दूर ले जाते हैं और फिर लौट आते हैं।

आप ही बताए इस आडम्बर से भला क्या लाभ?

सुव्रती लोग इन आडम्बरों के चक्कर में नहीं फसते। इन अंधविश्वासों को तोडना धर्म है। कितने ही लोग इन आडम्बरों को 'पाखण्ड' कह कर पुकारते हैं।

कुछ लोग भूत-प्रेतों को मानते हैं। और वे भूत-प्रेतों के नाम पर खूब लूटे जाते हैं, व्यभिचारियों व गुण्डे भूत-प्रेतों के नाम कितनी ही स्त्रियों के सतीत्व को नष्ट करते हैं।

पत्रों में कुछ दिन हुए एक समाचार छपा था कि दिल्ली में कोई सरदार अमरसिंह नाम के एक व्यक्ति भूत उतारने का कार्य करते थे। उनका एक गिरोह था जो इसी पेशे से रुपया बटोरता था। अन्धविश्वासी व अज्ञानी नर-नारी उनके पास पहुँचा करते थे। एक व्यक्ति की स्त्री बहुत दिनों से बीमार थी, जब डाक्टरों

की दवाई से कोई लाभ न हुआ तो किसीने उन्हे सरदार अमरसिंह के पास जाने को कहा। वह अपनी पत्नी को लेकर सरदार अमरसिंह के मकान पर पहुँचे। वहा अमरसिंह के गिरोह के लोग भी उपस्थित थे।

सरदार जी ने रोगिणी को देखा और बताया कि भूत है और पति पत्नि दोनो पर है। दोनों को 'खेलाया' जायेगा। पति को पहले 'खेलाना' आरम्भ किया और उसे मार-मार बेहोश कर दिया। उसके बाद उसकी पत्नी को पकड कर उससे बलात्कार करना आरम्भ कर दिया। कई व्यक्तियो ने उस स्त्री के साथ मुंह काला किया। तभी किसी ने पुलिस को सूचना दे दी और उन्हे रगे हाथों पकड लिया गया। तब स्त्री ने सारा हाल बताकर कहा, "मेरे साथ बलात्कार करते हुए यह लोग कहते जाते थे कि यदि तुमने किसी से कुछ कहा तो हम तुम्हे भस्म कर देगे।"

एक नहीं हजारो ऐसी घटनाएं होती है और अधविश्वास कितनी ही स्त्रियो का सतीत्व भग कराता है तथा कितनी ही स्त्रियो के प्राण ले लेता है। फिर भी लोग अधविश्वास मे फसे है और धर्म के नाम पर अधर्म के दास बन गए है। बल्कि यह प्रवृत्ति इतनी भयकर हो गई है कि किसी बात को बिना सोचे समझे ही करने लग जाते हैं।

मै अमृतसर मे चला जा रहा था, एक पीपल के वृक्ष के नीचे मेरे पैर मे काटा लग गया। मै झुका और पैर से काटा निकाल कर फेंक दिया। दूर से कुछ लोगो ने मुझे झुकते हुए देख लिया। वे जब पीपल के पास आये तो उन्होने झुक कर वृक्ष को प्रणाम करना आरम्भ कर दिया। मैने पूछा "यह क्या कर रहे हो?"

वे बोले। "आपने प्रणाम किया तो हम ने भी कर लिया।"

जब मैने बताया कि मै तो पैर से कांटा निकाल रहा था तो वे बडे लज्जित हुए। और कहने लगे "चलिए कोई बात नहीं पीपल देवता ही तो है, प्रणाम कर लिया तो कोई अनर्थ नहीं हुआ।"

बन्दरों की सी नकल करने की आदत ने मनुष्य का क्या बना दिया है, यह देख कर दु:ख होता है। भटिण्डा के किले मे खुदाई हुई। उसमे एक पत्थर की गणेश जी को टूटी हुई मूर्ति निकल आई। एक मसखरे ने उसे देख कर एक पैसा उस पर रख दिया। फिर क्या था जो वहां पहुँचा उसीने पैसे चढाने आरम्भ कर दिये। तीसरे दिन वही व्यक्ति खुदाई का निरीक्षण करने वाले पुरातत्त्व विभाग के व्यक्ति के पास पहुँचा और हस कर पूछा कि कितने पैसे चढे? और फिर स्वय बोला कि लोग भी कितने मूर्ख है, मैंने हॅसी-हॅसी मे ही पैसा चढ़ा दिया तो सभी पैसा चढाने लगे।

ज्ञान नहीं है, तो चालाक स्याने लोग मूर्खों की मूर्खता से लाभ उठाने से नहीं चूकते।

एक स्त्री को सतान नहीं होती थी, स्याने ने बता दिया कि किसी, बालकों से भरपूर-परिवार के घर मे आग लगा दो। स्त्री ने वैसा ही किया। उस समय दो बालक घर मे सो रहे थे। मात-ापिता घर से बाहर थे। इसलिए बालक वहीं जल कर मर गये।

सिकन्द्राबाद मे एक जैन स्त्री से बच्चे होकर मर जाते थे। किसी स्याने ने कहा तुझे मसान लग गया है। इस बार बच्चा हो जाय तो उसे जमीन मे गाड देना, फिर सब बच्चे जिन्दा रहेगे। उसने पैदा होते ही अपना बच्चा जमीन मे गाड दिया। अनायास ही उसी समय एक कुम्हार वहा मिट्टी खोदने के लिए आगया और उसे मिट्टी खोदते हुए बालक मिल गया। केस पुलिस मे

गया और पुलिस ने अदालत को सौंप दिया। बडी दौड-धूप से स्त्री को वरी कराया गया।

अनूपशहर मे एक स्त्री को सन्तान नही होती थी। किसी स्याने ने कहा कि किसी आदमी का रक्त चाट ले। उसने अपने एक पड़ौसी के बच्चे का हाथ काट खाया और खून पी गई।

और सुनिये! कई वर्ष की बात है दिल्ली सब्जी मण्डी मे एक वैश्य व्यापारी ने दूसरी शादी की थी परन्तु दो-तीन वर्ष बीतने पर भी उसके सन्तान नहीं हुई। उसे किसी मुसलमान स्याने ने बता दिया कि किसी बच्चे के खून से स्नान करले तो बच्चा हो जायेगा। उसने अपनी जिठानी के लडके को मार डाला और घर मे उसे गाड दिया, पीछे बात खुल गई और मामला पुलिस मे गया। स्त्री को दण्ड मिला।

आपने सुना होगा कि जिन स्त्रियो के बच्चे नहीं जीते, वे गंगा माई को अपना बच्चा बोल देती है और बच्चे को गगा माई मे फेक देती है। दूसरी ओर ब्राह्मण खडा रहता है, वह उसी क्षण उसे उठा लेता है और ब्राह्मण को कुछ रुपया देकर बच्चा फिर उसकी मा ले लेती है। इसका मतलब यह लगाया जाता है कि बच्चा को गगा माता को दे दिया था, बाद मे खरीदा। इसी प्रकार कुछ लोग अपने बच्चे को कूडे पर फेक देते है और फिर उस का नाम कूडे अथवा इसी प्रकार कोई बुरा सा नाम रख लेते है।

जिन लोगो मे इस प्रकार का अन्धविश्वास चलता हो, उनकी आत्मा भला कैसे निर्मल हो सकती है? इस अन्धविश्वास ने इतनी जड़ पकड ली है कि कितने ही मत-मतान्तर केवल अन्ध-विश्वास पर ही चल पड़े है।

मध्यभारत की ओर हिन्दुओं मे एक नया पथ चला है। वे

लोग मानते है कि उनके गुरु महाराज ही स्वर्ग तथा मोक्ष के दाता है। वे चाहे जिसे सुख देदे चाहे जिसे दु ख दे । इसलिए वे अपने गुरु महाराज को ही प्रसन्न रखने मे कल्याण समझते है। एक बार ऐसे ही पंथ के एक व्यक्ति ने श्रावक से कहा कि तुम कहां झंझट मे फंसे हो। तुम्हे तो मोक्ष के लिए बड़े झंझट करने पडते है। कहीं व्रत लेते हो, कहीं त्याग करते हो, कितने ही कष्ट उठाते हो, फिर भी अंधा सौदा रहता है,पता नहीं मोक्ष मिले अथवा न मिले। हमारे गुरु महाराज के पास चलो और उन्हे प्रसन्न कर लो। फिर वे प्रसन्न होकर तुम्हे स्वर्ग चाहिए तो स्वर्ग, मोक्ष चाहिए तो मोक्ष, जो भी चाहिए वही दे देंगे।

श्रावक उसके साथ उनके गुरु महाराज के पास गया। उस व्यक्ति ने अपने गुरु महाराज से कहा कि महाराज यह जैनी है, इन्हे मोक्ष प्राप्ति के लिए वड़े बखेडे करने पडते हैं। अब आपके चरणो मे आये है, इन पर इनकी इच्छानुसार कृपा कर दीजिए।

उनके गुरु महाराज ने श्रावक से पूछा "बोलो तुम्हे क्या चाहिए ?"

श्रावक ने उत्तर दिया कि "महाराज सुना है १२ वे लोक तक देवलोक है। आप तो मुझे १२वा स्वर्ग ही प्रदान कर दे।"

महाराज ने एक कागज का टुकडा उठाया और उसे लिखकर दे दिया, "तुम्हे १२वे स्वर्ग की बख्शीश दी गई।"

साथ गये व्यक्ति ने श्रावक से कहा कि अब तो तुम्हारी इच्छा पूर्ण हो गई। अब गुरु महाराज को कुछ दक्षिणा देकर प्रसन्न कर दो।

श्रावक ने भी एक कागज का टुकडा उठाया और उस पर भोपाल, पटियाला, हैदराबाद, आदि बारह रियासतो का नाम देकर लिख दिया कि महाराज को यह १२ रियासते बख्श दी

गई। महाराज ने कागज पढ़ा और चिढ़कर बोले कि यह रियासतें बख्शाने का तुझे क्या अधिकार है, क्या यह रियासतें तेरे बाप की हैं? श्रावक ने भी तुरन्त उत्तर दिया कि और क्या ?स्वा स्वर्ग तुम्हारे बाप का है जो तुम ने मुझे बख्श दिया? यह सब बातें मैंने आज चल रहे मिथ्या आडम्बरों को स्पष्ट करने के लिए बताई हैं। आप स्वयं सोचें कि इन आडम्बरों से मनुष्य को कितनी हानि पहुँच रही है?

सुव्रती और सद्‌गृहस्थी लोग ऐसे आडम्बरों के पास भी नहीं फटकते। परन्तु जैसा कि मैंने राष्ट्र धर्म की व्याख्या करते हुए कहा था, जिस राष्ट्र मे जैसा वातावरण होगा उसके नागरिकों पर वैसा ही प्रभाव पडेगा। एक व्यक्ति के आचरण का दूसरे पर प्रभाव पडता है। जैसे कि चमडे को साफ करने का जहा काम होता है वहां चाहे गुलाब के बीसियों पुष्प भी रख दो पर वहां की दुर्गन्ध में कोई अन्तर नहीं आयेगा। पर चमन मे गुलाब के पौधे के नीचे की भूमि मे भी गुलाब की सुगध बस जाती है। सुव्रती गुलाब के उस पौधे की ही भांति होता है जो उस भूमि को भी सुगधित कर डालता है जिससे वह उगा है। एक सुव्रती अपनी मातृभूमि को भी अपने गुणों से इसी प्रकार सुगधित करता है।

नीति मे कहा :—

> प्रिया न्याय्या वृत्तिर्मलिनमसुभङ्गेऽप्यसुकरम् ,
> असन्तो नाभ्यर्थ्याः सुहृदपि न याच्यस्तनुधनः।
> विपद्युच्चैः स्थेयं, पदमनुविधेयं च महताम्,
> सतां केनोद्दिष्टं विषममसिधाराव्रतमिदम्॥ (भर्तृहरि)

अर्थात्—विपत्ति पड़ने पर ऊँची जगह पर रहना और बड़े लोगों के मार्ग से चलना। न्यायानुकूल जीविका में प्रेम रखना,

प्राण निकल जाने पर भी पाप कर्म न करना। असज्जनों से किसी चीज के लिए याचना न करनी और थोडे धन वाले मित्र से भी नहीं मांगना, यह बडा ही कठिन व असाधारण व्रत सज्जनों को किस ने सिखलाया? अर्थात्—बिना ही किसी के सिखलाये ये सब गुण सज्जनों में स्वाभाविक ही होते हैं।

पर स्वभाव भी तो यू ही नहीं बन जाता। क्योंकि बालक जन्म लेते ही रोता है। पर यदि उसे मानव समाज में न रखकर पशुओं में रखा जाए और न उसे मानव के दर्शन ही हों, न मानव की बोली ही सुने, तो निश्चय है कि वह न मानव की भांति चलना-फिरना, खाना-पीना आदि ही सीख सकता है और न बोलना ही।

कुछ दिन पूर्व एक ऐसा ही लडका लखनऊ में मिला था जो बलरामपुर हस्पताल में रखा गया। वह कच्चा मांस खाता था। हिंसक पशुओं की भांति काटने को दौडता था। पशुओं की भांति ही हाथों और पैरों के सहारे चलता था, बोलना बिल्कुल न जानता था। क्योंकि उसे पैदा होते ही कोई हिंसक पशु उठा कर ले गया और वन में ही उसका पालन-पोषण हुआ। बलरामपुर हस्पताल में उसे खाने-पीने और चलने-फिरने की शिक्षा दी गई। धीरे-धीरे उसमें मानव स्वभाव आने लगा।

इसका अर्थ यह है कि बालक अज्ञानी होता है। वह इस समाज में ही आकर बोलना, चलना-फिरना और खाना-पीना सीखता है। इसलिए उसका स्वभाव भी बहुत हद तक वैसा ही बनता है जैसे वातावरण में वह रहता है। इस कारण सुव्रती होंगे तो सज्जन होंगे और फिर इन सभी के वातावरण में रहने वाले लोग भी सव्रती और सज्जन ही बनेंगे।

जब श्रावकों ने व्रत धर्म का पालन करना छोड़ दिया तभी

आडम्बरों को फूलने-फलने का अवसर मिला। इसलिए श्रावकों को व्रत धर्म का पालन करना चाहिए ताकि उनकी आत्मा निर्मल हो और उनके प्रभाव से अन्य धर्मावलम्बी भी सुपथ पर आयें। परन्तु देखा यह गया है कि जैनी भाई जब कथा सुनने आते हैं और कभी उनसे कहा जाता है कि कोई व्रत लो। तो कोई मसूर की दाल का त्याग करेगा, कोई अन्य ऐसी ही वस्तु का। यह व्रत धर्म का उपहास है। व्रत लेने के आदेश का उद्देश्य तो उन व्रतों को धारण कराना होता है जो सर्वज्ञ देव ने आत्मा को निर्मल करने के लिए बताए हैं।

एक बार कुछ लोग पूज्य सोहनलाल जी महाराज के पास गए। जो लोग उनके दर्शनों को जाते थे, वे उनसे कोई व्रत लेने को कहा करते थे। इसीलिए जब वे चलने लगे तो सब ने कोई न कोई व्रत लिया पर एक व्यक्ति ने व्रत लेने से इकार कर दिया। उसके साथियों ने कहा कि जब तुम महाराज के दर्शन करने आये हो तो व्रत लो। हम ने भी तो व्रत लिया, फिर तुम क्यों नहीं लेते ?

वह व्यक्ति बोला कि 'मैं व्रत लेकर क्या करूँगा ? मुझ से निभेगा नहीं'।

उसके साथी बोल उठे "निभेगा कैसे नहीं, तुम चाहोगे तो अवश्य निभेगा। तुम्हें व्रत लेना ही पड़ेगा।"

मजबूर होकर उसने कहा कि मैं तो एक ही व्रत ले सकता हूँ और वह यह कि जो वस्तु मैं न खाना चाहूँ, जिसको मेरी तबीयत न चाहे, उसे मैं नहीं खाऊँगा।

उसके साथियों के कहा कि "यह तो कोई व्रत नहीं हुआ। जो चीज किसी को पसन्द न हो, वह खायेगा ही क्यों" ?

उस व्यक्ति ने कहा कि भाई मैं तो यह ही व्रत ले सकता हूँ। उसके साथी उससे बहस करने लगे और कोई दूसरा व्रत लेने को विवश करने में जुट गए।

पूज्य महाराज जी बोले कि आप लोग उसे क्यों परेशान करते है, यदि वह यही व्रत ले कि कि जो वस्तु उसे पसंद न आयेगी वह न खायेगा और उसे निभा ले तो फिर व्रत लेने और निभाने की आदत तो पडेगी और और आज जो उसे अपने प्रति अविश्वास है यह समाप्त हो जायेगा।–और फिर उस व्यक्ति से कहा कि अच्छा तुम यह व्रत लेते हो और उसे निभाओगे ?

उस व्यक्ति ने मुस्करा कर कहा कि हा महाराज, इस व्रत मे क्या रखा है, यह तो निभा निभाया है है, जो वस्तु मुझे पसन्द नहीं वह तो आज भी नहीं खाता।

महाराज जी भी मुस्करा पडे और बोले तो फिर तुम यह व्रत लेते हो ?

उस व्यक्ति ने व्रत लिया तो महाराज बोल पड़े कि अब कभी तुम्हे बुखार आये तो कुनैन नहीं खाओगे। डाक्टर दूध बताते है, और तबियत दूध को चाहती नहीं तो तुम नहीं पियोगे ? फिर क्या था, उस व्यक्ति को अपनी भूल मालूम हुई तो कान पकड कर कहने लगा कि तोबाह, तोबाह, मै कैसा व्रत ले बैठा। यह निभाना तो दुर्लभ है।

यह उदाहरण है मानव की वर्तमान स्थिति का। जब पाखण्ड धर्म का पालन नहीं होगा, तो मानव की भावना ऐसी ही बनेगी।

पाखण्ड धर्म, अर्थात् (व्रत) धर्म ही मानव को मानव

बनाता है। यही सुमार्ग पर लेजाने में सफल होता है इसलिए जीवन को सुखी बनाने के लिए इस धर्म का पालन करना अत्यावश्यक है। मिथ्याडम्बरों में फसे लोग न व्रत धर्म का पालन कर सकते हैं न सुख ही पाते हैं इसलिए मिथ्याडम्बरों का खण्डन करना धर्म है।

प्रशास्ता स्थविर

ग्राम धर्म, नगर धर्म और राष्ट्र धर्म की व्याख्या करने के साथ-साथ मैंने ग्राम स्थविर, नगर स्थविर, और राष्ट्र स्थविर की व्याख्या की थी और उन व्याख्याओं से आप यह भलिभांति जान चुके है कि प्रत्येक धर्म पालन के लिए जहाँ व्यक्ति में आत्म-बल की आवश्यकता है वहीं इन धर्मों का ज्ञान कराने और उचित नेतृत्व प्रदान करने के लिये स्थविर की भी नितान्त आवश्यकता है। ऊँटो का जब काफला चलता है तो उनमें से सब से आगे वाले की ही नकेल पकडने की आवश्यकता होती है और शेप सब एक-दूसरे की पूंछ से बंधे होते है, मनुष्य पशु नहीं है पर जीवन पथ बडा दुर्गम है, उस पर चलने के लिए भी किसी के नकेल पकडने की आवश्यकता होती है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में स्थविर चाहिए, ऐसा स्थविर जो उस क्षेत्र से भलिभांति परिचित हो।

मैंने पाखण्ड धर्म अथवा व्रत धर्म की व्याख्या की है। आप ने इस व्याख्या से ही समझ लिया होगा कि इस ससार में जब कि अन्धविश्वास ने अपने पैर जमा रखे है और व्रत धर्म का पालन करने के लिए समस्त व्रतो का ज्ञान और भटकने न देने के लिए समस्याओं और प्रश्नो को सुलझाने का उचित साधन चाहिए तो यह भी प्रश्न उठता है कि वह कौन सा साधन है जिसके द्वारा

हम अपनी समस्त समस्याओ और शकाओ का समाधान कर सकते है और भटकने से बच सकते है।

जिस प्रकार ग्राम, नगर, और राष्ट्र धर्म के पालन के लिए स्थविर की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार पाखण्ड धर्म का पालन भी बिना स्थविर के नहीं होता। परन्तु पाखण्ड धर्म का स्थविर पाखण्डी न कहला कर प्रशास्ता स्थविर कहलाता है। पाखण्डी हम उसे कहते है जो सुव्रतधारी हो। पर सुव्रतधारी केवल अपने व्रतो का ही तो अक्षरश पालन करता है, यह आवश्यक नहीं कि वह दूसरो का भी नेतृत्व कर सके।

आप चाहेगे यह जानना कि प्रशास्ता स्थविर किसे कहते है? ठाणाङ्ग सूत्र मे इसकी टीका करते हुए कहा गया है —

"प्रशासति शिक्षयन्ति ये ते प्रशास्तार धर्मोपदेशकास्ते च ते स्थिरीकारणात् स्थविराश्चेति प्रशास्तृस्थविरा"।

अर्थात्–शिक्षा देने वाले का नाम प्रशास्ता है और जो धर्मोपदेशक या शिक्षक अपनी शिक्षा के प्रभाव से शिष्यो को धर्म मे दृढ़ कर देते है, वे प्रशास्तृ स्थविर कहे जाते है।

विद्यालयो, स्कूलो और कालिजो मे बालको को जो शिक्षक पढ़ाते है उन्हे भी प्रशास्ता कह सकते है। परन्तु प्रशास्तृ स्थविर वही कहा जा सकता है जो अपनी शिक्षाओं से अपने विद्यार्थियो अथवा अनुयायियो को धर्म पर दृढ़ करता और सन्मार्ग पर ले आता है।

राष्ट्र की शिक्षा प्रणाली कैसी हो, देश के लिए कैसी शिक्षा की आवश्यकता है? इस बात पर विचार करके शिक्षा के लिए राष्ट्र का मार्ग प्रशस्त करने वाले और शिक्षा प्रसार का प्रबन्ध करने वाले को भी प्रशास्ता स्थविर कह सकते है।

आप प्रश्न कर सकते है कि जब प्रत्येक धर्म के पालन कराने के

लिए एक स्थविर की आवश्यकता होती है, और ग्राम धर्म का पालन कराने के लिए ग्राम स्थविर, नगर धर्म पर नागरिकों को ले जाने के लिए नगर स्थविर और राष्ट्र धर्म का पालन करने लिए उचित नेतृत्व देने वाले राष्ट्र स्थविर की आवश्यकता होती है, तो फिर पाखण्ड धर्म का पालन कराने और इस सम्बन्ध में मार्ग प्रदर्शन के लिए पाखण्ड स्थविर ही क्यों नहीं होना चाहिए। यह बीच में प्रशास्ता स्थविर कहां से आगया?

आपकी इस शका के निवारणार्थ मैं आप से कहूँगा कि आपने पाखण्ड धम की व्याख्या तो समझ ली है और आप विना वताए यह भी जानते है कि आज हमारे देश मे अधविश्वास बुरी तरह छाया हुआ है। यहाँ तक कि इस अधविश्वास के बल पर पनपने वाले आडम्बरों ने मानवीयता पर भी आघात करते जाने मे कोई कसर उठा नहीं रखी। लोगों को भेड़-बकरियों की भांति हाँका जाता है, और तनिक से फरेब से ही उनसे दानवीय कृत्य करा लिए जाते है। आपने कभी यह भी सोचा कि आखिर यह सब मिथ्याडम्बर क्यों चलता है? लोग व्रतो का पालन क्यों नहीं करते? श्रावक भी पथविमुख क्यों हो जाते है?

आपने यदि इस विषय पर सोचा होगा तो आप इस परिणाम पर पहुँचे होंगे कि जहाँ प्रकाश नहीं वहीं अन्धकार है, जहाँ शिक्षा नहीं वहीं अज्ञान तथा जहालत है और जहालत ही अन्धविश्वासो की जननी है। आप जानते ही है, गन्दे तालावों और गड्ढों में ही मच्छर उत्पन्न होते है। जिस घर मे सूर्य किरणे नहीं पहुँचतीं वही घर रोगो का अड्डा वन जाता है। वड़े-वडे नगरों मे जहाँ की गलियो और छोटे-छोटे घरो मे प्रकाश और वायु के ठीक प्रकार पहुचने का रास्ता नहीं, वहीं क्षय रोगो से

पीड़ित लोगों की संख्या अधिक हैं। इसी प्रकार जहाँ शिक्षा नहीं होती वहीं मूर्खताएं नंग्न ताण्डव करती है। जो लोग सुशिक्षित है वे चाहे अपने व्रतों का पालन न करते हों, पर मिथ्याडम्बरों मे तो नहीं फसते। और यदि वे उच्च शिक्षा प्राप्त करने के उपरान्त भी व्रतों का पालन नहीं करते तो इसका मुख्य कारण यह है कि उन्हे ऐसी ही शिक्षा नहीं मिली जिससे उन्हे अपने धर्म का ज्ञान होता और वे व्रत पालन की आवश्यकता महसूस करते।

इससे यह बात सिद्ध होती है कि पाखण्ड-धर्म तथा अन्य किसी भी धर्म का पालन करने के लिए और मिथ्याडम्बरो से लोगों को बचाने के लिए शिक्षा की आवश्यकता है। व्रत धारण करने और फिर उनका पालन कराने मे शिक्षा ही सर्वाधिक सहायक हो सकती है। इसलिए प्रशास्ता स्थविर की कितनी आवश्यकता है और पाखण्ड धर्म के पालन मे प्रशास्ता स्थविर का कितना महत्व है इस बात का आसानी से अनुमान लगाया जा सकता है।

आज हमारे देश मे शिक्षा प्रणाली बहुत ही दोष पूर्ण है। जिस शिक्षा से मनुष्य को अपने कर्तव्य और सन्मार्ग का ज्ञान नहीं होता है वह शिक्षा 'शिक्षा' ही नहीं कही जा सकती। हमारे देश की शिक्षा न मनुष्य को उसके कर्तव्य का बोध कराती है और न उससे सन्मार्ग का ज्ञान ही होता है। क्योंकि वर्तमान शिक्षा प्रणाली मनुष्य को मनुष्य बनाने के उद्देश्य से जारी नहीं की गई, वरन् उसका आधार मनुष्य को दास बनाने का उद्देश्य है। भारत मे जब अंग्रेजो का शासन आया, उन्होंने भारतीय सभ्यता एव संस्कृति को नष्ट कर डालने की चेष्टा से पुरानी शिक्षा पद्धति को राज्यकीय संरक्षण प्रदान करना बन्द कर दिया। हिन्दी और संस्कृत की पाठशालाएँ अधिकतर मुसलमानों के शासन काल ही से समाप्त हो गई थीं, जो कुछ शेष थीं उन्हे अंग्रेजी शासन का भी

सहयोग नहीं मिला। इसलिए धार्मिक शिक्षा और प्राचीन शिक्षा पद्धति समाप्त सी हो गई। अंग्रेजो को अपने शासन के लिए कर्मचारी चाहिये थे। उन्हे ऐसे व्यक्तियो की आवश्यकता थी जो उनकी भाषा मे ही उनसे बात-चीत कर सके और कार्यालयो का अंग्रेजी भाषा मे कार्य सचालन करने की योग्यता रखे। पर उनमे राष्ट्रीयता और अपनी सभ्यता एव सस्कृति का प्रेम जागृत न हो, वे शिक्षित तो हो पर दास वृत्ति के हो। उन्हे काम करने वाली हाड-मास की मशीनो की आवश्यकता थी। इसीलिए अंग्रेजो ने ऐसी शिक्षा प्रणाली भारत मे जारी की, जो मनुष्य को मनुष्योचित कर्तव्यो और मानवीयता का ज्ञान नहीं कराती, वरन् कार्यालयों के लिए मशीने तैयार करती है। वही शिक्षा-प्रणाली आज तक चल रही है।

आप वर्तमान शिक्षित युवको को देखिये। उन्होने हजारों रुपये व्यय करके और कितने ही वर्ष लगा कर शिक्षा ग्रहण की, पर धर्म के बारे मे उनका ज्ञान शून्य है। वे अपने जीवन के बारे मे भी कोई ज्ञान नहीं रखते। यदि किसी विद्यार्थी से यह पूछा जाय कि तुम्हारे जीवन का लक्ष्य क्या है? तो चाहे वह एम० ए० का ही विद्यार्थी क्यों न हो, इस प्रश्न का उत्तर ठीक नहीं दे सकता। बल्कि उत्तर देने से पहले वह बहुत देर तक सोचता रह जायेगा। क्योंकि उस बेचारे को यह तो किसी पुस्तक मे पढाया ही नहीं गया और न जीवन के सम्बन्ध मे उसने कभी सोचा ही है।

एक बार गांधी जी ने किसी विद्यार्थी से पूछा कि "तुम यह परीक्षा पास करके क्या करोगे?"

उत्तर दिया कि "बी० ए० करूँगा।"

गाधी जी ने फिर पूछा, "उसके बाद?"

विद्यार्थी ने कहा कि "उसके बाद एम० ए० करूँगा।"

गाधी जी ने फिर प्रश्न उठाया कि "उसके उपरान्त क्या करोगे ?"

विद्यार्थी ने उत्तर दिया कि "उसके बाद अच्छी-सी नौकरी करू गा।"

उक्त विद्यार्थी जैसा ही उत्तर अधिकतर विद्यार्थी देते है। मानो सभी विद्यार्थियो का एक ही उद्देश्य है कि नौकरी करना और नौकरी आजकल मिलती नहीं। इसलिए अच्छे-अच्छे विद्यार्थी बी० ए० और एम० ए० की डिग्री प्राप्त करके नौकरी के लिए मारे-मारे फिरते हैं। वास्तव मे देखा जाय तो वर्तमान शिक्षा प्रणाली दासमनोवृत्ति का ही प्रतिपादन करती है या बेकारी को जन्म देती है।

आज तो लोगो की मनोवृत्ति ही यह हो गई है कि किसी का पुत्र यदि धार्मिक बातो मे दिलचस्पी नहीं लेता तो पिता कहता है कि वह क्या करेगा, पढ़ने-लिखने वालो का तो दिमाग ही खराब हो जाता है ?

हा, यह ठीक है कि पढ़ने-लिखने वालों की रुचि धार्मिक बातो की ओर कम होती है, पर इसका कारण यह है कि वर्तमान शिक्षा ही युवकों को पथभ्रष्ट करती है। वे नौकरियो के अतिरिक्त और कुछ सोच ही नहीं सकते। आज जो विद्यार्थी इंजीनियरिंग पढते है उनमे से अधिकतर इसलिए इजीनियरिग पढते जाते हैं कि उससे नौकरी शीघ्र मिल जायेगी।

मेरे कहने का आशय यह है कि वर्तमान शिक्षा पद्धति मानव को सन्मार्ग पर नहीं ले जाती, इसमे परिवर्तन की आवश्यकता है। जो शिक्षा मानव को उसके कर्तव्य अथवा धर्म का बोध कराती है, वैसी शिक्षा देना प्रशास्ता स्थविर का धर्म है।

प्रशास्ता स्थविर इस बात का ध्यान रखता है कि राष्ट्र के

विद्यार्थियो पर शिक्षा का क्या प्रभाव हो रहा है और यदि शिक्षा से विद्यार्थियो को जीवन-पथ पर सुव्रती की भान्ति बढ़ने की प्रेरणा नहीं मिलती तो वह उस शिक्षा प्रणाली मे परिवर्तन करेगा। परन्तु आज ऐसा नहीं हो रहा, इसलिए राष्ट्र मे सुव्रतियो की कमी है। जिसके कारण राष्ट्र का वातावरण बिगडता जा रहा है।

कर्तव्य परायण प्रशास्ता स्थविर के अभाव मे आज स्त्रियो की शिक्षा का कोई प्रशसनीय प्रबन्ध नही है। जो कुछ प्रबन्ध है वह भी इतना दोप पूर्ण है कि यह विश्वास नहीं किया जा सकता कि कन्याओ को वर्तमान विद्यालयो मे शिक्षा दिला कर उनका भविष्य उज्ज्वल हो जायेगा? सच्चरित्रता की सुव्रतियो के अभाव मे समाज मे कमी अनुभव की जा रही है और इसी कारण वर्तमान शिक्षा कन्याओ के चरित्र पर वैसा प्रभाव नही डालती जैसा पड़ना चाहिए।

कालिजो मे पहुँचकर लडकिया फैशन तो सीख जाती है परन्तु गृहस्थ जीवन की कितनी बाते सीखती है? यही ना कि वे विवाह के उपरान्त खाना भी स्वय बनाने के लिए तैयार नहीं होतीं और स्वतन्त्रता के नाम पर उछ्खलता का अधिकार मांगने लगती है। धार्मिकता को वे मूर्खता समझ बैठती है और आत्मा को निर्मल करने के स्थान पर त्वचा की निर्मलता और बनाव-शृंगार पर अधिक ध्यान देती है।

मै यह नहीं कहता कि कन्याओ को शिक्षा दिलाना व्यर्थ है, अपितु मेरा कहना तो यह है कि कन्याओ की शिक्षा प्रणाली मे परिवर्तन होना चाहिए। वरना सारा समाज वर्तमान शिक्षा प्रणाली से विकृत हो जायेगा। परन्तु देखा यह गया है कि शिक्षा विभाग शिक्षा प्रणाली मे आमूलचूल परिवर्तन करने की अपेक्षा शिक्षा को महगा बनाते जाने की ओर अधिक ध्यान देता है। जिसके कारण

अपनी सन्तान को नौकरी दिलाने वाली उच्च शिक्षा दिलाने की भी लोगों में शक्ति नहीं है।

यह बातें इस बात की परिचायक है कि प्रशास्ता स्थविर अपने धर्म का पालन नहीं करते। बल्कि बहुत हद तक अपने कर्त्तव्यों के प्रति उदासीनता बरत कर जनता के साथ विश्वासघात कर रहे हैं।

इतिहास के पन्ने उलटिए, आप देखेंगे कि बीते युगों मे पन्द्रह सोलह वर्ष की आयु के युवकों ने भी अपने धर्म पर हसते-हसते बलिदान दिया। कितने ही युवको ने अपनी सभ्यता और सस्कृति के लिए आश्चर्यजनक साहसिक कार्य किए, आप सोचिए कि इतनी ही आयु मे उन्हे अपने कर्तव्य अथवा धर्म का कैसे ज्ञान हुआ? यह शिक्षा होती थी जो उन्हे अपने धर्म पर प्राणों की भी बलि देने की प्रेरणा देती थी। उस समय के इतिहास मे आप को मिथ्या-डम्बरों के लिए बलिदान देने वालों की गाथाएँ नहीं मिलेगी। जिस देश के विद्यार्थियों को अपने धर्म का ज्ञान हो, उस देश मे अन्धविश्वास और मिथ्याडम्बरों को पनपने का अवसर ही नहीं मिलता। उस समय शिक्षा के प्रबन्धक अपने कर्तव्य को समझते थे और उसे निभाने के लिए प्रयत्नशील रहते थे।

आपको ज्ञात होगा कि मर्यादा पुरुषोत्तम राम के युग मे बालकों को शिक्षा के लिए सन्यासियों की सेवा मे भेजा जाता था, सन्यासियों को अपने धर्म का ज्ञान होता ही था। वे ऐसी शिक्षा देते थे जिससे बालक को सुव्रतधारी बनने की प्रेरणा मिलती थी। इसलिए उन दिनों 'गुरुकुल' स्थापित थे। जहाँ २५ वर्ष की आयु तक पूर्ण ब्रह्मचारी रह कर सयमी जीवन व्यतीत करके जब युवक गृहस्थ जीवन मे प्रवेश करता था, उस समय उसे व्रत और धर्म का पूर्ण ज्ञान होता था। जब से 'गुरुकुल' शिक्षा का देश मे

सुप्रबन्ध नहीं रहा तभी से शिक्षा की यह दुर्दशा हुई है कि सभी रोते है।

आज के अध्यापक ने भी मजदूर का रूप ग्रहण कर लिया है। इसमें बेचारे अध्यापक की कोई गलती नहीं है, वरन् जो कमी है, वह इस समाज-व्यवस्था की है। इस समाज-व्यवस्था में प्रत्येक व्यक्ति अपने-अपने प्रति जिम्मेदार है। यहाँ केवल पैसा ही मानव का सगी साथी बन गया है। पैसे के बल पर यहाँ बाजार की प्रत्येक वस्तु तो खरीदी ही जाती है, इन्सान भी, उनकी मान-मर्यादा, वाणी और आत्मा भी खरीदी जा सकती है। समाज के बाजार में इन्सान विकते है, नारी और उसका सतीत्व भी बिकता है। जिस समाज मे पैसे ने इन्सान से अधिक महत्व प्राप्त कर लिया हो उस समाज मे कोई गृहस्थी केवल 'गुरु' का पद ग्रहण करके ही तो जीवित नहीं रह सकता। उसे भी अपना, अपने परिवार का पेट भरने के लिए पैसा चाहिए और यदि वह केवल विद्यार्थियो की कृपा का ही दास बना रहे तो कदाचित् उसे भूखे ही मरना पडे। अभी तक इस्लामी विद्यालयों मे ऐसी ही व्यवस्था है कि मौलवी साहब को बारी-बारी से विद्यार्थी अपने घर खाना खिलाते है और कुछ चन्दे से वेतन दे दिया जाता है। पर प्राय. मौलवी साहब झींकते ही रहते है और पेट भरने के लिए उन्हे डोरी, गण्डे, तावीज आदि बाटने का कार्य करना पडता है। तब कहीं पेट भरता है।

अध्यापको की इस दुर्दशा का कारण यह है कि जो प्रशास्ता है, जो बालको को ज्ञान-दान करता है, जो उनके मस्तिष्क मे ज्ञान का दीपक जलाता है, जो उनके भविष्य को उज्ज्वल करता है, ऐसे मार्ग प्रशस्त करने वाले व्यक्ति को केवल नौकर भर समझा जाता है और बेचारे प्रशास्ता को अपनी योग्यता के प्रमाण मे स्कूलों

और कालिजों के वे सर्टिफिकेट पेश करने होते हैं जो केवल इस विना पर मिलते हैं कि उसने परीक्षा में प्रश्नों के उत्तर सही लिखे थे, कैसे लिखे थे ? इनका प्रश्न ही नहीं उठता।

जब कि प्रशास्ता में केवल किताबी ज्ञान हो और वह भी उन किताबों का जो मनुष्य के जीवन को सुधारने की दिशा में कोई प्रेरणा नहीं देतीं और उसे दास समझा जाता हो तो फिर उससे यह आशा की जानी, निरी मूर्खता है कि वह बालकों को कोई जीवनोपयोगी-ज्ञान प्रदान कर सकेगा।

आप सभी जानते है कि अध्यापकों को पेट भरने के लिए तेली के बैल की भांति जुतना पडता है। विद्यालय में जाकर पढाते हैं और फिर जो समय शेप रहता है उनमें ट्यूशन पढाकर गुजारा करते है। जब अध्यापक अपने पेट के लिए प्रशास्ता स्थविरों* से अपनी वेतन वृद्धि की बात करता है तो उसे उत्तर दिया जाता है कि वह त्याग करे। वह गुरु है, गुरु धर्म का पालन करे। पर प्रशास्ता-स्थविर यह कभी नहीं सोचते कि जिसके 'विद्या दान' से वे आज अपने उच्च पद पर विराजमान है, उस प्रशास्ता की भी गृहस्थी है, उसके बालकों को भी रोटी कपडा चाहिए। उसे भी जीवन यापन के लिए जीवनोपयोगी वस्तुओं की आवश्यकता है। जब वे स्वय कोई त्याग नहीं कर सकते तो फिर अपने आधीन कार्य करने वालों से त्याग की आशा करना उनके दिमागी दिवालिये पन की ही तो बात है।

जिस समाज में प्रशास्ता का अनादर होगा वहाँ व्रत धर्म चल नहीं सकता। वहाँ आत्मा को मोक्ष दिलाने का ज्ञान ही नहीं मिल

* यहा प्रशास्ता स्थविर का प्रयोग शिक्षा-विभाग के उच्च अधिकारियों के लिए किया गया है। क्योंकि वे भी प्रशास्ता स्थविर ही है।

सकता। पेट का सवाल आज एक ऐसा जलता सवाल है कि लोग धर्म शिक्षा से अधिक उस शिक्षा का आदर करते है जो उनके पेट पालन मे सहायता देती है। फिर धर्म शिक्षा का प्रबन्ध कैसे हो? आज तो साधुओ के पास भी लोग इसलिए नहीं आते कि उन बेचारो को अपने रोजगार से ही छुट्टी नही मिलती। यदि धर्म के लिए वे सन्तो की वाणी सुनने मे अधिक समय व्यतीत करे तो बालको को पेट पर पट्टी बाध कर ही सुलाना पडेगा।

समाज विकृत होता है तो समाज के प्रत्येक अग मे विकार आता है और धर्म चल नहीं पाता। आपने वर्तमान सामाजिक स्थिति को देखकर इस बात का अनुमान लगा लिया होगा कि आज इस समाज मे जीवित रहना और धर्म पालन करना एक दूसरे की विरोधी बाते है क्योकि समाज मे से धर्म ज्ञान समाप्त सा हो गया है और इसलिए वह व्यक्ति जो अपनी आत्मा को निर्मल करने के लिए त्याग करता है वह भूखो मरता है। लोग उसे मूर्ख कहते है। और जो व्यक्ति धर्म पालन का ढोंग करता है और अपना पेट का धन्धा भी पूरे परिश्रम से चलाता है वह सुखी रहता है। पर वह सुख कृत्रिम होता है आत्मिक नहीं इस लिए हमे समाज की वर्तमान व्यवस्था को बदलना होगा और भगवान महावीर के बताए मार्ग पर चलने के लिए मानव-जाति को अपनी भावनाएं बदलनी होगी। ऐसी भावनाएँ लाने के लिए भी प्रशास्ता स्थविरो और प्रशास्ताओ को ही सर्व प्रथम परि-श्रम करना पडेगा और शिक्षा प्रणाली मे परिवर्तन कर सुशिक्षा का प्रबन्ध करना होगा। इस काम मे सन्तो को अपना सरक्षण प्रदान करना आवश्यक है। मै समझता हूँ कि आज के सन्तो को पहले स्वयमेव ही प्रशास्ता स्थविर का कर्तव्य निभाना होगा। यदि सन्तो ने प्रशास्ता का कार्य करना प्रारम्भ नहीं किया तो शिक्षा का वर्त-

मान ढांचा मानव समाज को और भी दूषित कर डालेगा और दूषित समाज के प्रशास्ता तथा प्रशास्ता स्थविर जब तक स्वय ज्ञान का भंडार न हों, स्वयं मुक्ति मार्ग के अनुयायी नहीं हो, वे आने वाली सन्तानों को सन्मार्ग पर ले जाकर समाज में परिवर्तन लाने का कार्य नहीं कर सकते ।

कुल-धर्म

यदि आप ग्राम धर्म अथवा नगर धर्म का पालन करते है, राष्ट्र धर्म के पालन करने मे भी किसी से पीछे नहीं और व्रत (पाखण्ड) को समझ कर आप उसे पूर्ण-रूपेण अपने जीवन मे अपनाते है, आप अपने कुल के प्रति अपने धर्म (कर्तव्य) से अनभिज्ञ है तो फिर सब कुछ होते हुए भी आप अपने कुल के कलक है। मान लीजिए कोई उदार हृदय का व्यक्ति हो, दूसरों की सहायता मे अपना तन, मन,धन लगाता हो, परन्तु उसका कुल पतित अवस्था मे हो। तो क्या लोग उसे आदर की दृष्टी देखेंगे ? लोगो की बात छोडिए मै पूछता हूँ कि ऐसी दशा में क्या उसकी सराहना की जानी चाहिए ?

"नहीं ?"

क्योंकि उसने अपने कुल के प्रति अपने धर्म का पालन नही किया। सर्वज्ञदेव ने जितने धर्म बताए है यदि उनमे से किसी एक का भी हम पालन नहीं करते तो हमारी आत्मा पर उतना ही आवरण रह जाता है, उतना ही पाप हमारे सिर पर मढा जाता है। अन्य धर्मों का पालन करके कुल धर्म का पालन न करने से हमारी दशा उस मेहतर की भाति ही होती है जो सारे नगर की गन्दगी को तो साफ़ करता फिरता है पर स्वयं उसके घर में

गन्दगी का ढेर लगा रहता है।

मैने तृतीय सोपान, मे पाखण्ड (व्रत) धर्म की व्याख्या की है, उसमें आपको सुव्रती बनने की शिक्षा दी गई है और मैने यह भी समझाने की चेष्टा की है कि व्रत धर्म का पालन करना क्यों आवश्यक है, परन्तु यदि आप व्रतधारी होते हुए अपने कुल की मान-मर्यादा की रक्षा करने मे, कुल को दुर्गुणों से रहित करने मे प्रयत्नशील नहीं है तो फिर आप ग्राम, नगर और राष्ट्र के एक प्रमुख अंग के प्रति उदासीन है। और यदि सभी अपने-अपने कुल के प्रति उदासीनता बरतने लगे तो इसका परिणाम यह निकलेगा कि सभी कुल पतित हो जायेंगे, कोई अपने कुल की उन्नति की चिन्ता नहीं करेगा तो ग्राम मे भी तो कुछ कुल ही बसते है, फिर सारा ग्राम ही उन्नति नहीं करेगा। अथवा यह होगा कि एक व्यक्ति दूसरे के कुल की सेवा करना धर्म समझता रहेगा और दूसरा पहले वाले के कुल की सेवा करेगा अर्थात् तू मेरे घर की सफाई कर और मैं तेरे घर की करूं। यह बात तो बडी हास्यास्पद है।

कुल धर्म उसको कहते है। जिसके पालन से कुल पतित अवस्था से निकल कर उच्च अवस्था को प्राप्त हो, कुल मे शाति और सुख रहे, कुल की मान मर्यादा की रक्षा हो और मान को चार चाद लगे। और कुल दुर्गुणों से निकल कर सदगुणो मे स्थापित हो।

कुल दो प्रकार के होते है। आर्य कुल अनार्य कुल।

आर्य का अर्थ है श्रेष्ठ अत आर्य कुल का अर्थ श्रेष्ठ कुल। श्रेष्ठ कुल उसे कहा जाता है जिसके सदस्य व्रत धर्म का पालन करते हों। सर्वज्ञदेव के बनाये नियमो का उल्लघन न करे और अहिंसा के सिद्धान्त पर दृढ़ता से विश्वास करते है। सदाचारी

है, पशुओ से प्रेम करते है, जीव-हत्या को पाप समझते है, करुणा और दया को उन्होंने अपना स्वभाव बना लिया है, अपने किसी कार्य से भी दूसरे का अहित नहीं करते और जो गुणी मुनियो तथा विद्वानों का आदर सत्कार करते है। जिन कुल मे ऐसे सम्यक्त्ववादी और सुव्रती व्यक्ति हो वह कुल आर्य कुल कहलाता है और अनार्य कुल उस कुल को कहते हैं जहा सदैव मनमुटाव चलता है, घृणा और द्वेष जिसके सदस्यो के स्वभाव मे शामिल हो गए है। जिस कुल वासी पशुवध करते है, भ्रष्ट-भोजन करते है, वासना मे लिप्त है, अधर्म के अनुयायी हैं, गणि मुनियो और विद्वानो का उपहास करते है, वह कुल श्रेष्ठ नहीं इसलिए वह अनार्य कुल कहलाता है।

जिस ग्राम, नगर अथवा राष्ट्र मे आर्य कुल होंगे वह ग्राम, नगर अथवा राष्ट्र उन्नति के शिखर पर पहुंचे विना न रहेगा। परन्तु जिस देश मे अनार्य कुलो की बहुसख्या होगी वह उन्नति का स्वप्न भी नहीं देख सकता।

कुल धर्म के भी दो भेद है। एक लौकिक दूसरा लोकोत्तर। जिस धर्म से कुल की उन्नति हो, दुर्गुण मिटाकर सद्गुणों की ओर अग्रसर होते रहने के प्रयत्न लगातार होते हो, दुर्व्यवस्था मिटकर सुव्यवस्था स्थापित हो, और अन्य परिवारों के साथ सुख शाति पूर्वक रहने की प्रेरणा मिले वह लौकिक अथवा व्यवहारिक है और जिस धर्म के पालन से गुरु जनो की सेवा मे रह कर गुरुजन की सेवा करना और आत्मिक ज्ञान प्राप्त करने की प्रेरणा मिलती हो वह कुल का लोकोत्तर धर्म है।

कुल केवल गृहस्थी के नहीं होते, बल्कि सन्तो के भी होते है। गृहस्थियो के कुल तो वह होते है जिसमे व्यक्ति जन्म लेता है। माता-पिता का कुल ही सन्तान का कुल होता है। साधुओं का

कुल गुरु के आधार पर चलता है। एक गुरु के जितने शिष्य होते हैं उन सब का कुल एक ही चलता है। शास्त्र में कहा गया है कि —

जइ वि य पुव्वम मत्तं, छिन्न, माइ हि ववर माइ सु आप रिया इममत्त, तहा वि ममायए पच्छा अर्थात—साधुओं ने दीक्षा लेते समय, गृहवास के माता-पिता एवं स्त्री पुत्र आदि का ममत्वभाव छोड़ दिया है, तथापि दीक्षा के पश्चात आचार्य आदि का प्रेम-भाव उत्पन्न हो जाता है।

चूंकि ममत्वभाव ही कुल को सूत्र में बांधे रहने का कारण होता है और दीक्षा के उपरान्त साधुओं में भी एक ममत्व-भाव का प्रादुर्भाव होता है। इसलिए गुरु के नाम पर शिष्यों के बीच प्रेम-भाव उत्पन्न होना स्वाभिक ही है। एकान्त-भाव के बलशाली होने पर यदि ममत्व कम भी हो जाय तो भी गुरु के नाम पर तो किसी सन्त का कुल सम्बन्ध रहता ही है और लोग गुरु के नाम के कुल से ही साधुओं के आपसी सम्बन्धों को कोई संज्ञा देते हैं कि उक्त साधु कुल का है अर्थात् उक्त साधु उक्त शिष्य का है। इस प्रकार गुरुओं और आचार्यों के नाम पर कुल बन जाते हैं।

यदि कोई व्यक्ति मोह को बिल्कुल त्याग दे तो भी वह अपने नाम को अपने कुल से अलग नहीं कर सकता। मान लीजिए कोई व्यक्ति किसी कुल विशेष का है और वह अपने कुल से कोई मोह नहीं रखता फिर भी जब वह कोई कार्य करेगा। लोग जरूर कहेंगे कि उस कुल के व्यक्ति ने ऐसा किया।

इसलिए कुल के प्रति मनुष्य का कुछ धर्म होता ही है। और यदि उस धर्म से व्यक्ति गिरता है तो उसको उतना ही पाप लगता है जितना कि अन्य किसी धर्म से गिरने पर।

गृहस्थी का कुल उसके पूर्वजों के रक्त के सम्बन्ध का नाम

है। जो लोग सब गृहस्थ और सदाचारी होते है, जिन्हे अपने रक्त के सम्बन्ध का कुछ ज्ञान होता है और अपने कुल के सम्बन्ध मे अपना धर्म समझते हैं वे। प्राण भले ही चले जाय अपने कुल की मर्यादा को नहीं त्यागते। क्योकि उनकी धमनियों मे भी वही रक्त दौडता है जो उनके पूर्वजो की रगो मे दौडता था। इसलिए वे अपने रक्त की लाज रखना अपना धर्म समझते है। उदाहरण के लिये आपने सुना होगा, कि—

रघुकुल रीति सदा चली आई,
प्राण जाय पर वचन न जाई।

चौपाई के इस पद्य मे रघुकुल की रीति का वर्णन किया गया है। इसका अर्थ है कि कुल की अपनी रीति होती हैं, ऐसी रीति जो कुल की ख्याति का कारण बनती है, और कुल की सुसन्ताने उस रीति को जीवित रखने के लिए अपने प्राणों तक की बलि दे देती है। आपने कितने ही ऐसे दृष्टात सुने होंगे कि दो कुलों मे आपनी मन मुटाव चलता हैं और वह पीढियो तक चलता है क्यो ?

कारण स्पष्ट है कि कुल की लाज रखना अच्छी सन्तान अपना धर्म मानती है और रक्त जो उनकी रगो मे दौड रहा है उन्हे अपने पूर्वजो का बदला लेने के लिए उकसाता रहता है। वास्तव मे वैमनस्य मानवीय सिद्धान्तो को दूपित करता है, पर इस बात के कहने का अर्थ है कि कुल धर्म एक स्वाभाविक धर्म है। जो श्रेष्ट कुल होते हैं उनकी सन्ताने अपने पूर्वजो के सद्गुणो को अपना आदर्श बना लेती है।

एक सवार घोडी पर चढा जा रहा था। घोडी मे स्वामी-भक्ति कूट-कूट कर भरी थी, उसने अपने स्वामी के प्राणों की रक्षा के लिये अपने प्राणो तक की बाजी लगाने मे गर्व का अनुभव

किया था। उन दिनो घोडी गर्भवती थी। पर सवार एड़ लगाता हुआ उसे भागते रहने को मजबूर कर रहा था उसकी एडी की चोट गर्भ के उसके बच्चे तक पहुँच रही थी।

घोडी ने एक नीले बच्चे को जन्म दिया। बच्चा अपनी मां पर हुए अत्याचार को भूला नहीं था उसे याद था कि उसकी मां को गर्भवती होने की दशा मे भी एड लगाई गई थीं जिसकी चोट उस तक पहुँची थी। इस लिये घोडी के बच्चे ने अपनी मा पर हुए अन्याय का बदला लेने का निश्चय कर लिया था।

बच्चा जब सवारी के योग्य हो गया। उस व्यक्ति ने उस नीले घोडे पर भी सवारी करनी आरम्भ कर दी। पर जब वह घोड़े पर चढता, घोडे को मा पर हुआ अन्याय याद आ जाता।

एक वार वह व्यक्ति उसी नीले घोड़े पर सवार होकर युद्ध मे गया। नीले घोडे ने सोचा कि बदला लेने का यह सुन्दर अवसर है। वह सवार को शत्रुओ के घेरे मे ले गया। सवार शत्रुओं के घेरे को तोडकर बाहर निकलने के प्रयत्न मे उसे किसी ओर मोड़ता तो घोडा उल्टी ओर मुडकर फिर घेरे मे ले जाता। आखिर शत्रुओ ने सवार पर प्रहार करने आरम्भ कर दिये। किन्तु उसी समय जब घोडे ने अनुभव किया कि शत्रु उसके स्वामी की हत्या कर डालेगे और वह समय निकट है जब उसका मृत शरीर नीचे लुढक पडेगा। घोडे के अन्दर उसके कुल की आन और मर्यादा जाग उठी। उसने सोचा कि यदि उसका स्वामी शत्रुओ का घेरा न तोड पाया तो देखने वाले कहेगे कि घोडा अच्छी नस्ल का नहीं था। और उसके कुल की मर्यादा धूल मे मिल जायेगी। क्योकि उसके पूर्वजो का स्वामी तो कभी शत्रुओं के घेरे मे फँस कर मारा नहीं गया उसके पूर्वजो ने तो अपने प्राणों पर खेलकर अपने स्वामियो की रक्षा की है। कुलधर्म

का विचार आता था कि नीले घोड़े ने न जाने कहाँ से इतनी चचलता आ गई कि आन की आन में अपने सवार को लेकर वह शत्रुओं के घेरे को तोड़कर बाहर आ गया।

यह है कुल मर्यादा की रक्षा का उत्साह इसी प्रकार के कितने दृष्टांत आपको मानव जाति में मिलेंगे।

एक और ऐतिहासिक दृष्टांत सुनिये।

जम्मू के राजा को अंग्रेजों ने बुलाकर अपनी सेना से घिरवा दिया क्योंकि वे समझते थे कि यदि जम्मू के राजा को बन्दी बना लिया जाय अथवा मार डाला जाय तो जम्मू पर अधिकार जमाया जा सकता है।

जब राजा को शत्रुओं ने चारों ओर से घेर लिया तो राजा को बड़ी चिन्ता हुई। उसने समझ लिया कि अब प्राण नहीं बचेंगे और जम्मू के राज्य पर अंग्रेजों की पताका फहरायेगी। उसका राज्य अंग्रेजों का दास बन जायेगा। चिन्ता के मारे उस का बुरा हाल था। बचाव का कोई रास्ता ही दिखाई नहीं देता था।

अन्त में राजा ने घोड़े पर प्रेम से हाथ फेरकर कहा कि 'यहाँ तेरे सिवाय मेरा कोई सहायक नहीं है। तू मेरे पिता की सवारी में रहा तो हमारे राज्य पर किसी का अधिकार न हो सका। तू मेरे पिता के स्थान पर आज तू है। जो मेरे प्राण बचा सकता है। हे! घोड़े मैं तुझ से प्रार्थना करता हूँ कि मेरी रक्षा कर।"

चारों ओर से शत्रुओं ने घेर लिया था और निकल भागने का कोई रास्ता ही नहीं था। पर घोड़े की रग-रग में नव-शक्ति का संचार हुआ। और वह भागने लगा शत्रुओं की दीवार को फाड़ता हुआ घेरे से बाहर निकला। जी तोड़ कर भागा. इतनी तीव्र गति से भागा कि शत्रु उसका पीछा भी न कर पाये। और

अन्त मे राजा को उनके महल मे पहुंचा दिया।

राजा घोड़े से उतरा और सब से पहले उसने उसकी काठी उतरवा कर स्वय उसकी सेवा की ठडा करने पर अत्युत्तम खूराक दी और नौकरों को आदेश दिया कि आज से यह हमारा बाप है। इसकी ऐसी सेवा करो जैसे राजा के पिता की जाती है। आज से इस पर कोई सवारी नहीं करेगा। राजा की मृत्यु के उपरान्त भी उनकी सन्तान ने उस घोड़े की सेवा की और उस घोड़े के कुल के घोड़ों की जम्मू के राज-दरबार मे बड़ी प्रशसा की जाती रही।

यह है कुल की मर्यादा और मर्यादा की स्थापना के लिए प्राणों पर खेल जाने का दृष्टात। मैंने ज्यों हि कुल धर्म की व्याख्या की इसी बात पर जोर दिया है कि कुल का प्रत्येक व्यक्ति कुल की मर्यादा का रक्षक होता है। कुल की रक्षा के लिए ही मानव मे वह उत्साह आ जाता है जो कदाचित अन्य किसी नाम पर जागृत न हो।

लौकिक कुल धर्म के पालने वाले कितनी ही विपदाए पड़ने पर भी अपने पूर्वजों की नीति और उनके सद्व्यवहारों को नहीं छोड़ते। चाहे उन्हें दर-दर की ठोकरे खानी पड़े, चाहे दाने-दाने का मोहताज होना पड़े और भले ही उन्हे अपने प्राणों की आहुती भी देनी पड़े वे अपने पूर्वजो के पदचिन्हो पर चलते ही रहते हैं।

भारत मे एक समय था जब लोग परिवार के अनुशासन को ही अन्तिम अनुशासन मानते थे। प्रत्येक परिवार का स्थविर एक होता था और परिवार के सदस्य सभी मिलकर परिवार के लिए परिश्रम करते थे। जो जितना परिश्रम कर सके करता था और परिवार द्वारा उपार्जित सारा धन परिवार के स्थविर के आधीन रहता था। स्थविर सभी को उनकी आवश्यकतानुसार वस्तुएं

वितरित कर देता था। सभी के परिश्रम का फल एक स्थान पर एकत्रित करके आवश्यकतानुसार ले लेना यह उस समय की एक मात्र व्यवस्था थी। और उन दिनों न कोई शासन विधान था और न किसी का कानून ही चलता था। यदि कोई विधान अथवा अधि नियम थे भी तो वे थे परिवार के स्थविर के आदेश और कुल की रीति। पूर्वजों ने जो अपनी नीति निश्चित की उसे उनकी सन्तानें अपने लिए दैवि विधान के अनुसार मानती थीं वही कुल धर्म था और वही कुल विधान था। धीरे-धीरे सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन हुआ और मानव के सोचने-विचारने के तरीके भी बदल गये। रीति-रिवाजों में भी परिवर्तन आ गया। पर कुल धर्म जो रक्त के सम्बन्ध से उत्पन्न हुआ था, जो कुल की उन्नति के लिए आवश्यक था। आज तक जीवित है। परन्तु धीरे-धीरे उसका प्रभाव हमारे समाज से लोप होता जा रहा है। क्योंकि धर्म ज्ञान नहीं रहा। शास्त्रों का अध्ययन नहीं किया जाता और न धर्मों के पालन पर ही लोग ध्यान देते है। पर कुल धर्म एक ऐसा धर्म है जिसकी शिक्षा देने की आवश्यकता नहीं है वरन स्वाभाविक तौर पर ही लोगो के अन्दर कुल धर्म के पालन की भावना होती है।

धर्म के अनुयायियों का कर्तव्य है कि वे इस भावना को कुण्ठित न होने दे। क्योंकि हमारा कुल धर्म पुरातन संस्कृति का प्राण है। यदि कुल धर्म मिट गया तो हमारे पास रह ही क्या जायेगा।

परन्तु मैं इस बात से सावधान कर देना चाहता हूँ कि ऐसी भी कुरीतियां हैं जो कुल रीति के नाम से प्रचलित हैं। जैसे कोई कहने लगे कि पुत्र के विवाह में हाथी घोड़ो पर बरात आनी चाहिए क्योंकि यह हमारी कुल रीति है। तो यह बात तो

कुल धर्म नहीं कही जा सकती। यह मर्यादा न होकर एक कुरीति है। कुरीतियों का पालन करना कुल धर्म नहीं सिखाता।

मैं आपको स्मरण कराना चाहता हूँ कि कुल का एक भी व्यक्ति अपने कुल का नाम उज्ज्वल कर देता है। जैसे पं० जवाहर लाल नेहरू ने नेहरू कुल को अमर कर दिया है और आज उस कुल का प्रत्येक प्राणी अपने नाम के साथ 'नेहरू' शब्द लिखने पर गर्व करता है। और लोग उसे आदर की दृष्टि से भी देखते है। मोहनदास करमचन्द गाधी ने 'गाधी' के नाम को अपने गुणो से ससार भर मे चमका दिया। आज 'गाधी' का नाम जिसके साथ लिखा होता है तुरन्त मोहनदास करमचन्द गाधी की याद आ जाती है। और दूसरी ओर मानसिंह के कुल के लोग आज लज्जा अनुभव करते है जब उनके सामने उनके कुल के मानसिंह राजा का नाम लेकर पुराना इतिहास याद दिला देता है। सरदार भगतसिंह ने देश के लिए बलिदान किया, उसके कुल से उसके बलिदान का भला क्या सम्बन्ध है, फिर भी आज केवल भगतसिंह के नाम पर उसके परिवार वालो को आदर की दृष्टि से देखा जाता है। इसके पीछे यह भावना है कि हमारे सामने उसके कुल का जो व्यक्ति है उसकी रगो मे भी वही रक्त है जो वीर भगतसिंह की रगो मे था। इसका स्पष्ट अर्थ है कि कुल के एक व्यक्ति के कारनामे भी सारे कुल को उज्ज्वल अथवा कलकित कर सकते है। इसलिए यह सोच समझ कर कार्य कीजिए कि आपके कार्यों को केवल आपके जीवन पर ही प्रभाव नहीं पड़ता, बल्कि आपके पूर्वजो के नाम पर और आपकी भावी सन्तानों के जीवन और विचारो पर भी उनका प्रभाव पड सकता

है। यदि आप कुल धर्म का पालन करते है तो अपने पूर्वजो, स्वय अपने और सन्तानो के प्रति महत्त्वपूर्ण कर्तव्य का पालन करते है।

मै जब यह देखता हूँ कि कुछ लोग सभ्यता और सस्कृति की बाते करते है और पुरातन संस्कृति के लिए रोना रोते है, तो मुझे आश्चर्य होता है। आश्चर्य इस कारण होता है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने कुल धर्म का पालन करना तो आवश्यक मानता नहीं और पुरातन सस्कृति के प्रति इतना प्रेम और आस्था प्रगट करता है। यह दोनो बात साथ-साथ नहीं चल सकतीं। हमारी सस्कृति का आधार अहिंसा और प्रेम है। कुल धर्म अहिसा और प्रेम के आधार पर ही निभाया जाता है। हम यदि अपने कुल मे ही इन सिद्धान्तो का पालन नहीं करते तो अन्य उन लोगो के साथ अपने व्यवहार मे अहिसा और प्रेम को कैसे ला सकते है, जिन से हमारा रक्त का सम्बन्ध न होकर केवल मानवीय समानता का सम्बन्ध है। वे लोग जो पुरातन सभ्यता और सस्कृति मे अपना विश्वास प्रगट करते है, पहले अपने कुल धर्म का पालन करें, फिर पुरातन सस्कृति की वकालत करें तो कुछ प्रभाव भी होगा और सस्कृति की रक्षा भी ऐसे ही हो सकती है।

परन्तु मैं तो स्पष्टतया कह सकता हूँ कि आज कुल धर्म मिटता जा रहा है। आज तो एक परिवार के लोग एक साथ रह भी नहीं सकते। भाई-भाई के रक्त का प्यासा हो उठता है। बाप-बेटे मे झगडा होता है। भाई-बहन एक-दूसरे को शत्रु समझते है। अपने पूर्वजो को मूर्ख कह कर पुकारने मे भी लोग नही लजाते, और अपने स्वार्थो के लिए कुल की मर्यादा तो क्या कुल लक्ष्मी

तक की अस्मत बेचने मे भी नही हिचकते। ऐसी ऐसी घटनाए सुनने मे आती है कि यह विश्वास करने को जी नहीं चाहता कि भारत मे जहा महावीर भगवान ने जन्म लिया, जो महात्मा गाधी और गौतम बुद्ध की जन्म भूमि है, जहा २४ तीर्थंकर अवतरित हुए, उस देश मे ऐसी घटनाए भी घट सकती है।

आप दैनिक पत्र पढते है, कितनी ही बार आपको ऐसे ऐसे समाचार पढने को मिलते होगे जिन मे आप अचरज मे पड जाते होगे। एक मा ने अपने पुत्र को विष दे दिया, एक पुत्र ने अपनी मा की हत्या कर दी, एक बहन को भाई ने मार डाला, ऐसी ही ऐसी कितनी ही खबरे मिलती है और अब तो दैनिक पत्र पढने वालों के लिए दैनिक बात हो गई है।

ऐसी दशा मे कुल धर्म कहा रह गया है। कितने ही ऐसे लोग है जिन के पूर्वज व्रतधारी थे और वे स्वय धर्म ज्ञान के पास भी नहीं फटकते। सद् गृहस्थों मे दुराचारी सन्ताने निकल रही है। कुल की प्रतिष्ठा की किसे चिन्ता है, यह बात कितनी दुखदायी है।

मैं आप से स्पष्टतया कहता हू कि पहले अपने कुल से तो प्रेम करो, पहले न्याय कुल के प्रति हो, फिर दूसरों के साथ प्रेम और न्याय कर सकते हो।

हो सकता है आप लोगो मे से कितने ही इसे बीते दिनों की घिसी पिसाई बाते समझे, पर आप यह न भूले कि जैन धर्म में वर्णित धर्मो को किसी न किसी रूप मे भौतिकवादी भी मानते हैं। वे लोग जो अपने को द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी कहते है और मार्क्स के दर्शन शास्त्र के अनुयायी है सारे विश्व को ही एक कुल मे परिवर्तित करने के लिए सघर्ष रत हैं।

आप स्मरण रखिए कि वह समय नकट है, जब इतिहास अपने को दोहरायेगा और आप मे से वे जो आज इन बातों को घिसी-घिसाई बातें समझते है, इसी पुरानी बोतल पर लेबिल लगा कर प्रयोग करेंगे।

कुल धर्म हमारी हमारे पूर्वजों और हमारी सन्तानो की उन्नति का एक मात्र उपाय है। हमें अपने कुल को गौरवशाली बनाने मे जुट जाना चाहिए।

कुल स्थविर

मैं कुल धर्म की व्याख्या कर चुका, अब कुल स्थविर पर प्रकाश डालूंगा।

प्रत्येक कुल की उन्नति के लिए एक ऐसे स्थविर की आवश्यकता होती है जो कुल के समस्त सदस्यों को उनके धर्म का ज्ञान कराता हुआ सुख के मार्ग पर ले जा सके। आपस में सहयोग बनाए रखने के लिए उचित वातावरण बनाने का प्रयत्न करे। कुल मे सुव्यवस्था रखे और अधर्मों तथा दुर्गुणों को कुल मे प्रवेश न करने दे। जो व्यक्ति कुल मे शान्ति बनाए रखने और सभी को प्रेम की डोर मे बांधे रखकर कुल की उन्नति के लिए योजनाएं बना कर कुल के सभी व्यक्तियो से उस के आधीन कार्य करा सकने की क्षमता रखता है, वही कुल स्थविर है।

कुल स्थविर दो प्रकार के होते हैं एक लौकिक कुल स्थविर और दूसरा लोकोत्तर कुल स्थविर।

लौकिक कुल स्थविर अपने कुल के हित तथा अहित को भली-भांति जानता है, वह अपने प्राण दे सकता है पर अपने कुल को दाग नहीं लगने दे सकता। लौकिक कुल स्थविर जानता है कि किस नीति अथवा रीति से कुल का भविष्य उज्ज्वल हो सकता है और किस से कुल का पतन हो सकता है।

कुल हमारे समाज की पहली इकाई है, ग्राम से भी छोटी इकाई। जैसा कि मै पहले भी कह चुका हूँ, कई कुल मिलकर ही ग्राम बनता है और ग्राम तथा नगर मिलकर प्रान्त तथा राष्ट्र बनता है। इसलिए कुल राष्ट्र की सब से छोटी और बुनियादी इकाई हुई। जो लोग समाज के क्रमिक विकास के इतिहास से परिचित है उन्हे मालूम होगा कि एक समय था जब ससार मे राज्य अथवा सरकार नाम की कोई सस्था नहीं थी। बल्कि इस लम्बी-चौडी धरती पर जितने भी प्राणी थे वे जहा बसते थे वही उन का देश था। देश उसी सीमा तक मानते थे वे जहा तक उनके घर थे और पशु चरते व खेती आदि करते थे। उस सीमा से बाहर उनके लिए परदेश था। जिसमे प्रवेश का भी कभी-कभी उन्हे अधिकार नहीं होता था। एक कुल अपने जीवन यापन के लिए जो कुछ प्राप्त करता था वह अपने परिश्रम से, और अपने परिवार की रक्षा का भार भी उसी परिवार के लोगो के कधो पर था। वे अपने कुल के लिए कमाने वाले भी थे और सैनिक भी। उन दिनो जो परिवार अधिक बलशाली होते थे वे दूसरे परिवारो को युद्ध मे पछाड कर उनके पशुओ पर अधिकार कर लेते थे और धीरे-धीरे वह भी समय आ गया जब एक परिवार दूसरे परिवार को युद्ध मे परास्त करके उसके व्यक्तियो को बन्दी बना लेता था और उन से दासो के रूप मे काम लेता था।

उन दिनो कुल स्थविर ही एकमात्र राजा, सरक्षक और सेनानी होता था। कुल स्थविर का ही आदेश कानून था और उसका उल्लघन करने पर कुल स्थविर ही दण्ड देता था। अर्थात् कुल स्थविर ही दण्डाधिकारी भी था।

दिन बीतते गए और युग परिवर्तन के साथ-साथ परिस्थि-

तियों और लोगों के आपसी सम्बन्धों में भी परिवर्तन आया। राज्य बने, सरकारों का प्रादुर्भाव हुआ, पुलिस, फौज और कानून बने। सहस्रों कुल एक विधान के आधीन शासित हो गए। पर कुल के शासन को कोई समाप्त नहीं कर पाया। कुल के लिए फिर भी एक स्थविर की आवश्यकता रही।

भारत के इतिहास में मुगल साम्राज्य से पूर्व के काल की जो स्थिति दर्शाई गई है उसमें कुल व्यवस्था का पूर्ण विवरण मिलता है। बल्कि मुसलमानी शासकों का युग भी भारत पर कुछ विशेष कुलों के शासन का ही युग रहा है। कुछ राजवश रहे हैं जिन्होंने सारे राष्ट्र पर शासन किया है। जिस कुल की मर्यादा की रक्षा करने वाली सन्तानें नहीं रहीं वहीं उसी कुल का शासन समाप्त हो गया। एकतन्त्रवाद के युग में कुछ कुल ही शासनारूढ रहे हैं। और जिस कुल के स्थविर बुद्धिमान् तथा वीर हुए वही कुल वर्षों भारत पर शासन करता रहा। परन्तु जिस कुल के स्थविर अयोग्य निकले वही कुल शासन की बागडोर अपने हाथों से खो बैठा।

स्वार्थों की पराकाष्ठा हो जाने के बाद मनुष्य-मनुष्य में भेद भाव बढता गया और स्थिति यह आ गई कि कुल व्यवस्था नष्ट-भ्रष्ट हो गई। आज कुल व्यवस्था मृतप्राय है फिर भी कुछ कुल ऐसे अवश्य है जिन में कुल व्यवस्था है और जिनके कुल स्थविर अपने परिवार को एक जगह समेट कर उन्नति के पथ परले जा रहे हैं और यह सत्य सर्व विदित है कि जिस कुल का स्थविर अपने कुल की उन्नति के लिए उचित वातावरण बना सकता है, कुल के सदस्यों को एक साथ एक-दूसरे से जोड कर कार्य करा सकता है वही कुल उन्नति कर रहा है, उसकी सम्पत्ति बढ़ रही है और उसी कुल के व्यक्तियों को सुख चैन के साथ जीवन व्यतीत करने के साधन उपलब्ध है।

कुल स्थविर दीपक के समान होता है जो स्वयं जलता है और घर में प्रकाश रखता है। वह अपने कुल के दु खों के निवारणार्थ अपने को संकट में डाल सकता है पर कुल को दुखी नहीं देख सकता। कुल स्थविर ऐसी व्यवस्था करता है कि उसके रहते कुल का व्यक्ति चिन्तित न हो और उस पर किसी प्रकार का अन्याय न हो। कुल स्थविर एक प्रकार से कुल दीपक ही होता है। पर कुल दीपक बनना कोई आसान काम नहीं है। क्योंकि कुल दीपक को अपनी इच्छाओं का परित्याग करके अपने कुल के सदस्यों की इच्छाओं की पूर्ति का ध्यान रखना होता है। वह किसी भी बात पर परिवार में मनोमालिन्य नहीं उत्पन्न होने देता।

जिन दिनों मेवाड के राजपूत अपनी स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष कर रहे थे और मुगल साम्राज्य की सेनाएं राजपूतों की स्वतन्त्रता को हड़पती लूट-मार करती बढ़ रही थी, उन्हीं दिनों की बात है कि एक एक राजपूत परिवार राणा प्रताप का बडा सहयोगी था। कुल स्थविर एक ऐसा राजपूत था जिसकी तलवार कितने ही युद्धों में अपना लोहा मनवा चुकी थी। पर अब वह वृद्ध अवस्था में था। उसमें रण-भूमि में जाने की शक्ति नहीं रह गई थी, पर उसने अपने दो पुत्रों को महाराणा की सहायता के लिए भेज रखा था।

मुसलमानों की सेना ने जब उस क्षेत्र में आक्रमण किया तो उन्हें उस परिवार को तहस-नहस करने की सूझी। और उस परिवार पर आक्रमण कर दिया। घर के बाहर उस परिवार को मौत के घाट उतारने के लिए मुगल सेना खड़ी थी और अन्दर कुल स्थविर अपने कुल की रक्षा के लिए चिन्तित था वृद्धसिंह की भुजाओं में दौड़ते रक्त में एक बार फिर उबाल आया।

उसने अपने परिवार की स्त्रियों और बालकों से कहा कि वे

चोर दरवाजे से निकल जाये और एक जगह इसलिए आश्रय लें कि वे मुगलों से बदला ले सकें और मेवाड की स्वतन्त्रता के लिए लड़ सकें। स्वयं तलवार लेकर द्वार पर पहुँचा और मुगल सेना से जूझ पड़ा। अन्त मे उसे बन्दी बना लिया गया। उस से पूछा गया कि महाराणा प्रताप कहाँ है, उसका परिवार कहाँ है ? पर उसने गरज कर कहा कि तुम मेरे प्राण ले सकते हो किन्तु महाराणा प्रताप और मेरे परिवार का पता मुझ से नहीं लगा सकते। मुगल सेनाओं ने उस पर भयकर अत्याचार किए पर वह टस से मस न हुआ। अन्त मे उसे मुगल सम्राट के दरबार मे स्थान देने का लालच दिया गया। वह गरज के बोला "मेरे कुल ने सिंह की भाति जीना सीखा है, कुत्तों की तरह किसी के सामने दुम हिलाना नहीं। जब तक मेरे कुल का एक भी दीपक जगत मे रहेगा वह सिंह का ही जीवन व्यतीत करेगा।"

इसी समय उसके एक पुत्र को लेकर सेना वहाँ पहुँच गई। उसके उस पुत्र ने मुगलों की सेना की सहायता करने का वायदा किया था।

सेना अधिकारी ने वृद्ध राजपूत को ताना देते हुए कहा कि "क्या यह भी तुम्हारे ही कुल का दीपक है ?"

वृद्धसिंह कुछ सोच मे पड गया। उसका दिल रो पडा। पर उसने साहस से काम लिया और बोला "मै तो बूढा हो चुका हूँ, कदाचित् मेरा मानसिक सन्तुलन बिगड गया है। पुत्र ने जो किया वह सोच समझकर ही किया होगा।

मुगल सेना अधिकारी और राजपूत के पुत्र की बाछें खिल गई।

वृद्ध ने सेनाधिकारी से कहा कि मेरा पुत्र बहुत दिनों के बाद मिला है। आप मुझे इसे अपनी छाती से लगाकर प्यार करने

की आज्ञा दे दे।

सेनाधिकारी ने सोचा कि वृद्ध अब रास्ते पर आ गया है। हो सकता है पुत्र प्रेम उसे और भी ठीक करदे। इस लिए आज्ञा दे दी।

उसने आगे बढकर अपने पुत्र को सीने से लगाकर कान मे पूछा कि महाराणा प्रताप का पता बिना जागीर लिए तो नहीं बता दिया?

पुत्र ने कहा कि "नहीं, अभी नहीं बताया, मैं तो आपकी आज्ञा लेने यहाँ आया हूँ। आप कहे तो बता दूँ।" पुत्र का इतना कहना था कि वृद्ध राजपूत ने छोटी खड्ग अपने पुत्र के सीने के पार करदी।

मुगल सेनाधिकारी उसकी रक्षा के लिए दौडा पर उसे न बचाया जा सका। और उसी खड्ग से वृद्ध ने आत्म-हत्या कर ली। मरते समय वह वृद्ध राजपूत बोला' हमारे कुल के किसी भी सदस्य का मरना मजूर है पर दासता स्वीकार नहीं।

यह था कुल स्थविर की कुल-मर्यादा की रक्षा का एक उदाहरण।

कुल स्थविर अपने कुल की सन्तानो को ऐसी शिक्षा दिया करता है जिससे उस कुल का भविष्य उज्ज्वल हो। वह अपनी सन्तानो को सदाचार की शिक्षा देता है। और इस बात का ध्यान रखता है कि उसकी सन्तान मे कोई ऐसी बात न आने पाये जो उनके पतन का कारण हो। उसे अपने कुल के भविष्य की बहुत चिन्ता होती है।

एक कुल स्थविर को मदिरा-पान को आदत पड़ गई जो छुटाए नहीं छुटती थी। उसकी पत्नी बारम्बार समझाती थी पर वह शराब पीना नहीं छोडता था। अन्त मे उसे एक तरकीब सूझी।

वह कुल स्थविर मदिरापान घर से बाहर करता था ताकि उस के परिवार में मदिरापान की आदत न पड़े। एक दिन कुल स्थविर की पत्नी ने शराब की एक खाली बोतल में लाल रंग का पानी भर कर रख लिया। जब कुल स्थविर मदिरा पान के लिए बाहर जाने लगा, उसकी पत्नी ने रोककर कहा, कहाँ चले ?

वह कुछ न बोला ?

पत्नी ने तुरन्त कहा, "ओह ! मैं समझ गई। पर आज तो आपको घर से बाहर जाने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। आप कमरे में बैठिए, मैं आपको आज एक चीज ऐसी दिखलाऊँगी कि आप खुशी से झूम उठेंगे।"

कुल स्थविर को बड़ा आश्चर्य हुआ और सोचने लगा कि वह कौन-सी ऐसी चीज है जिसे देखकर मैं खुशी से झूम उठूँगा।

वह कमरे में जा बैठा और पत्नी वह बोतल और एक गिलास ले आई। सामने बोतल और गिलास देखकर उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने पूछा कि आज घर में यह बोतल कैसे आई ?

पत्नी ने हँसकर कहा कि आज आपका सुपुत्र ले आया था।

कुल स्थविर को बड़ा क्रोध आया और उसने गरज कर पूछा, "कहाँ है वह बदमाश" ?

पत्नी ने कहा, "इतना क्रोध क्यों करते हैं आप ? उससे क्या भूल हुई ?"

"वह शराब भी पीने लगा है, यह क्या कम भूल है ?"

उसकी पत्नी ने कहा कि "यह भूल तो नहीं, यह तो वह अपने पिता की नकल कर रहा है।"

फिर क्या था क्रोध में आकर उसने बोतल फर्श पर दे मारी और शपथ ली कि "वह कभी मदिरा-पान नहीं करेगा, क्योंकि वह अपनी सन्तान में कोई दुर्व्यसन नहीं देख सकता।"

उसने वास्तव मे मदिरा पान की आदत छोड़ दी। जब आदत छूट गई तो पत्नी ने उसे बताया कि उस बोतल मे शराब नहीं वरन लाल पानी था।

कुल स्थविर ने कहा कि प्रिये, तुम ही कुल स्थविर बनने लायक हो जिसने अपनी बुद्धिमत्ता से मेरा भी दुर्व्यसन छुडा दिया और हमारी सन्तानो का भविष्य भी उज्ज्वल बना दिया।

कुल स्थविर अपने परिवार के सभी सदस्यों से समान स्नेह करता है। वह पक्षपात से बचता है। जिस कुल का स्थविर पक्ष-पात मे फस जाता है, वह कुल वैमनस्य एव फूट का घर बन जाता है’

आज कल देखा यही गया है कि कुल स्थविर किसी को प्यार करते है तो किसी से घृणा। इसलिए परिवार मे झगडे उत्पन्न हो जाते है, जिसके परिणाम स्वरूप परिवार उन्नति नहीं कर पाता। आजकल तो बाप अपने बेटो के साथ पक्षपात करते देखे जाते यह कुल-धर्म के अनुकूल है।

स्मरण रखिये, जिस बात के करने से कुल मर्यादा को ठेस पहुँचती हो, जिस कार्य से कुल की उन्नति रुकती है, वह कुल-धर्म के प्रतिकूल है और वही कार्य कुल स्थविर नहीं करता।

※ षष्ठ सोपान ※

गण धर्म

आज हम लोग एक गणतन्त्र के नागरिक है। और हमारा देश २६ जनवरी सन् १९५० ई० को गणतन्त्र बना था। इससे पूर्व हम एक उपनिवेश के नागरिक थे। नवविधान के आधीन उपनिवेश गणतन्त्र घोषित हुआ। क्या अन्तर पडा इस बात मे ?

अन्तर स्पष्ट है कि सन् १९३५ के एक्ट के आधीन हमे अपनी विधान सभा तो चुनने का अधिकार था पर हमारी विधान सभाएँ गवर्नर और गवर्नर जनरल के आधीन थीं और गवर्नर तथा गवर्नर जनरल ब्रिटेन के राज्य सिंहासन के प्रतिनिधि थे। इस प्रकार हम अपने देश के भाग्य का निर्णय करने के लिए स्वतन्त्र नहीं थे। बल्कि एक विशेष परिधि के अन्दर ही हमारी विधान सभाओ आदि को कोई निर्णय करने का अधिकार था नव विधान के आधीन हमारा देश गणतन्त्र बनने के उपरान्त पूर्णतया स्वतन्त्र हुआ। हमे अधिकार मिला कि हम अपने देश की शासन व्यवस्था जैसी चाहे बना सकते है। हम जिसे चाहे अपना प्रतिनिधि चुनकर शासन की बागडोर सौंप सकते है। और चुनने का अधिकार दिया गया सारे राष्ट्र के हाथ मे। २१ वर्ष या इससे अधिक आयु के प्रत्येक भारतीय को अपने शासन के

स्वामित्व का भागीदार बना दिया गया। सत्ता समस्त जनता की बनी और किसी एक व्यक्ति को राज्य सिंहासन न सौंप कर सारे देश को सौंपा गया। पहले ब्रिटेन की रानी अपने प्रतिनिधि भारत की शासन व्यवस्था पर कन्ट्रोल रखने को भेजती थी और नया विधान लागू होने पर ब्रिटेन की रानी का अधिकार भारत वासियों के हाथ में आया इसलिए भारत एक गणतन्त्री राष्ट्र बन गया। गण का शाब्दिक अर्थ है समूह। इसलिए गणतन्त्र का अर्थ हुआ जनता के समूह का शासन।

शास्त्रों में गण के प्रति व्यक्ति के कर्तव्यों को दस धर्मों में स्थान देकर यह आदेश दिया गया है कि जहां व्यक्ति अपने ग्राम अथवा नगर, राष्ट्र, व्रत और कुल के प्रति अपने धर्म का पालन करे, वहीं यह भी आवश्यक है कि वह गणतन्त्र के प्रति भी अपना धर्म निभाए। 'गण' धर्म के आधीन हमारे ऊपर अपने गण-तन्त्र के प्रति कितने ही उत्तरदायित्व आजाते है।

गणतन्त्र द्वारा हमें अधिकार मिला है कि हम अपने मत का जैसे चाहे प्रयोग करे। किसी भी नागरिक को जो किसी आचार सम्बन्धी अपराध में दण्डित नहीं किया और जो मानसिक रूप से बिल्कुल स्वस्थ है, अपना मत देकर अपने राष्ट्र के शासन के व्यवस्थापक के रूप में चुन सकते हैं। हम जिस नीति को पसंद करे उसी नीति के कार्यकर्ता को अपना विश्वास-पात्र बना कर विधान सभाओं और लोक सभा के लिए अपने प्रतिनिधि के रूप में भेज सकते है। और हम जिस दल को चाहे उसे ही अपने गणतन्त्र की सत्ता सौंप सकते है परन्तु इसी के अधिकार के साथ हमारा यह भी कर्तव्य है कि हम किसी ऐसे व्यक्ति को अपना प्रतिनिधि न बनाएं जो हमारे गणतन्त्र के प्रति पूर्ण उत्तरदायित्व नहीं निभा सकता, जो 'गण' (राष्ट्र) के लिए अपने स्वार्थों की

बलि नहीं दे सकता और न ऐसे ही व्यक्ति को अपना मत देना चाहिए जो गण के हित और अहित को नहीं समझता अथवा जो कर्तव्य परायण सिद्ध नहीं हुआ, जो पक्षपाती, अन्यायी, और दुराचारी है। यदि हम किसी ऐसे व्यक्ति को चुनते है तो इसका अर्थ यह है कि हम अपने धर्म को नहीं निभाते और अपने अधिकार का अनुचित लाभ उठा रहे है। यदि हम किसी स्वार्थी, दम्भी, देशद्रोही, दुराचारी, और अन्यायी को अपना मत देते है तो वह अधिकार प्राप्त कर जो भी कुकृत्य करेगा उसके लिए हम ही जिम्मेदार होगे।

हमारा धर्म है कि हम अपने गणतन्त्र के प्रति वफादार रहे और किसी ऐसे दल को अपने मत अथवा तन, मन, धन से सहायता न दे जो किसी प्रकार से हमारे गणतन्त्र नष्ट करने का कार्य-क्रम रखता है।

हमारा कर्तव्य है कि गणतन्त्र के विधान का पालन करें और उस समय तक उसका आदर करे जब तक उसके स्थान पर दूसरा विधान नहीं आजाता।

अपने गणतन्त्र को बलशाली, समृद्धिशाली और उन्नतिशील बनाना हमारा कर्तव्य है। और हमारा यह भी कर्तव्य है कि हम इस बात का ध्यान रखें कि वर्तमान सत्तारूढ़ लोग अथवा दल हमारे द्वारा दिए गए अधिकारो का दुरुपयोग तो नहीं कर रहे, अपनी गलत नीति से गणतन्त्र के स्वार्थों को तो ठेस तो नहीं पहुंचा रहे और अन्याय और हिंसा की नीति तो नहीं अपना रहे। किन्हीं को शासन सूत्र देकर घर सो रहना भी गणतन्त्र के प्रति हमारे धर्म का उल्लंघन है।

राष्ट्र धर्म मे मैने राष्ट्र के नागरिकों के धर्म की सविस्तार व्याख्या की है। चूंकि हमारा राष्ट्र गणतन्त्र है इसलिए राष्ट्र के

प्रति हमारे धर्म को गणतन्त्र के प्रति हमारे धर्म के रूप मे भी रखा जा सकता है।

अब मै गण धर्म के दूसरे दृष्टिकोण आपके सामने रखूँगा।

जैसा कि मै पहले ही कह चुका हूँ गण का अर्थ है समूह, इसलिए समाज मे चलने वाले दूसरे समूहो के प्रति जो हमारा धर्म है, वह भी गण धर्म के आधीन ही आता है। जिन दिनों लोगो को गणतन्त्र जैसे किसी तन्त्र की कल्पना तक न थी, उन दिनो ही जैन शास्त्रो ने गण धर्म की रचना की थी। उस समय भी तो कुछ गण ही शास्त्रकारो के सम्मुख होगे।

शास्त्रकारो के विचार से समाज के कार्यों के विभाजन के लिए जो गण बनाए गए है, उनका भी अपना धर्म है और उस समय के वे गण, जो कार्य विभाजन के लिए बने थे, आज वर्ग के नाम से पुकारे जाते है। समाज मे कुछ लोग शिक्षा प्रसार के लिए होते है। उनका अपना एक गण है परन्तु आज उसे गण न कहकर शिक्षक वर्ग कहते है। इसका अर्थ यह हुआ कि प्रत्येक व्यक्ति का अपने गण अथवा वर्ग के प्रति जो कर्तव्य है वह गण धर्म के आधीन आ जाता है।

शिक्षको के गण के प्रति प्रत्येक शिक्षक का धर्म है कि वह अपने गण की प्रतिष्ठा मे वृद्धि के लिए कार्य करे और साथ ही वह कोई ऐसा कार्य न करे जिससे शिक्षक वर्ग के हितो को हानि पहुँचती है।

इसी प्रकार कृपको का अपना गण है। प्रत्येक कृपक का कार्य है कि वह कृपको के हितो मे कार्य करने का ध्यान रखे। कृपको के गण मे आपसी भ्रातृत्व का रहना आवश्यक है। नहर मे पानी चल रहा है। और बारी-बारी से कृपक खेतो की सिचाई कर रहे है। परन्तु कोई किसान बारी से तोड़ कर पानी दे देता है, अथवा

रात्रि को पानी अपने खेत में काट लेता है, या पैसे के जोर से दूसरों की बारी कटवा कर स्वयं अपना नम्बर ले लेता है, तो इस से गण में वैमनस्य फैलेगा, सहयोग समाप्त होगा और लडाई-झगडे, हिंसा और प्रतिहिंसा को बल मिलेगा, घूसखोरी को प्रोत्साहन मिलेगा और अन्याय व पक्षपात का वातावरण बनेगा। इसलिए यह बात कृषकों के गण के धर्म के प्रतिकूल है। मान लीजिए सरकार कोई ऐसा कानून बनाती है जिससे अधिकतर कृषकों को हानि पहुँचती है। ऐसी दशा में प्रत्येक कृषक का कर्तव्य हो जाता है कि वह अपने गण पर हुए प्रहार के विरुद्ध समस्त कृषकों के साथ मिलकर उस कानून को खत्म कराने के लिए संघर्ष करे जो शांतिपूर्ण हो। यही कृषक का गण धर्म है।

पशुधन कृषक के हाथ-पांव हैं, इसलिए कृषक के लिए इस गण-धर्म से बढ़कर और क्या धर्म हो सकता है कि वह पशुओं की रक्षा करे, उनके पालन-पोषण में कोई कमी न रखे और पशु-वध यदि कहीं होता है तो उसे रुकवाने के लिए प्रयत्नशील हो।

यदि किसी कृषक को खेती के लिए लाभदायक उसूलों का ज्ञान है तो अपने गण में उसे उन उसूलों का प्रचार करना चाहिए और प्रत्येक क्षण जहां वह अपने कुल के लाभ की बात सोचता है वहीं अपने गण के भले की भी सोचे। मान लीजिए गन्ने का मूल्य १।≈) मन रखा गया है और यह मूल्य गन्ने की लागत को देखते हुए कम है तो इस से सारे ही गण को हानि पहुँचती है। इसलिए सच्चा गण-धर्मी किसान वह है जो अपने गण के साथ होते इस अन्याय को समाप्त कराने के लिए संघर्ष करे। क्योंकि इसमें सारे गण का लाभ है और उसी के साथ उसका भी। यह बात स्वयं सिद्ध है कि गण को कोई हानि पहुँचती है तो उसका प्रभाव गण के प्रत्येक व्यक्ति पर पडता है। जैसे गेहूँ का जो बाजार

भाव हो वही सभी किसानों को मिलेगा इस लिए गण के प्रत्येक सदस्य का स्वार्थ सारे गण से सम्बन्धित है ।

ठीक यही बात मजदूरों, व्यापारियों और अन्य कार्यों के गणों के सम्बन्ध में है ।

सरकार भी अपने कार्य के विभाजन के लिए कुछ गण बनाती है, जैसे पुलिस वालो का एक गण है, और सैनिको का एक गण, कृषिविभाग, न्यायविभाग, योजनाविभाग, सहकारी-विभाग तथा प्रबन्ध विभाग आदि कितने ही विभाग होते हैं जिन के कर्मचारियो का अपना अपना गण स्वमेव ही बन जाता है । अब इन विभागो के आधीन कार्य करने वाले अपने-अपने गण की प्रतिष्ठा, उन्नति, और हित के लिए कार्य करे यही उन का गण धर्म है । और प्रत्येक कर्मचारी का धर्म हो जाता है कि जो कार्य उन के गण को सौंपा गया है उसे ईमानदारी के साथ निभाएं। कोई ऐसा कार्य न करें जिस से उन के गण के मस्तक पर कोई कलक लगता हो ।

आप जो आज सम्प्रदाय देखते हैं वे भी धर्म के गण है। जैन धर्म के आधीन ही गण बने, जैसे श्वेताम्बर तथा दिगम्बर, बल्कि श्वेताम्बरों में कुछ गण मिलते हैं । इस प्रकार यह बात स्पष्ट हो जाती है कि किसी एक मत के अनुयायियों का एक अपना गण होता है । प्रत्येक गण के प्रत्येक सदस्य का कर्तव्य है कि वह अपने मत का प्रचार तथा प्रसार करे, अपने गण के लिए बने नियमो का पालन करे तथा अपने आचरण से अपने गण की प्रतिष्ठा मे वृद्धि करने के लिए प्रयत्नशील रहे। क्योंकि गण के सदस्यो का आचरण ही गण को जीवित रखता है ।

आजकल जो सभा, सोसायटिया आदि चलती हैं वे भी एक प्रकार का गण ही होता है, जैसे कांग्रेस तथा कम्यूनिस्ट पार्टी ।

यह दोनों दल एक प्रकार के गण है जो अपनी-अपनी नीतियो का प्रचार करते हैं। इन सस्थाओ का गण धर्म उन्हे आदेश देता है कि वे अपनी सस्था के अनुशासन मे रहे। अधिकाधिक लोगों पर अपने आचरण से प्रभाव डालें कि उन का गण अथवा उन की सस्था देश के हित मे कार्य कर रही है। संस्था के जिस व्यक्ति के आचरण से सस्था बदनाम होती है वही गण धर्म का पालन नहीं करता। प० जवाहरलाल नेहरू कांग्रेस की प्रतिष्ठा के लिए अपनी पूरी शक्ति भर कार्य कर रहे है और प्रत्येक बलिदान करने को तैयार है, वे काग्रेस के गणधर हैं और गण धर्म के पालन कर्ताओं के लिए आदर्श हैं। इसी प्रकार जब कहीं भी कम्यूनिस्ट पार्टी के लोगों को जेल भेज दिया जाता है, अथवा सरकार देश के किसी कोने मे भी कम्यूनिस्टों का दमन करती है तो सारे देश के कम्यूनिस्ट उस दमन का विरोध करते हैं। पिछले दिनो आध्र मे चुनाव हुआ था, उसमे काग्रेस और कम्यूनिस्टों की जबरदस्त टक्कर थी। सारे देश की कांग्रेस ने आध्र कांग्रेस को सहायता दी और देश के प्रत्येक कोने के कम्यूनिस्टो ने आंध्र कम्यूनिस्ट पार्टी को सहायता दी। क्योंकि अपने-अपने गण की प्रतिष्ठा का सवाल था। यह उनका गण धर्म था। क्योंकि यदि गण की प्रतिष्ठा का सवाल आ जाये तो गण का सदस्य हाथ पर हाथ रख कर नहीं बैठ सकता। यदि वह उस ओर से उदासीनता दर्शाता है तो अपने गण धर्म का पालन नहीं करता।

धर्मी मनुष्यो का भी अपना एक गण होता है और गण का कर्तव्य है कि वह इस बात का ध्यान रखे कि कोई धर्म का उल्लघन न करे और प्रत्येक गणधर्मी का कर्तव्य है कि वह किसी को भी धर्म का उल्लघन करते देखता है तो उसे समझाये तथा सुपथ पर लाये।

व्यापार के भी गण होते है, जैसे कोई पब्लिक लिमिटेड कम्पनी होती है, किसी एक विशेष व्यापार को करती है। उसके कितने ही हिस्सेदार होते है, उन सब का एक गण है। मान लीजिए उस कम्पनी की कोई शाखा किसी का रुपया मार ले अथवा व्यापार मे धोखा करले तो बदनामी सारी कम्पनी की ही होगी। इसलिए कम्पनी की प्रतिष्ठा तथा शाख बनाए रखने के लिए जो किया जाता है वह उस कम्पनी के कर्मचारियो और सचालको आदि का गण धर्म होता है।

गण धर्मियों का कार्य होता है धर्म का प्रचार करना जिन लोगों के कधो पर धर्म प्रचार का कार्य आया हुआ है, उनका गण धर्म यही है कि वे अपने प्रचार को तीव्र करे और जहा प्रचार नहीं है वहाँ पहुँचकर प्रचार करे। आपने देखा होगा कि जहा साधु नहीं जा पाते, वहीं धर्म नहीं रहता। लोग भटक जाते हैं, यह गणधर्मियों की कमजोरी है। धार्मिक प्रचार करने वाले साधुओ का गण धर्म है कि वे अपने सिद्धान्तो के अनुयायियो मे सम्यक्त्व बनाए रखने के लिए धर्म प्रचार की गति कभी मन्द न पड़ने दे।

मै एक ऐसी जगह गया जहाँ कितने ही दिनों से कोई साधु नहीं गया था। वहाँ का एक ओसवाल बड़ा परेशान दिखाई दिया। मैने पूछा कि क्या बात है ?

उसने कहा कि "मन्दिर मे किसी ने विट्ठल भगवान् की बाह तोड दी है।"

मैने आश्चर्य से पूछा कि "विट्ठल भगवान् की बाह कैसे टूट गई ? तुम यह क्या कह रहे हो ?"

वह बोला "मन्दिर मे विट्ठल भगवान् की मूर्ति रखी है। सारा नगर उसे पूजता है, किसी ने उसकी बाह तोड़ दी। अब

नयी मूर्ति लानी है।" और फिर बोला "देखिये महाराज कैसा बुरा जमाना आ गया है। लोग भगवान् की मूर्ति का भी अनादर करते हैं। अब विट्ठल भगवान् की बांह टूट गई है, विट्ठल भगवान बड़े रुष्ट होंगे। न जाने क्या कोप होगा नगर पर ?" मुझे उसकी अज्ञानता पर बड़ा खेद हुआ। वह ओसवाल होकर भी विट्ठल भगवान् की मूर्ति के लिए चिन्तित था। क्योंकि उस बेचारे को अपने धर्म का ही ज्ञान नहीं था। ज्ञान तो तभी होता जब गण धर्मी उधर जाता। मैंने उसे समझाया कि मूर्ति में नाम, स्थापना और द्रव्य तो हैं पर भाव नहीं। इसलिए बिना भाव के वह पत्थर ही है। उसकी पूजा से क्या मिलेगा ?

"मान लीजिए किसी के पिता का स्वर्गवास हो जाये और किसी का उन पर ऋण चाहता है। और साहूकार ऋण लेने आये, उसके बेटे साहूकार के सामने अपने पिता की मूर्ति को लाकर रख दें कि लीजिए इससे माग लीजिए अपना ऋण, तो क्या काम चलेगा ? क्योंकि वह मूर्ति तो उनके पिता जी की ही है पर उसमें भाव नहीं, इसलिए बेकार है।"

"नमस्कार 'भाव' को होती है और भाव चेतन में होता है, जड में नहीं।"

कितनी ही बातें उसे समझाई तब उस बेचारे को अपने धर्म का ज्ञान हुआ।

इसी प्रकार गणधर्मी अपने धर्म का प्रचार करता है और प्रचार ही धरती पर फैले धर्मावलम्बियों को उनके मार्ग से भटकने नहीं देता। जो धर्म के प्रचारक नीतिवान् और परिश्रमी होते हैं, वे अपने धर्म की उन्नति कर जाते हैं। अशोक ने अपने जीवन काल में ही ६० करोड़ बौद्ध बना दिये थे। क्योंकि अशोक ने धर्म प्रचार में अपने सारे साधन लगा दिए थे।

प्रचार ही धर्म प्रसार का मुख्य साधन है। यदि किसी भी बात का प्रचार अधिक हो तो वही बात चल निकलती है। हिटलर कहा करता था कि एक झूठ को यदि सौ बार दोहराया जाय तो वह भी सत्य ही हो जाता है। प्रचार का इतना चमत्कार है, फिर जो सत्य है यदि उसे सौ बार दोहराया जाय तो वह तो ध्रुव सत्य माना जाने लगेगा।

एक युग था जब पृथ्वी को 'अचला' कहा जाता था और अभी तक कितने ही धर्म शास्त्र उसे अचला ही मानते हैं। परन्तु एक समय आया जब कुछ वैज्ञानिकों ने एक नया सिद्धान्त (theory) ससार के सामने रखा कि भूमि घूमती है। उस सिद्धान्त का इतना प्रचार हुआ कि सारे ससार ने पृथ्वी को 'अचला' कहना छोड दिया। बाइबिल मे पहले कहा गया था कि भूमि गोल है। पर बाद मे वैज्ञानिकों ने कहा कि नहीं, भूमि के दो छोर चपटे हैं। इसका इतना प्रचार हुआ कि ईसाइयो ने ही अपने धर्मग्रन्थ बाईबिल मे परिवर्तन कर डाला।

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रचार का धर्म के प्रसार मे बडा महत्त्व है। इसलिए धर्मप्रचारको के गए का धर्म है कि वे अपने प्रचार को बढ़ाएं। प्रचार बढेगा तो हम लोग जो पथ भ्रष्ट हो गए है, सन्मार्ग पर आयेंगे।

हम भूपालगढ़ मे गए। एक दिन कथा मे एक पुलिस आफिसरऔर उनके साथ अन्य पुलिस कर्मचारी आये। जब मैंने धर्म की व्याख्या की तो वे अन्त मे बोले कि महाराज हम क्या करे ? जिस मास किसी केस का चालान नहीं कर पाते हम पर लताड़ पडती है। आज ही हम एक मन्दिर मे गए। वहा भाग खडी थी। हमने उन पर आरोप लगाया कि वे भाग की अनुचित बिक्री करते है। मन्दिर के पुजारी बोले कि यहां कितने ही लोग भग पीते

है और भंग छान कर फेंक देते हैं, उसी में कोई बीज चला जाता है जिससे भग उग आती है।

हम ने उनसे कहा कि नहीं, तुम यह कहो कि मन्दिर में आने वालों को भग पिलाने के लिए वो रखी है। हम विक्री नहीं करते।

वे बेचारे भोलेपन में हमारे कथनानुसार बयान दे गए और हमारा केस वन गया।

मेरे धर्मप्रचार से वे इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने उन पुजारी जी को छोड़ने का वायदा कर लिया। पर मैंने दूसरी ओर भग आदि न प्रयोग करने का भी उपदेश दिया। यह है धर्म-उपदेश का चमत्कार।

सरकार अपने कानूनों, पुलिस और सेना के द्वारा अपराधों की रोक-थाम नहीं कर सकती और न मानव को सन्मार्ग पर ही लाने में सफल हो सकती है। यह तो गणधर्मी ही कर सकते है। उनकी वाणी का जादू ही भटकते हुए मानव को सन्मार्ग पर ले आ सकता है।

एक बार आचार्य काशीराम जी एक स्थान पर धर्मोपदेश कर रहे थे। उन्होंने अहिंसा और प्रेम-भाव पर व्याख्यान किया। उस व्याख्यान में किसान भी थे।

नहर से सिंचाई हो रही थी। एक किसान के खेत में पानी जा रहा था, पर नाली टूट गई और पानी दूसरे किसान के खेत में चला गया। जिस किसान के खेत की वारी थी उसका खेत तो सूखा रह गया और उस किसान का खेत भर गया जो आचार्य काशीराम के व्याख्यान में बैठा था।

प्रात काल उस किसान के बेटे जिसका खेत भर गया था, जब खेत पर गए तो उन्हे खेत को देख कर वड़ा हर्ष हुआ।

सोचने लगे कि अब उनका काम बन गया। एक बार तो मुफ्त ही में खेत भर गया, दूसरी बार हमारी बारी का पानी आयेगा तो फिर पुनः खेत भरेंगे जिससे फसल खूब होगी।

जिस किसान की बारी थी जब उसने अपना खेत सूखा हुआ देखा, वह बहुत चिन्तित हुआ और अपनी तकदीर को कोसने लगा। इतने ही में दूसरा किसान वहां पहुँच गया। उसके बेटों ने हर्ष से अपना भरा खेत दिखाया पर उसे तनिक भी हर्ष नहीं हुआ, बल्कि उस किसान को जिसकी बारी का पानी उस के खेत में आ गया था, बुलाकर कहा कि मुझे यह खेद है कि तुम्हारा पानी मेरे खेत में आगया। जब मेरी बारी आयेगी तब तुम पानी ले लेना।

उस किसान ने कहा "कि नहीं, यह तो मेरे नौकरों की भूल है, आपका इस में क्या दोष है ?"

पर वह न माना और बोला "रात महाराज के व्याख्यान से मुझ पर यही प्रभाव पड़ा है। मैं तुम्हारे हिस्से की किसी चीज से अनुचित लाभ नहीं उठाना चाहता और न तुम्हारी आत्मा को ही दुख पहुँचाना चाहता हूँ।"

धर्म प्रचार से मानव स्वभाव पर कितनी जल्दी कितना प्रभाव होता है, आप इस दृष्टांत से समझ गए होंगे।

आज भारत में ८० लाख साधु हैं। वे चाहे तो प्रतिदिन भारत के प्रत्येक ग्राम में धर्म प्रचार कर सकते हैं। धर्म प्रचार के लिए ही उनका गण है। यह सारा गण ही अपने धर्म का पालन करने लगे तो सारा राष्ट्र धर्म प्रचार से ही पवित्र हो सकता है।

भगवान् फरमाते हैं कि धर्मोपदेश चलता ही रहना चाहिए। समय-समय पर उपदेश होते रहे तो फिर अधर्म और अज्ञान का कोई स्थान ही न रहे। समय-समय पर वर्षा हो जाया करे तो

फसल कितनी अच्छी हो ? इसी प्रकार समय-समय पर होने वाला उपदेश पापो को आश्रय न मिलने दे ।

महरोली में एक व्यक्ति गुण्डागिरी के लिए बडा बदनाम था पर वह शिकारी बहुत अच्छा था । उसका निशाना चूकता ही न था । और वह शिकार खेलने की टेकनीक में भी निपुण था । इसलिए अफसर लोग उसे अपने साथ शिकार को ले जाते थे और वह भी अफसरों को शिकार कराकर प्रसन्न करता रहता था, जिससे उसके कितने ही अपराधो पर परदा पड जाता था ।

एक दिन वह बदमाश आचार्य काशीराम जी के पास आ गया । आचार्य जी का धर्मप्रचार सुनकर वह बोला कि महाराज मैं पशु वध कैसे छोड सकता हूँ । मेरा तो काम ही शिकार खेलना है और इसी के कारण मेरा सारा रोजगार चलता है । मुझे अफसरों के साथ शिकार खेलने जाना ही पडता है ।

आचार्य महाराज ने उसे समझाया और उसने शिकार न खेलने का व्रत ले लिया ।

किसी अफसर ने फिर उसे शिकार खेलने चलने का आदेश दिया । वह डरता था इसलिए इकार न कर सका । पर व्रत का भी ध्यान था ।

जब जगल मे पहुँचे और शिकार सामने देखा तो अफसर ने उसे गोली चलाने को कहा पर उसके मस्तिष्क मे तो उसका व्रत चक्कर काट रहा था और अफसर का भी भय उसे सता रहा था । इसलिए उसने बन्दूक उठाई और शिकार को निशाना बनाने का बहाना करते हुए गोली दूसरी ओर मारी । कई फायर उसने की पर शिकार न मरा ।

अफसर ने कहा कि आज तुम्हे क्या हो गया है, तुम्हारा निशाना तो कभी चूकता ही नहीं था ।

वह बोला "सच बात पूछते हैं तो बताता हूँ, इसका कारण एक सन्त हैं जिनके सामने मैंने शिकार न खेलने का व्रत लिया है।"

और फिर उसने सारी बात कह सुनाई। जब अफसर के कहने सुनने पर भी वह न माना तो अफसर वापिस लौट गया।

अब वह यह समझने लगा कि यदि उसने कोई भी अपराध किया तो पुलिस तथा अन्य अफसर उसे धर दबायगे। इसलिए उसने अपराध ही करने छोड़ दिये और एक भला आदमी बन गया। धीरे-धीरे उसने अपने गिरोह के लोगों को भी सुधारा, महाराज के सामने उनसे भी व्रत लिवाए।

यह है धर्म प्रचार की महिमा—

यदि धर्म प्रचार होता रहे तो अपराधों की बिना कानून के ही रोक-थाम हो सकती है। जिस मकान में बारूद रहती है उसके चारों ओर, और छत तक पर पानी का छिड़काव रखते हैं ताकि बाहर की गरमी से बारूद भड़क न उठे। आत्मा में तो कितना ही बारूद भरा पड़ा है। वह यदि भड़क उठे तो नरक की विकराल ज्वाला भड़क सकती है। उसे भगवान् की वाणी ही काबू में रख सकती है। इसलिए गणधर्मियों का धर्म है कि वे भगवान् की वाणी का प्रसार करने में जुटे रहें।

छूत-छात धर्म के प्रतिकूल है। फिर भी लोग छूत-छात करते हैं। मूर्तियां मन्त्रों की सिद्धि के लिए बनी थीं, किसी ने उन्हें धर्म के रूप में परिणत कर दिया। लोग गौ के लिए शोर मचाते हैं स्वयं गौ पालने का नाम नहीं लेते। यह सब क्यों है ? केवल इसलिए कि धर्मप्रचारकों ने अपने धर्म का पालन नहीं किया। वरना उनके प्रचार के उपरान्त ऐसी बातें न हो पातीं।

एक मुनि के शिष्य को बौद्धों ने मार डाला। उसने क्रोध में

आकर १००० बौद्ध फूंक डाले। एक बुढ़िया उनके पास पहुँची। उसने कहा कि महाराज मुझ से एक चुहिया मर गई, अब आप प्रायश्चित्त करा दीजिए।

मुनि बोला "चुहिया पच इन्द्री होती है। इसलिए पाच व्रत रखो।"

बुढ़िया तो मुनि को सुपथ पर लाने के उद्देश्य से ही गई थी, बोली "महाराज मैं तो पाच व्रत धर लूँगी, पर आप कितने व्रत रखेंगे, जिन्होंने कितने ही इसान फूंक डाले।"

मुनि को वृद्धा की आलोचना से बुद्धि आई और वह सन्मार्ग पर आ गया।

इस प्रकार आप देखेंगे कि धर्म का बोध कराने से कितने ही लोगों का कल्याण होता है और इसलिए धर्म प्रचारकों के गण का धर्म यही है कि वे अपना कर्तव्य निभाते रहे।

गणधर्म पालन करने वालों का यह व्रत होता है कि किसी भी देश अथवा काल मे, यदि सबलों के द्वारा निर्बल सताए जाते हों तो अपना तन, मन, धन खोकर उनकी रक्षा करना।

· वहिल कुमार के ग्यारह भाइयों को तो राज्य मे हिस्सा दिया गया पर वहिल कुमार को न दिया गया। तब चेडा राजा ने गण के अठारह राजाओं को बुलाकर कहा कि वहिल कुमार हार हाथी देने को तैयार है, पर इसे अन्य भाइयों की भाति राज्य मे हिस्सा नहीं दिया गया। यह तो वहिल कुमार के साथ अन्याय है।

वहिल कुमार चेडा राजा का दोहिता था, अठरहों राजाओ का तो नहीं। फिर भी सभी ने गण धर्म को निभाने के लिए कहा कि कौणिक (अजात शत्रु) के पास गण की ओर से सूचना भेज दी जाय कि वह वहिल कुमार के साथ न्याय करे अथवा युद्ध के लिए तैयार हो जाय। आप तैयारी करे, हम भी आपका साथ

देगे। यह था गण धर्म। आप पूछ सकते है कि युद्ध मे तो हिसा होगी। फिर गणधर्मियो ने युद्ध का निमत्रण क्यों दिया? तो उत्तर स्पष्ट है कि न्याय की रक्षा के लिए और कोई चारा भी तो नहीं था।

और हमे आरम्भ ही नहीं देखना चाहिए, परिणाम पर भी विचार करना चाहिए। इस युद्ध मे जितने व्यक्तियों का भी वध हुआ वह कौणिक के अन्याय के कारण। इसलिए वध का पाप कौणिक के सिर पर ही पडा। यदि गण शरण मे आये वहिल कुमार को शरण न देता और अन्याय के विरुद्ध युद्ध न करता तो गण धर्म को कलक लगता था।

इस दृष्टांत से पता चलता है कि गण धर्म के पालन के लिए पूर्व काल मे लोग कितने सकट मोल ले लेते थे।

गण धर्म हमारा प्राचीन धर्म है। जो कार्य अकेला मनुष्य नहीं कर सकता उसे गण का सयुक्त वल कर सकता है। अन्याय को रोकना भी गण के ही वस की वात है और लोगो मे धार्मिक भावनाएँ भी गण ही उत्पन्न कर सकता है। इसलिए हमे चाहिए कि गण धर्म का पालन कर।

मै अन्त मे एक वात वताए देता हूँ कि गण धर्म ही आज के युग मे राष्ट्र धर्म वन गया है। क्योकि हमारा राष्ट्र गणतन्त्री है। इसलिए हमारे लिए आवश्यक हो गया है कि हम गणधर्म को समझे और उसका पालन करे।

गण स्थविर

मैने आपको 'गण' के कई रूप समझाए है। जब शास्त्रकारो ने इन दस धर्मो की, जिनकी मै व्याख्या कर रहा हूँ, रचना की थी, विश्व मे कोई भी गणतन्त्र नहीं था। उस समय राज्य अवश्य थे, पर एकतन्त्रवादी। इसलिए गणतन्त्र का उन दिनो प्रश्न ही नहीं उठा था। परन्तु अब दशाएँ बदल गई है और परिस्थितियो के अनुसार हम भी बदल रहे है। परन्तु ऐसे किसी परिवर्तन को हम स्वीकार नहीं कर सकते, जो हमे पथभ्रष्ट कर दे अथवा जो हमे अधर्मी बना दे। तो भी समय के परिवर्तन चक्र ने जो परिवर्तन ला दिये है, हमे अपने धर्मो का उन्हीं परिवर्तनो मे पालन करना है। इसलिए जब मै 'गण' का प्रयोग करता हूँ तो मेरे मस्तिष्क मे 'गण' की नयी रूप रेखा भी रहती है, जिसे हम भुला नहीं सकते और भुलाना लाभदायक भी नहीं होगा। इसी कारण वश आपने गण धर्म की व्याख्या मे कुछ नया रग पाया होगा। जो पुराने टीकाकारो की टीकाओ मे छू तक नहीं गया है। अस्तु!

अब हम 'गण स्थविर' पर विचार करेंगे।

किसी भी गण, चाहे वह कार्य के विभाजन से स्थापित हुआ, अथवा राजनैतिक, आर्थिक तथा सामाजिक उलट-फेर से उत्पन्न हुआ, अथवा उसे शासन-व्यवस्था ने जन्म दिया, जैसे भी उसका

रूप सवारा गया हो, उसे व्यवस्थित रखने के लिए स्थविर की आवश्यकता होती है।

यदि गण राज्यकीय-विभागों के कर्मचारियों का है तो उस विभाग के उच्च अधिकारी को गण स्थविर कहा जायेगा। जैसे पुलिस को ही ले। उनके विभाग का सर्वोच्च अधिकारी उनका स्थविर हुआ। स्थविर का कर्तव्य है कि वह अपने गण के सदस्यो के कार्यों पर दृष्टि रखे और इस बात का ध्यान रखे कि गण के लोग अपने कर्तव्य को पूर्ण रूप से निभा रहे है अथवा नहीं। पुलिस मे अनुशासन बनाए रखना, उचित आदेश देकर कर्तव्यो को निभाते रहने की ओर कर्मचारियो का ध्यान आकर्षित करना और अपने निर्देशन द्वारा व्यवस्था और शाति बनाए रखने के लिए कर्मचारियों को मजबूर करते रहना ही स्थविर का कार्य है। वह ऐसे किसी कार्य को सहन नहीं करेगा, जिससे उन के विभाग पर कलक आये। दोषियों को उचित दण्ड देगा और यदि कोई उनके विभाग के किसी कर्मचारी को यूँ ही बदनाम अथवा परेशान करना चाहे तो उस समय स्थविर उस कर्मचारी के सरक्षक के रूप मे अपने कर्तव्य अथवा धर्म का पालन करेगा।

यही बात दूसरे विभागो पर भी लागू होती है। सभा, सोसायटियों और सस्थाओ के जो गण होते हैं, उनमे कुछ पदाधिकारी निर्वाचित होते है। प्रधान गण का स्थविर होता है और मंत्री, कोषाध्यक्ष आदि उसके सहयोगी, जो उसके कर्तव्यो को, जिनकी सूची लम्बी होती है, निभाने मे उसका हाथ बटाते है और साथ ही कार्यकारिणी भी होती है जो गण स्थविर की अध्यक्षता मे गण की नीति-रीति निश्चित करती है जिसे गण स्थविर की सरक्षता मे लागू किया जाता है। इन सस्थाओं के गण स्थविरो अर्थात् प्रधानो का कार्य होता है, सारी सस्था को मार्ग निर्देशन

और उसके आदेशों का संस्था के प्रत्येक सदस्य को मान करना पडता है। सस्था के बाहर के लोग भी सस्था के प्रधान के शब्दों को सम्पूर्ण सस्था की आवाज समझते है। जैसा कि महात्मा गांधी को ही ले, वे एक ऐसे व्यक्तित्व थे जो अपने जीवन के अन्तिम वर्षों मे काग्रेस के सदस्य भी नहीं थे परन्तु यह सभी को ज्ञात था कि कांग्रेस उनके सकेतो पर चलती है, इसलिए उन्हे काग्रेस अध्यक्ष से भी अधिक महत्त्व प्राप्त था और इसलिए वास्तव मे कांग्रेस स्थविर रचनात्मक-रूप मे वही थे। वे जो बात कहते थे उसका मतलब अग्रेजो को यही निकालना पडता था कि उक्त बात गाधी जी नहीं वरन पूरी काग्रेस संस्था कह रही है। इसलिए उनकी प्रत्येक बात का प्रभाव होता था।

इसी प्रकार दूसरी सस्थाओ की बात है। आप देखते हैं कि किन्हीं घटनाओ और समस्याओ पर किन्हीं सस्थाओ के अध्यक्षो अथवा स्थविरो के वक्तव्य प्रकाशित हुआ करते है। आप यह नहीं कह सकते कि वह बात स्थविर की अपनी बात है। क्योंकि उस का व्यक्तित्व अपना अकेला ही व्यक्तित्व नहीं है। वरन उस व्यक्तित्व के साथ उसकी सस्था भी सम्बन्धित है। वह जो आदेश देगा, यदि सस्था मे अनुशासन है तो सारी सस्था उसके आदेशो का पालन करेगी। बिल्कुल इसी प्रकार जैसे गाधी जी ने नमक सत्याग्रह आरम्भ किया तो देश के कोने-कोने मे काग्रेसियो ने नमक बनाकर सत्याग्रह आरम्भ कर दिया था। संस्था का स्थविर जो बात कहता है वह सम्पूर्ण सस्था की ओर से ही कहता है और अपनी सस्था की उन्नति को ध्यान मे रखकर ही वह कोई कदम उठाता है। उसका कर्तव्य है कि वह सस्था को ऐसे पथ पर ले जाय जिससे सस्था की शक्ति और प्रभाव मे वृद्धि हो। जो व्यक्ति स्थविर बन कर यह नहीं कर पाता उसे स्थविर के पद से हटा

दिया जाता है। क्योंकि गण के व्यवस्थित करने और उसका उचित मार्ग प्रदर्शन करने के लिए ही स्थविर की नियुक्ति होती है।

सम्प्रदाय भी 'गण' माने जाते है। और उनके भी स्थविर होते है। सम्प्रदायो के लोग बिखरे होते है और बिखरी हुई शक्ति को एक जगह एकत्रित करके महान् शक्ति का निर्माण होता है और यह महान् कार्य बिना स्थविर के नहीं हो सकता। यदि स्थविर नहीं हो तो लोग सम्प्रदायों के सिद्धान्तों से विचलित हो जाये और मनमानी करने लगे जिस से सम्प्रदाय नष्ट हो सकता है।

गण स्थविर गणधर्म की रक्षा करता है और वह निरीक्षक की दृष्टि से देखता है कि कहीं गण के लोग गण धर्म को भूल कर गण की प्रतिष्ठा को तो हानि नहीं पहुँचा रहे ?

देश, काल और शास्त्र के अनुसार गण के नियमों मे परिवर्तन करना गण स्थविर का धर्म है। जो स्थविर लकीर के फकीर होकर गण के नियमो मे देश, काल और शास्त्र के अनुसार परिवर्तन नहीं करते, वे अपने कर्तव्य को समुचित रूपेण पालन नहीं कर सकते। क्योंकि यदि वह देश, काल और शास्त्र के अनुसार परिवर्तन न करेंगे तो गण धर्म नष्ट हो जायेगा।

आप देखते है कि परिवर्तन एक प्राकृतिक नियम है। ऋतुओ को ही लीजिए। ऋतुए आती है और चली जाती है। प्रत्येक ऋतु अपने साथ अपने गुण और दोष लेकर आती है और ऋतुओ के परिवर्तन चक्र के साथ-साथ ही मनुष्य भी अपनी व्यवस्था को बदलता रहता है। वर्षा ऋतु आने को हुई तो मनुष्य पहले ही से अपने मकानो की मरम्मत कराने लगते है, छत आदि ठीक करा देते है ताकि वर्षा उन्हे परेशान न करे।

शरद् ऋतु आती है, तो आप लोग रजाई लिहाफ प्रयोग करने लगते है, गर्म कपडे धारण करते है और जब ग्रीष्म ऋतु आती है तो वे गरम कपड़े उतार कर महीन कपड़ो का प्रयोग आरम्भ कर देते है, ग्रीष्म ऋतु मे कोई गर्म कपडे पहन सकता है ? यदि पहने तो आप क्या कहेगे उसे ? पागल बताओगे आप।

इसी प्रकार समय के अनुसार अपनी प्रथाओं और नियमो मे परिवर्तन लाना आवश्यक है।

ओसवालों मे पहले पच होते थे जो स्थविर का कर्तव्य निभाते थे। ओसवाल गण मे व्यवस्था रखना और उन्हे उचित मार्ग पर चलाना, जो धर्म से गिरता उसे सुपथ पर लाने के लिये दण्ड व्यवस्था करना पचो का कार्य होता था। ओसवालो को कैसा व्यवहार करना चाहिए, गण धर्म के पालन के लिए उन्हे क्या-क्या करना चाहिए, कैसे रहना चाहिए, यह सब पचों का कार्य होता था।

गण स्थविर के होने पर किस ओसवाल की मजाल थी कि वह गण धर्म से गिर जाय। मास-मदिरा आदि का सेवन करना उन दिनो स्थविर के भय से असम्भव था। बाल-विवाह और वृद्ध विवाह किसी को करने का साहस नहीं होता था, उन दिनो गण धर्म निभाना प्रत्येक ओसवाल अपना प्रथम कर्तव्य मानता था।

गण की श्रेष्ठ प्रथाओ की रक्षा के लिए स्थविर प्रयत्नशील रहता ही है, वह अपने गण को कलंकित करने वाले किसी कृत्य को नहीं होने देता था। परन्तु जब स्थविर व्यवस्था ही विगड गई फिर गण धर्म कैसे चले ? आज तो सब लोग मनमानी करने मे लग गए है, कोई किसी की नहीं सुनता, सुने भी किसकी और कैसे ? स्थविर व्यवस्था तो मृतप्राय है।

वह समय याद कीजिए जब ओसवालों मे विवाह थोडे से ही सिक्कों के व्यय से सम्पन्न हो जाते थे, पर आज तो हजारों रुपये की आवश्यकता होती है। पुत्री का विवाह क्या हुआ एक मुसीबत हो गई है। आयु भर जोड-तोड करके, उचित-अनुचित रूप से रुपया बटोरो, तब कहीं जाकर पुत्री का किसी अच्छे घर मे विवाह रचाया जा सकता है। यदि आज स्थविर व्यवस्था सुदृढ होती तो क्या ओसवालो मे दहेज प्रथा इतना भयंकर रूप धारण करती ?

प्रत्येक सम्प्रदाय को ले लीजिए, किस मे कुरीतियों का बोलवाला नहीं है, किस मे विलासिता सिर नहीं उठा रही। एक सम्प्रदाय के लोग जब एक सी ही मान्यताएं रखते हैं, एक से ही धर्मग्रन्थो पर विश्वास करते है, एक ही प्रकार के मन्दिरों मे जाते हैं, फिर भी उनमे वैमनस्य और घृणा है, फिर भी प्रत्येक मनमानी करता है और दूसरा उसको न रोकने का साहस करता है, और न किसी का हस्तक्षेप कोई सहन ही करता है ? यह सब क्यो है ? केवल इसीलिए कि गण स्थविरों की व्यवस्था ठीक नहीं। लोग गण धर्म को केवल इसीलिए नहीं निभाते कि उन्हे गणधर्म का ज्ञान नहीं और न कोई उन पर अकुश ही रखने वाला है।

जिन्हे नीच समझा जाता है उन पिछडी हुई हरिजन जातियों को देखिये। उनमे अभी तक स्थविर है, वे अभी तक गण की व्यवस्था मे विश्वास रखते है। उनके कितने ही झगडे उन जाति की पचायते अथवा उनके चौधरी ही निवटा देते है, वे दण्ड भी दे देते है और अपराधी दण्ड स्वीकार करता है। इसी कारण वे जातिया पिछड़ी होती हुई भी कितनी ही बातो मे ऊंची कही जाने वाली जातियो से हजार गुना अच्छी है। हा, यदि कोई कमी है तो बस यह कि उनमे शिक्षा नहीं, और अशिक्षित गण

का स्थविर भी प्राय. अशिक्षित ही पाया जाता है। जब स्थविर को ही गणधर्म का ज्ञान नहीं होगा तो वह गण को पतन से कैसे रोक सकता है। अत. यह आवश्यक है कि गण स्थविर बुद्धिमान एवं शिक्षित हो।

जब गण की व्यवस्था ढीली हो जाती है तो लोगो के सोचने के तरीको मे भी तोड-फोड आ जाती है। और उसका परिणाम यह होता है कि दुराचार को बल मिलता है। आज आप जितना दुराचार देख रहे हैं इस सब का कारण गण स्थविरों के अभाव में गण व्यवस्था का नष्ट होना ही है। क्योंकि कानून मनुष्य की दानवीय प्रवृत्तियों को नहीं रोक सकता। कानून समस्याओ को उलझाता है सुलझाता नहीं।

आपने देखा होगा कि कुछ बिरादरियो मे पचायते है और बहुत से लोगों को दण्ड देने के लिए पचायतें उनका बिरादरी से बहिष्कार कर देती है। बहिष्कार का इतना प्रभाव पडता है कि वह अपने अपराध को क्षमा कराने के लिए दौड-धूप करता है और इतना पश्चात्ताप करता है कि पुन. वह भूल दोहराने का उसे साहस भी नहीं होता। परन्तु यदि वही केस जिनका दण्ड पचा-यतें बहिष्कार रखती हैं, अदालत मे जाये तो कौन जाने कुछ हो या न हो, और हो भी तो जुर्माना अथवा कारावास। कारावास वह स्थान है जहा अपराधियों की दुष्प्रवृत्ति बढती है घटती नहीं। इसलिए यह सत्य है कि गण स्थविर ही गण के व्यक्तियो को अपराधो से बचा सकते है, वे ही गण के लोगो को सदाचार की शिक्षा दे सकते है। एक बागवान चोर था। वह ग्राम वालो के खेतों से फसल काट लाया करता था। सारे ग्राम वाले उससे तग थे, कितनी ही बार उसे मारा-पीटा गया, पर वह न माना। अन्त में एक बार वह एक किसान के खलिहान से अनाज उठाते

पकड़ा गया। पुलिस को सूचना दी गई। पुलिस आई और उसे मार-पीट कर कुछ दक्षिणा वसूल करके चली गई। अब उसका साहस और बढ़ा। क्योंकि वह समझ गया कि चोरी करने का परिणाम कोई भयंकर नहीं होता। फिर क्या था उसकी चोरी की आदत और भी बढ़ती चली गई। गाव वाले बहुत तग आ गए और अन्त मे सभी बागवानों को लज्जा आने लगी कि लोग उनकी बिरादरी के चरित्र पर ही सन्देह करने लगे है। क्योंकि जिस व्यक्ति को भी उस बागवान के साथ देखते, सोचने लगते जरूर यह भी उसी का चेला हो गया है।

अन्तत' बागवानों की पंचायत हुई और उनके चौधरी ने निर्णय दिया कि उसका हुक्का-पानी बन्द कर दिया जाय। हुक्का-पानी बन्द होने का अर्थ यह है कि उसका बिरादरी से बहिष्कार कर दिया गया।

उसकी पुत्री जवान थी। हुक्का-पानी बन्द होना था कि बिरादरी मे किसी ने उसकी पुत्री स्वीकार न की। वह किसी के पास जाता तो कोई उसे अपना लोटा तक न छूने देता। हुक्का न पीने देता। रिश्तेदार उसे अपने बरतनों मे खाना न खिलाता। परेशान हो गया वह और पुत्री के हाथ पीले करने की चिन्ता उसे खाये जा रही थी।

विवश होकर उसने अपनी बिरादरी की पचायत बुलाई और भरी सभा मे अपने अपराध की क्षमा मागी। चौधरी ने उसे भरी सभा मे नाक रगडने और थूक कर चाटने को कहा। और उसे वहाँ सब कुछ करना पडा।

चौधरी ने कहा कि उसकी पुत्री का विवाह हो जायेगा पर १ वर्ष तक उसकी पुत्री उसके घर नहीं भेजी जायेगी। यदि एक वर्ष मे उसने अपने अच्छे चाल-चलन का प्रमाण दे दिया तो

फिर उसकी पुत्री आने-जाने लगेगी।

यह इतना कडा दण्ड था कि उसे अपने से घृणा होने लगी। क्योंकि वह एक बाप था जिसे अपनी पुत्री से स्नेह था। वह यह कल्पना भी करके कांप उठा कि एक वर्ष तक वह अपनी बेटी का मुंह भी न देख सकेगा।

इस दण्ड ने उसके हृदय पर इतना गहरा प्रभाव डाला कि उसने शपथ ली कि चाहे उसे खाने को टुकडा भी न मिले पर वह कभी चोरी न करेगा।

यह है गण द्वारा दिया गया दण्ड। यह माना कि पिछड़े वर्ग के स्थविर ने अपने समाज की स्थिति के अनुसार ही दण्ड दिया; पर दण्ड वही है जो अपराधी से उसके अपराध के लिए तोबाह कराटे।

अब आप गण स्थविर की आवश्यकता को समझ गए होंगे। गण स्थविर ही गणधर्म का प्राण होता है। वह ही अकेला सारे गण को सन्मार्ग पर ले आता है। पर स्थविर में ज्ञान और विवेक होना आवश्यक है।

* सप्तम सोपान *

संघ धर्म

मनुष्यो के रक्त के सम्बन्धो ने कुल को रूप दिया और कुछ कुल मिलकर गण बने। कई गण मिलकर सघ का रूप धारण कर लेते है। इस प्रकार अनेको नदियो से बहता हुआ जल एक स्थान पर मिल जाता है और वह सागर कहलाता है। सागर को देख कर पता नहीं चलता कि इसमे कितना जल किस ओर का है और न ही यह पता चलता है कि कैसा-कैसा जल आकर इसमे समा गया है। बल्कि वहा तो सभी धाराओ के जल की एक ही गति होती है। सब एक-दूसरे मे विलीन हो जाते है और यह विलीनीकरण ही उनके भविष्य को एक ही तार मे बांध देता है। इसी प्रकार कुल चाहे आर्य हो अथवा अनार्य, गण चाहे उन्नत हो अथवा पतित, इन सब के मेल से बनता है संघ। कुल धर्म मे प्रत्येक व्यक्ति अपने-अपने कुल को उन्नतिशील और व्यवस्थित करने के लिए प्रयत्नशील होता है। गण का प्रत्येक सदस्य गण धर्म का पालन करता हुआ केवल अपने गण की मर्यादा की रक्षा और गण मे शांति, व्यवस्था और सहयोग बनाए रखने की चिन्ता करता है। पर संघ इन सब के भाग्य को एक दूसरे से जोड़ देता है। क्योकि उनका भविष्य सघ के भविष्य पर आधारित है, इस लिए सघ धर्म ऐसा धर्म है जिसके पालन करने से

विभिन्न कुलों और विभिन्न गणों के मध्य सहयोग और प्रीति की भवना जागृत होती है।

संघ धर्म उन धर्म को कहते हैं जिसके पालन से सब के प्रत्येक व्यक्ति की उन्नति होती है।

एक यूरोपीयन लेखक ने लिखा है कि मैंने सब धर्मों के नियमों को देखा, पर जैन धर्म में महावीर स्वामी के बनाए संघ धर्म के मुकाबले का और कोई सिद्धान्त नहीं जचता।

उस लेखक ने ही सघ धर्म की व्यवस्था और उसके निमित्त बनाए गए नियमों को देखकर प्रशसा की है, ऐसी बात नहीं है, वरन मैं तो यह कहता हूँ कि 'सघ धर्म' को मनुष्य के दस धर्मों में से एक का स्थान देकर जैन शास्त्रों ने मानव को मानवता की चरम सीमा पर पहुचा देने का मार्ग दिखाया है। इसमें अध्यात्मवादी मान्यताएँ हैं और अहिंसा तथा अपरिग्रह भी है, पर इन धार्मिक कही जाने वाली बातों के साथ-साथ सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक समस्याओं का भी हल विद्यमान है। आइये सघ धर्म के समस्त पहलुओं पर सविस्तार विचार करें।

संघ त्यागी, साध्वी, गृहस्थ, वर और तीर्थों को मिलाकर बनता है। तीर्थ का अर्थ है किनारा। आत्मा के कल्याण द्वारा ही तीर्थ प्राप्त होता है और आज तो गगा जैसी नदियों के तट पर स्थित कुछ नगरों को ही तीर्थ माना जाता है।

पूर्ण संघ चक्रवर्ती राज्य के समय होता था। चक्रवर्ती राज्य कितने ही छोटे-छोटे राज्यों को मिल कर बनता था और समस्त राज्य एक चक्रवर्ती राज्य के शासन में अपनी आर्थिक उन्नति के लिए प्रयत्नशील रहता था। इतिहासकारों का कथन है कि चक्रवर्ती राज्य में देशों ने बहुत उन्नति की। क्योंकि छोटे-छोटे राज्य एक दूसरे के सहयोग पर फूलते-फलते थे। उन दिनों लोगों में धार्मिक

भावना बलवती थी। अन्याय को कोई स्थान ही नहीं था। आज आप विज्ञान की उन्नति को देखकर विस्मित हो रहे हैं। पर चक्रवर्ती राज्यों के युग के विज्ञान की उन्नतिशील दशा विज्ञान की वर्तमान अवस्था से बहुत आगे थी। मै तो यह कहता हूॅ कि आज की साईंस चक्रवर्ती राज्यो के युग की साईंस के सामने अभी बच्चा ही है।

उन दिनों एक चमर रत्न होता था। इतना बडा कि चक्रवर्ती राज्य की सेना उसके ऊपर समा सकती थी और एक होता था छत्र रत्न, जो अकेला ही सारी सेना को अपने साये मे ले सकता था। अर्थात् चक्रवर्ती राज्य की सेना के फर्श के लिए एक चमर रत्न और ऊपर साये के लिए एक छत्र रत्न पर्याप्त था।

आज आप जब यह सुनते है कि कुछ देशों मे वर्ष मे एक खेत से चार से भी अधिक फसले ली जा सकती है तो आप आश्चर्य करते है, परन्तु चक्रवर्ती राज्यो के युग मे विज्ञान ने इतनी उन्नति कर ली थी कि प्रात' को फस्ल बो दी जाती, शाम को फस्ल तैयार हो जाती, इतनी आश्चर्यजनक खोज हुई थी। जिस युग मे विज्ञान ने इतनी उन्नति की हो, उस युग मे भला कोई भूखा-नगा रह सकता था ? क्योंकि उन दिनों की आय वैज्ञानिक खोज एव ईजाद निर्माण कार्यो पर व्यय होती थी।

आज आप एटम और परमाणु बमों की बात सुनकर घबरा जाते है और आप के नेत्रो मे विस्मय नाच जाता है, जब आप सुनते हैं कि परमाणु बम से भी अधिक भयकर सहारक अस्त्रों का निर्माण किया जा रहा है। पर चक्रवर्ती राज्यों के युग मे चक्र रत्न और दण्ड रत्न जैसे अस्त्र आन की आन मे शत्रु देशों को भस्म कर डालने मे समर्थ थे। कागनी चक्र ऐसा था कि एक स्थान पर लकीर खींच देने से एक योजन (४ कोस) तक प्रकाश

हो जाता था।

विज्ञान की उन्नति के साथ-साथ उन दिनों मानव चरित्र भी आज के युग से कोटिशः गुना पवित्र था। सतियों की कथाएँ आपने सुनी होंगी, वैसी सतियां आज नहीं और उन दिनों प्रत्येक नारी का आदर्श सती बनना था। सदाचार ने सारे चक्रवर्ती राज्य को पवित्र भूमि बना रखा था।

यह सब कैसे सम्भव था? इसी कारण कि कितने ही राज्यों की शक्ति मिलकर संघ का रूप धारण कर लेती थी और चूँकि सारे राज्यों की सुरक्षा का भार एक ही सेना पर होता था। इसलिए राज्य सुरक्षित रहते थे, सेना की शक्ति अपार होती थी और संघ में सर्वत्र शांति स्थापित रहने के कारण प्रत्येक व्यक्ति अपने-अपने कार्य को उन्नति की राह पर ले जा सकता था। वैज्ञानिकों को विज्ञान सम्बन्धी खोज करने के लिये पूरी सुविधाएँ प्राप्त थीं, और अनेकों प्रकार के पुरस्कार आदि देकर उन्हें प्रोत्साहन दिया जाता था।

कितने ही गण संघ में होते थे पर इन गणों के मध्य सहयोग की जो उत्कृष्ट भावना थी, वह भेद-भाव को सिर न उठाने देती थी। उन दिनों के इतिहास में कहीं भी साम्प्रदायिक दंगों और वर्ग युद्धों की बातें नहीं मिलतीं, क्योंकि संघ धर्म का पालन करना वहाँ के प्रत्येक व्यक्ति का अपना कर्तव्य बन गया था। बल्कि लोग यहां तक सोचने लगे थे कि यदि कोई परदेशी किसी चक्रवर्ती संघ में पहुँच जाय तो संघ का प्रत्येक व्यक्ति जिसका उससे वास्ता पड़े, उसका अतिथि सत्कार करना संघ धर्म का पालन करने और सन्मार्ग के लिए एक आवश्यक शर्त के रूप में स्वीकार करता था, ताकि वह परदेशी अपने देश में जाकर संघ और उसके निवासियों की प्रशंसा करे और संघ की ख्याति हो।

ससार मे पहले राजनीति पैदा होती है और तत्पश्चात् धर्म-नीति जन्म लेती है। क्योंकि राजनीति कहीं भटक भी सकती है और राजनीति पर केवल धर्मनीति ही अंकुश रख सकती है। जिस समय राजनीति द्वारा उलट-फेर होने से लोग भागों मे विभाजित हो जाते है तो धर्मनीति ही होती है जो उन्हे एक दूसरे के साथ अधर्म, अन्याय तथा पाप करने से रोकती है।

संघ धर्म का प्रचार लोगो को सुनागरिक तो बनाता ही है, साथ ही सदाचारी, दयावान् और उज्ज्वल आत्मावान् भी बनाता है। परन्तु जब संघ धर्म की प्रचार व्यवस्था बिगड जाती है तो लोग पथविमुख हो जाते है और इस भटकाव मे अनर्थ करने लगते है। स्वार्थ बल पकडते है, भ्रातृत्व और सह-योग मिटने लगते है और गण तक एक-दूसरे से टकराने लगते है। इस प्रकार चक्रवर्ती राज्य समाप्त हो जाता है, छोटे-छोटे राज्यों मे भूमि बट जाती है। गत शताब्दियो का इतिहास इस बात का साक्षी है।

जब पुण्य नहीं रहता, त्याग की भावना मिट जाती है तो छोटे-छोटे राज्य भी आपस मे एक-दूसरे के शत्रु बनकर 'पशुबल' आजमाने लगते है।

आजकल एक ही तो राजा, चक्रवर्ती राजा जैसा नहीं है और न सघ अपने पुरातन रूप मे है, न सघ धर्म ही है। क्योकि पुण्य नहीं है और लोगो ने शास्त्रों को अलमारियो की शोभा बनाना शुरू कर दिया है, वाद-विवाद के लिए शास्त्रो को पढ़ते है, जीवन मे उतारने के लिए नहीं।

सघ धर्म दो प्रकार का होता है, लौकिक और लोकोत्तर। लौकिक सघ धर्म को निभाने के लिए सघ निवासियों मे अपने संघ के प्रति श्रद्धा और भक्ति चाहिए। यदि उन मे अपने सघ के प्रति

भक्ति-भाव है तो वे संघ धर्म का पालन कर सकेंगे, वरना सघ धर्म का पालन हो ही नहीं सकता। इसलिए प्रथम तो लोगों मे सघ के प्रति श्रद्धा तथा आस्था होनी चाहिए और वह आस्था तथा श्रद्धा हो सकती है तभी जब कि जनता अपनी सघ व्यवस्था से सन्तुष्ट हो।

जिस वस्तु के प्रति मनुष्य को आस्था न हो, जिससे वह असन्तुष्ट हो उसकी सुरक्षा का आपको ध्यान नहीं रहता। इसलिए सघ की व्यवस्था से सन्तुष्ट होना आवश्यक है।

शास्त्रों मे कहा है कि —

सघ धम्मो—'गोष्टी समाचार'

अर्थात्—संघ या सभा के नियमोपनियम।

सघ के नियमोपनियम ही तो सघ धर्म के प्राण होते है। जिस सघ अथवा सभा मे सभी लोग अपना हक समझते है, जहाँ सबकी व्यवस्था का विचार हो और जिसके द्वारा सभी की उन्नति हो, वे सब लौकिक सघ धर्म के आधीन आजाते हैं।

जिस धर्म के द्वारा किसी एक सम्प्रदाय अथवा किसी एक वर्ण विशेष का हित होता है, जिस धर्म द्वारा किसी एक पेशे या विभाग अथवा मतावलम्बियो का कल्याण होता हो, ऐसे धर्म को गण धर्म तो कह सकते है पर सघ धर्म नहीं। क्योंकि धर्म से किसी एक सम्प्रदाय, वर्ण अथवा गण का हित नहीं किया जाता वरन सारे सघ का हित होता है।

संघ धर्म को समझाने के लिए मै यहा विश्व आन्दोलन को लेता हूँ। मुझे किसी राजनैतिक विचार धारा से कोई मतलब नहीं वरन एक दृष्टांत के रूप मे प्रस्तुत करता हूँ।

विश्व शांति कौंसिल की ओर से जो भी कार्य क्रम बनता है वह सारे विश्व में शांति स्थापित करने के लिए होता है। और

विश्व शांति कौंसिल के सदस्य अपने-अपने राज्यों की, जिनके वे निवासी है, बात छोड कर देखते है, कि किस देश की नीति से विश्व शांति को खतरा है। कौन देश आक्रान्ता है, किस पर अन्याय हो रहा है। इसलिए उनकी नीति विश्व के हित मे होती है। यह उनका सघ धर्म ही है जो उन्हे राष्ट्रीयता से भी ऊपर उठकर सोचने की प्रेरणा देता है।

विश्व शांति कौंसिल मे फ्रांस के प्रतिनिधि भी है पर उन्होने अपने देश की सरकार की ओर से पश्चिमी जर्मनी के पुन. शस्त्रीकरण का विरोध किया क्योंकि उससे विश्व में युद्ध का वातावरण तैयार होता है। इसी प्रकार ब्रिटेन के प्रतिनिधियों की बात लीजिए। मलाया पर ब्रिटन का अधिकार है और ब्रिटेन मलाया से करोडो रुपये वार्षिक लूटता है। मलाया मे ब्रिटेन के कारखानो का माल खपता है जिससे ब्रिटेन के उद्योगो को लाभ होता है और श्रमजीवियों का काम भी चलता है। इसलिए वहाँ की सरकार मलाया को अपना दास बनाए रखने के लिए प्रयत्नशील है, वहां के स्वतन्त्रता आन्दोलन का दमन करने मे प्रत्येक हिंसक कदम उठाने मे भी नहीं हिचकती, कितने ही लोगो को गोली से भून डाला जाता है और कितनों ही को फासी पर लटका दिया जाता है। यदि कोई ब्रिटेन निवासी अपनी सरकार की इस नीति को गलत बताए तो उत्तर मिलता है कि ब्रिटेन राष्ट्र के हित मे यही है कि वह मलाया को दास बनाए रखे। पर ब्रिटेन के शाति आन्दोलन के नेता इसे विश्व शाति के रास्ते मे रोडा समझते है। इसलिए विश्व शांति कौसिल में बैठकर वे ब्रिटेन की नीति की भर्त्सना करते है।

यह सब क्यो है?

इसका रहस्य है सघ धर्म। विश्व मे शाति बनाए रखना तभी

सम्भव है जब कि कोई राष्ट्र की स्वतन्त्रता को न हड़पे।

इसी प्रकार अब हम संयुक्त राष्ट्र सघ को ही देखे। वहाँ सारे राष्ट्र मिलकर विश्व की उलझी हुई समस्याओं को सुलझाने का प्रयत्न करते हैं। और किसी विषय पर जिस के मत अधिक होते हैं उसी राष्ट्र का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया जाता है।

कोरिया मे युद्ध छिडा। उत्तरी कोरिया को अक्रान्ता घोषित किया गया। यह बात दूसरी है कि उत्तरी कोरिया को आक्रान्ता घोपित करना अनुचित था अथवा उचित। पर यह बात तो माननी ही पडेगी कि प्रस्ताव पास हुआ और आक्रान्ता को रोकने के लिए विभिन्न देशों ने अपनी सेनाए सयुक्त राष्ट्र सघ की लड़ाकू सेना के नाम से भेजीं। भारत ने सेना तो नहीं भेजी पर अपना डाक्टरी दस्ता घायलों की सेवा के लिए भेज कर सयुक्त राष्ट्र सघ की सुरक्षा परिषद् के आक्रान्ता रोकने के निश्चय मे सहयोग दिया। विभिन्न देशों का कोरिया के विरुद्ध लड़ने के लिए सेनाए भेजना सघ धर्म ही था।

संघ कितने ही उद्देश्यों को लेकर बनते है। जैसे आजकल एशिया-अफ्रीका के कुछ देश अपना सघ बनाने के लिए प्रयत्न-शील हैं। उसका उद्देश्य एशिया-अफ्रीका मे शांति रखना, साम्रा-ज्यों से उपनिवेश खाली कराना है। यदि एशिया के देशो का सगठन बन जाय तो सब देशों की स्वतन्त्रता की रक्षा करना अपना उद्देश्य बना ले और किसी देश पर कोई आक्रमण करदे तो एशिया के समस्त देशों को आक्रान्ता का मुकाबला करना होगा क्योंकि यही उनका सघ धर्म है।

आजकल मजदूरों के अन्तर्राष्ट्रीय सगठन बने हुए है, जैसे विश्व मजदूर सघ। उसका उद्देश्य है विश्व के समस्त मजदूरों मे भ्रातृत्व पैदा करना और एक-दूसरे के दु:ख-सुख मे हाथ बटाना।

विश्व मजदूर संघ प्रत्येक देश के मजदूरों के संघर्षों में उनका साथ देता है। प्रत्येक देश के मजदूरों पर होने वाले अन्यायों के विरुद्ध आवाज बुलन्द करता है।

इसी प्रकार देश के युवकों का एक संघ है जो युवकों के हितों के लिए सोचता है और एक-दूसरे देश के युवकों में मैत्रीभाव उत्पन्न करने के लिए आन्दोलन चलाता है।

यह है संघ धर्म का पालन और संघ धर्म से होने वाले लाभ का एक चित्र।

धर्मी जन सदैव ऐसा कार्य करते हैं जिससे संघ के सभी लोगों का लाभ हो। वे अपने स्वार्थ के लिए दूसरों के अधिकारों और हितों पर हाथ साफ नहीं करते।

आप देख रहे हैं कि आजकल कुछ देशों की सरकारों ने छोटे-छोटे देशों को आपस में लड़ाकर अपने शस्त्रास्त्रों की खपत का रास्ता खोलने की नीति अपना रखी है। उन देशों की अर्थ-व्यवस्था ही युद्ध के आधार बनी हुई है। यदि युद्ध न हो तो उनके शस्त्रास्त्रों की खपत बन्द हो जाय और दूसरे विश्व युद्धों में उन्होंने जो कारखाने पैसा बटोरने के लिए शस्त्रास्त्रों के खोले थे, ठप हो जायेंगे और बेरोजगारी समस्या को हल करना अपनी गलत आर्थिक नीति के कारण उनके बसकी बात न रहेगी। दूसरे वे चाहते हैं कि युद्ध हों और वे किसी को सहयोग के नाम पर अपने चंगुल में लेकर अपनी मण्डी के रूप में उपयोग करें और किसी को परास्त करके अपनी मण्डियां खोल दें। इस स्वार्थ के लिए वे कोई न कोई झगड़ा करके कोई न कोई युद्ध आरम्भ करा देते हैं और इस प्रकार का जो युद्ध वातावरण बनता है, उससे उनके शस्त्रों की मांग बढ़ जाती है और वे रुपया रोल लेते हैं और फिर वही देश संयुक्त राष्ट्र संघ में बैठ कर छोटे-छोटे

देशों को साथ लेकर अपना पक्ष दृढ बनाकर निर्णय करने बैठते हैं, न्यायाधीश की हैसियत से और अन्यायी को न्यायी और न्यायी को अन्यायी घोषित कराकर अपने युद्ध मे कूद पड़ने का अवसर पाते हैं। जबकि संयुक्त-राष्ट्र-सघ विश्व में शाति बनाए रखने और शक्तिशाली राष्ट्रों के छोटे राष्ट्रों पर होने वाले अत्याचारों की रोक-थाम के लिए ही बना है। तो क्या उन देशों को इस कारण सघ धर्मी कह सकते हैं क्योंकि वे राष्ट्र सघ मे हुए निर्णय को क्रियात्मक रूप दे रहे है ?

"नहीं"।

उन्हे संघ धर्म नहीं कह सकते। क्योंकि उन की कार्यवाही से तो सघ का उद्देश्य ही मिट्टी मे मिल रहा है। सघ के नाम पर अत्याचार करना सघ धर्म नहीं है।

राष्ट्र सघ प्रत्येक देश को उसकी समस्याओ को हल करने मे सहयोग देगा। यह है सयुक्त राष्ट्र सघ की घोषणा। पर एक ओर तो बहुत से देश अन्न की कमी से परेशान है, दूसरी ओर अमरीका लाखो टन अन्न खपत से अधिक होने के कारण सागर मे डुबो देता है। क्या इसे हम सघधर्म का पालन कह सकते हैं ?

'कदापि नहीं,

जिस सघ के सदस्य हो, उस सघ की पूरी नीति पर अमल करो, उसके उद्देश्य की पूर्ति मे अपना सर्वस्व लगा दो, यही सघ धर्म है।

रूस एक राज्य नहीं है, बल्कि वह कई राज्यो का सघ है। और वे राज्य सभी सयुक्त रूस की सरकार के आधीन है। सब राज्य एक-दूसरे की सहायता करते हैं, जैसे किसी अधिक होता है और दूसरे में कम, तो गेहूँ वाला को गेहूँ देगा। इसी प्रकार आपसी सहयोग

रूस विश्व की एक महान् शक्ति बना हुआ है। शास्त्र कहते हैं कि–

'संघे शक्ति कलौ युगे'।

इस सिद्धान्त ने मानव समाज को इस बात पर मजबूर कर दिया कि वे अपना-अपना संघ बनाएँ और संघ बनाकर संघ धर्म का पालन करते हुए अपने को समृद्धिशाली बनाएँ। इसीलिए आज नए-नए संघों की स्थापना हो रही है। जिस संघ में अनुशासन होता है, उसके सदस्यों में प्रीति होती है, एक-दूसरे की सहायता करने की भावना होती है, वही संघ शक्तिशाली हो जाता है और उसकी बात भी चलती है।

यह सत्य सर्वविदित है कि आज संघ-शक्ति ही अजेय है। जहाँ संघ-शक्ति नहीं वहीं अन्याय होते हैं। वहीं लोग परेशान हैं। पर संघ हो और लोग संघ धर्म का पालन न करें तो इसके अतिरिक्त और क्या कहा जाय कि वह संघ नहीं जिसके सदस्य संघ धर्म का ही पालन नहीं करते।

लौकिक संघ धर्म के उपरान्त अब मैं लोकोत्तर संघ धर्म के विषय में बताऊँगा।

जिस धर्म के पालन से, साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका ऐसे चतुर्विध संघ की उन्नति हो वह लोकोत्तर संघ धर्म है। लोकोत्तर संघ धर्म के आधीन भी हमारे वही कर्तव्य आते हैं जिन्हें सारे संघ के लिए पूर्ण करना आवश्यक है। लोकोत्तर संघ धर्म मनुष्य को ऐसे कार्यों से रोकता है जिससे केवल उसकी अपनी आत्मा को सुख मिले और अन्य आत्माओं को दुःख हो।

संघ धर्म में गृहस्थी और साधु के अलग-अलग कर्तव्य बताए गए हैं। क्योंकि यदि गृहस्थियों और साधुओं के कर्तव्यों के बीच विभाजन रेखा न खींची जाय तो संघ का कार्य ही न चल सके। क्योंकि साधु और गृहस्थी के जीवन में बहुत अन्तर है और उनके

कार्य करने के तरीकों में भी अन्तर है ही। गृहस्थी और साधु के धर्म को एक साथ मिलाया ही नहीं जा सकता।

जैसे एक व्यक्ति वकील है और एक ग्वाला है जो गौओं को चराकर अपना पेट पालता है। यदि कोई वकील साहब के बजाय कचहरी में तो ग्वाले को भेज दे और ग्वाले के के स्थान पर पशु चराने के लिए वकील साहब को भेज दिया जाय तो क्या कार्य चल सकेगा?

परन्तु यह दोनों ही एक समाज अथवा एक संघ के हैं। उन दोनों को संघ धर्म भी निभाना ही है।

साधु और गृहस्थियों सभी को हम संघ धर्म के आधीन इसलिए लेते हैं कि साधु और गृहस्थियों को मिलाकर ही संघ बनता है। परन्तु साधु अपने कर्तव्य को निभाता है, गृहस्थी अपने। और इसी से संघ का कार्य चलता है। साधु श्रावकों को ज्ञान देता है, उचित मार्ग दर्शाता है और श्रावक उनके बताए मार्ग के अनुसार चलते हुए संघ की उन्नति के लिए कार्य करते हैं। यदि साधु अपने संघ धर्म को निभाना छोड़ दे और श्रावक अपने, तो संघ में अव्यवस्था आ जायेगी। पापों का साम्राज्य छा जायेगा संघ पर।

साधु हो अथवा श्रावक सभी को यह समझना चाहिए कि अपना हित बाद में है, पहले संघ का ही हित है।

भद्रबाहु स्वामी के जीवन को देखिये। वे एक समय एकान्त योग-साधन के लिए चले गए। पीछे संघ में विग्रह मच गया और विग्रह भी ऐसा कि बिना किसी तेजस्वी एवं प्रभावशाली व्यक्ति के प्रयत्न के वह समाप्त ही होने वाला न था। अन्त में संघ की ओर से कुछ साधु भद्रबाहु स्वामी के पास गए और संघ की दुर्दशा कह सुनाई।

भद्रबाहु स्वामी बोले कि आजकल मैं योग मे लगा हूँ, योग पूरा होने पर आऊँगा।

सन्तो ने लौटकर सघ को भद्रबाहु स्वामी का उत्तर सुनाया। संघ के लोग बड़े आश्चर्य में पड गये कि स्वामी जी ने यह क्या सोचा कि उन्होंने केवल अपने कल्याण के लिए सघ की उपेक्षा कर दी। बहुत सोच-विचार के उपरान्त सघ ने निश्चय किया कि फिर कुछ साधु भेजे जायें, उनसे यह पूछने के लिए कि सघ के हित और उनके हित में प्रथम और मुख्य कौन-सा है।

साधुओं ने उनसे जाकर पूछा कि आपका अपने कल्याण के लिए योग करना बड़ा काम है या सघ के विग्रह को शान्त कराकर सघ के कल्याण का कार्य बडा है ?

यह सुनकर भद्रबाहु अपना अभिग्रह अधूरा छोड़कर सघ के पास आये और वहा आकर श्री सघ से क्षमा-याचना की और कहा कि योग की अपेक्षा सघ का कार्य विशेष महत्वपूर्ण है। यह कह कर संघ मे शान्ति स्थापित की।

आप पूछ सकते हैं कि भाद्रबाहु ने अपने योग को छोडकर सघ के विग्रह को दूर करना क्यों आवश्यक समझा ? वहथा सघ धर्म ! जिस से वे मजबूर थे, उन्होंने सोचा था कि सघ न होता तो मै भद्रबाहु कैसे होता ? स्मरण रखिये सघ धर्म की रक्षा करना अपनी ही रक्षा है।

किसी ने कहा है —

धर्म एव हतो हन्ति, धर्मो रक्षति रक्षित ।
तस्माद्धर्मो न हन्तव्यो, मा नो धर्मो हतोऽवधीत् ॥

अर्थात्—जो मनुष्य धर्म को नष्ट करता है, धर्म भी उसे नष्ट करदेता है, और जो धर्म की रक्षा करता है, उसकी धर्म भी रक्षा करता है, यह समझकर कि नष्ट हुआ धर्म हमे नष्ट न कर

दे, कभी धर्म का नाश न करना चाहिए।

परमात्मा निर्मल आत्मा ही है। उसके साथ प्रकृति (matter) न लगा होने से वह कुछ कर नहीं सकता। संघ में से ही कोई आत्मा धर्म के सहारे उन्नति कर जाती है, और वह आत्मा जब पुनः जन्म लेती है, वह अवतार कहलाती है।

अवतार दो प्रकार के होते है, भोगावतार और कर्मावतार।

रुद्रावतार ग्यारह होते हैं। २४ कामदेव अवतार होते हैं, जो काम को जीतने वाले होते हैं उन्हे ही कामदेव अवतार कहते हैं।

धर्मावतार २४ है, जिन्हे तीर्थंकर कहते है।

यह सब वे महान् आत्माएँ थीं जो संघ धर्म को निभाने और अन्य धर्मों का पालन करने के कारण उत्तम हो गईं थीं और वे अवतार के रूप मे संसार मे आईं।

धर्मी पुरुषों का संघ सबको ज्ञान की ज्योति देता है क्योंकि ज्ञान बिना अंधकार है और अंधकार मे इन्सान कहीं भी भटक सकता है, किसी भी गड्ढे मे गिर सकता है।

संघ को शास्त्रों मे भगवान् बताया गया है और संघ को चक्र-तथा नगर की उपमा भी दी गई है। संघ को इतनी उपमाएँ देने और भगवान् तक की संज्ञा देने से स्पष्ट हो जाता है कि संघ धर्म कितना महत्व-पूर्ण है। संघ का प्रत्येक अंग अपना-अपना कार्य करता हुआ संघ को उन्नतिशील बनाता है और जब व्यवस्था बिगड़ जाती है तभी संघ की शक्ति का ह्रास होने लगता है।

संघ की शक्ति का ह्रास न हो इसके लिए आवश्यक है कि एक गण दूसरे गण की चिन्ता करे। जो लोग ऐसा समझते हैं कि हमें क्या आवश्यकता पड़ी है कि किसी दूसरे की चिन्ता करें,

यह उनकी भूल है। क्योंकि इस भावना के रहते तो संघ धर्म चल ही नहीं सकता। मान लो साधु समझने लगे कि हमें श्रावको की चिन्ता करने की क्या आवश्यकता पडी है और श्रावक सोचने लगे कि हमे साधुओ की चिन्ता करने की क्या आवश्यकता है? तो क्या धर्म चल सकता है?

कदापि नहीं।

क्योंकि साधु और श्रावक का सम्बन्ध मार्ग-दर्शक और पथिक का है, मस्तिष्क और हाथो का है।

सघ मे अनुशासन कायम रखना अत्यावश्यक है। सघ के प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है कि वह संघ के नियमों और आदेशो का अक्षरश पालन करे।

सघ की शक्ति का आभास हमे भारत के स्वतन्त्रता सग्राम से मिलता है। एक ओर अग्रेज साम्राज्य था दूसरी ओर निहत्थे भारतीय थे। अग्रेज साम्राज्य के पास कितने ही हिंसक शस्त्र थे, उनके पास सेना और पुलिस थी। उन्हे प्रत्येक प्रकार का दमन अस्त्र प्रयोग करने का कानून ने अधिकार दे रखा था। पर भारतीयो के पास क्या था जिसने अग्रेज साम्राज्य को परास्त किया? वह थी सघ की शक्ति। कांग्रेस के झण्डे तले सारा भारत सगठित हो गया था। कांग्रेस ने कहा, जेलो मे चलो। लोगो ने जेले भर दीं। कांग्रेस ने सन् ४२ मे कहा कि 'करो या मरो', 'अग्रेजो भारत छोड़ो' का नारा गूॅज उठा। पुलिस और नौसेना तक मे विद्रोह हुआ और भारतवासियो की सघ शक्ति के सामने अन्तत' अंग्रेज साम्राज्य को घुटने टेकने ही पडे। भारत स्वतन्त्र हुआ।

भारत ही नहीं आज तक जिस देश ने भी स्वतन्त्रता प्राप्त की वह अपने सघ-बल के द्वारा ही। अतएव यह बात सिद्ध हो जाती है कि वर्तमान युग मे सघ बल ही समस्त शक्तियों की अपेक्षा

अधिक माननीय है।

भूलिये नहीं। संघ ही धर्म का प्राण है, संघ ही धर्म का आधार है और संघ शक्ति ही धर्म की शक्ति है। जिस विचार के साथ संघ बल होगा वह संसार में फैलेगा, उसे कोई मिटा नहीं सकता। जिस विचार के साथ संघ बल नहीं, वह चाहे कितना भी शुद्ध एवं सत्य हो संसार में उसे कोई स्वीकार नहीं करेगा।

इसलिए महावीर स्वामी के सिद्धान्तों का प्रसार करने के लिए संघ बल को बढ़ाइये। जैन धर्मावलम्बियों में संघ धर्म की भावना को अधिकाधिक जागृत कीजिए, फिर देखिये सारा संसार भगवान् महावीर का अनुयायी हो जायेगा।

संघ स्थविर

सघ धर्म की व्याख्या कर मैं अब सघ स्थविर पर प्रकाश डालूंगा। आप मेरे गत दिनो के व्याख्यानों से यह तो जान ही चुके हैं कि प्रत्येक धर्म पालन के लिए एक कुशल नेता अथवा स्थविर की आवश्यकता होती है।

जैसे कोई गाड़ी चली जा रही है, उसे एक व्यक्ति हाक रहा है। सड़क के इस ओर और उस ओर गहरी खाइयां और गहरे गड्ढे हैं। यदि गाडीवान सूझ-बूझ का व्यक्ति है तो वह गाडी को ठीक सडक पर चलाता हुआ अपनी मजिल पर पहुंच जायेगा। परन्तु यदि गाडीवान ठीक नहीं है तो गाडी गड्ढे मे गिर कर टूट भी सकती है और यह भी सम्भव है कि गाडी वहीं नष्ट हो जाय। बैल तो गाडीवान के सकेत पर चलेंगे। इसी प्रकार जीवन का भार ढोने के लिए जुती हुई आत्माओं को सन्मार्ग पर हाकने वाले स्थविर की आवश्यकता होती है। स्थविर की सूझ-बूझ से ही गाडी मजिल पर पहुँच सकती है।

सघ बल अजेय है, उसके होते संसार का कोई कार्य भी असम्भव नहीं है, पर इस बल को स्थापित करना और सुरक्षित रखनासघ स्थविर का कार्य होता है। सघ स्थविर ही संघ के आधीन लोगों को एकता की डोर मे बाध सकता है।

संघ स्थविर वही है जो संघ धर्म का ज्ञान रखता है, स्वयं संघ के लिए प्राण तक देने को तैयार रहे। भद्रबाहु स्वामी की तरह अपने योग को छोड़ कर भी अपनी आत्मा के कल्याण के कार्य को बीच में छोड़ कर भी संघ के कल्याण का कार्य करे। बड़ा प्रभावशाली और दूरदर्शी ही संघ स्थविर हो सकता है। क्योंकि संघ की नौका तूफानों में मझधार के बीच संघ स्थविर के हाथों में ही होती है। यदि वह अपने कर्तव्य के निभाने में कोताही करे तो नौका बीच मझधार में ही डूब सकती है।

संघ स्थविर ही संघ की शक्ति को संचित करता है। वही संघ को कल्याण के मार्ग पर ले जाने के लिए संघ में अनुशासन बनाए रखने का जिम्मेदार होता है। देश, काल और शास्त्रों के अनुसार संघ के नियमों और उपनियमों में परिवर्तन और नए कल्याणकारी नियमों की रचना करके पुरानी रीति-नीति तथा प्रथा को तोड़ना तथा नव जागरण के अनुकूल, शास्त्रों के बताए अनुसार नई राहें खोलना संघ स्थविर का ही काम है। स्थविर बुद्धिमान् है तो संघ अपने उद्देश्य में सफल होता है और स्थविर यदि निरा पोंगी-पंथी ही है तो वह पुरातन रीति-रिवाज की लकीर पीटता-पीटता ही सारे संघ को डुबो देगा। संघ स्थविर अपने कर्तव्यों के प्रति सचेत रहता है, वह सोते जागते संघ के कल्याण की बातें ही सोचता है। वह संघ के प्रत्येक अंग से समान प्रीति दर्शाता है और संघ धर्म का उल्लंघन करने वालों के साथ निष्पक्ष होकर कार्यवाही करने से नहीं चूकता।

जिस संघ का स्थविर किसी निर्णय के समय पक्षपात से काम लेता है उस संघ में अनुशासन नाम की कोई व्यवस्था नहीं रहती। और वह संघ आपसी दलबन्दी का अड्डा बन जाता है जो संघ को ले डूबता है।

सघ स्थविर संघ के किसी अग को संघ का कम और किसी को अधिक आवश्यक अग नही मानता। क्योंकि वह जानता है कि संघ का प्रत्येक अंग अपने-अपने स्थान पर उपयुक्त है और आवश्यक भी।

एक बार कुछ अधो मे इस विषय पर बहस छिड गई कि हाथी कैसा होता है। किसी ने कैसा बताया और किसी ने कैसा। वाद-विवाद होता रहा पर कोई परिणाम न निकला, अन्त मे सभी ने निर्णय किया कि हाथी को सभी स्पर्श करके देखले। जैसा होगा सभी को पता चल जायेगा। यह निर्णय होना था कि सभी ने वाद-विवाद बन्द कर दिया और इस बात की प्रतीक्षा मे रहे कि कब हाथी मिले और कब वे उसे स्पर्श करके देखे और पता चले कि किस अन्धे का अनुमान सही था।

एक दिन बाजार से हाथी गुजर रहा था, बालको ने शोर मचाया कि हाथी आया हाथी आया। अन्धो ने सुना तो सभी ने एक-दूसरे से कहा चलो भाई अब देखले हाथी कैसा होता है।

सभी चल पडे और हाथी के पास जाकर सबने हाथी के शरीर को स्पर्श करके उसकी शक्ल को अनुभव करने का प्रयत्न करना आरम्भ कर दिया। किसी ने सूंड पकडा किसी ने कान, किसी ने पैर और किसी ने दुम ही पकडली और हाथ फेर-फेर कर देखने लगे।

अन्त मे जब उन सब को यह विश्वास हो गया कि अब उन्होंने हाथी को देख लिया और वे अब समझ गए कि हाथी कैसा होता है, तो वे लौट आए और एक स्थान पर बैठकर हाथी के विषय मे बाते करने लगे।

जिसने हाथी की टाग का स्पर्श किया था बोला "भाई! हाथी तो एक मोटे सतून की भांति होता है। हम बेकार ही उस

दिन लड़े मरे जा रहे थे। अब पता चला।" दूसरे ने जिसने पूंछ पकड़ी थी बोला "तो भाई! तुम भी खूब ही निकले। हाथी देखा भी और फिर भी नहीं समझे। हाथी तो एक सख्त रस्से की भांति होता है।

तीसरे ने कहा "नहीं! नहीं! हाथी तुमने भी नहीं देखा, वह तो एक ऐसे स्तम्भ की भांति होता है जो नीचे से पतला और ऊपर की ओर मोटा होता चला जाता है।" उस बेचारे ने हाथी की सूंड देखी थी।

चौथे ने हाथी के कानों को ही टटोल कर देखा था वह बोला। "तुम निरे बुद्ध ही रहे। हाथी को तुम समझ ही न पाये। हाथी तो छाज की तरह होता है। पतले और बड़े छाज की तरह।"

पांचवां बीच ही से बोल पड़ा "मुझे तो ऐसा लगता है कि तुम्हारे माथे की आंखें तो हैं ही नहीं, अक्ल की आखें भी मारी गई हैं। हाथी न स्तून की तरह होता है न रस्से की और न छाज की ही तरह। वह तो एक मोटे चिकने डण्डे की तरह होता है।" उस बेचारे ने हाथी के दांत ही देखे थे।

छठा बोला 'नहीं तुम झूठ बकते हो, कहां हाथी और कहां डण्डा। अरे भाई! वह तो एक मोटे ढोल की भांति होता है। वह इतना मोटा ढोल होता है कि मैं तो नीचे के भाग को ही देख सका। ऊपर तक तो हाथ पहुचा ही नहीं।"

फिर क्या था, बहस छिड़ गई। उनमें से कोई भी एक-दूसरे की बात मानने को तैयार नहीं था क्योंकि वे तो समझते थे कि हमने हाथी स्वयं अपने हाथ से स्पर्श करके देखा है। एक-दूसरे को झूठा कहने लगे। बात बढ़ गई।

झगड़े को सुन कर एक बुद्धिमान् व्यक्ति वहां पहुंच गया

और पूछा कि "भाई क्यो झगड रहे हो ? क्या बात है ?"

उन्होने विवाद का विषय बताया तो बुद्धिमान् ने बात ताड़ ली। उसने प्रत्येक से पूछा कि बताओ तुमने हाथी को कैसा अनुभव किया। प्रत्येक ने अपने-अपने अनुभव को बता डाला।

बुद्धिमान् व्यक्ति बोला "तुम मे से कोई झूठा नहीं है, पर तुम्हारी सभी की बात मे एक ही कमी है। तुम सब ने हाथी के एक-एक अग को छुआ और उसे ही टटोल कर देखा है। तुम सब ने जो अनुभव किया है उसे एक जगह मिला दो। उन सब अगो को मिलाकर हाथी बनता है।

और इस प्रकार उसने अन्धो को समझा कर झगडा शात किया।

इस दृष्टात के सुनाने का अभिप्राय यह है कि सघ के कितने ही अग है, उन सभी के सयुक्त होने पर सघ बनता है। यदि कोई कहे कि केवल साधुओ अथवा केवल श्रावको से सघ चल जाये तो यह बात गलत है। सघ कितने ही भिन्न-भिन्न अनुभवो और ज्ञान का सयुक्त स्वरूप होता है। और जिस प्रकार हाथी हांकने के लिए एक पीलवान की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार सघ को चलाने के लिए एक सघ स्थविर की आवश्यकता है। यह स्थविर इस योग्य होना चाहिऐ कि सघ जैसे हाथी को अपने कन्ट्रोल मे रख सके। आप जानते है कि हाथी के पीलवान को हाथी का बडा ध्यान रखना पडता है। वही हाथी जो पीलवान के पैरो के सकेतो पर चलता है, यदि उसके साथ व्यवहार मे अथवा आहार आदि मे कुछ गडबड हो जाय तो फिर पीलवान तक की भी खैर नहीं रहती।

इसी प्रकार सघ के जो नियम है वे सब निभाने आवश्यक है। स्थविर भी तभी तक स्थविर है जब तक संघ है।

संघ स्थविर पद उतने ही महत्व का है जितना कि सेनापति। यदि सेनापति मूर्ख हो तो सेना को कहीं भी ले जाकर नष्ट कर देगा, और प्रथम तो सेना में अनुशासन ही नहीं रह सकता। इसी प्रकार संघ स्थविर के बुद्धिमान् न होने की दशा में सारे संघ को क्षति पहुँचेगी।

संघ स्थविर जब तक अपने कर्तव्य को निभाता है, संघ उस का आदर करता है, उसके प्रत्येक आदेश का पालन करना अपना धर्म समझता है पर जब संघ स्थविर ही अपने कर्तव्य से गिर जाता है, संघ उसका आदर छोड देता है और उसके आदेश की कौडी भी नहीं उठती। यदि संघ में उस समय तक धर्म ज्ञान होता है तो वह उस संघ स्थविर को हटा देता है।

लोकोत्तर संघ स्थविर लोकोत्तर संघ की व्यवस्था करता है। लोकोत्तर संघ में साधु-साध्वी, श्रावक और श्राविका हैं उनकी धार्मिक व्यवस्था करने वाले आचार्यादि अग्रणी मुनिराजों को लोकोत्तर संघ स्थविर कहते हैं।

लोकोत्तर संघ स्थाविर इन सब बातों की देख-भाल रखता है कि संघ में कोई विग्रह न फैल जाय और साधुओं के बीच अथवा श्रावकों के बीच मनोमालिन्य न उत्पन्न होने पाये। क्योंकि मनो-मालिन्य से संघ भ्रष्ट हो जाता है। पर लोकोत्तर संघ स्थविर का भी धर्म है कि वह लोकोत्तर संघ धर्म का और स्थविर के नियमों का पूर्ण पालन करे।

एक महात्मा बडा रूपवान् था, उसके ललाट पर ब्रह्मचर्य का तेज था और नेत्रों में था ओज। वह भिक्षा के लिए एक घर में गया, तो एक स्त्री उसे देखकर उस पर मुग्ध होगई और घर का बाहर का दरवाजा बन्द कर लिया। पर वह एक सच्चा ब्रह्मचारी था। वह पाप करने को तैयार न हुआ और बाहर आकर यह

सोचकर कि किसी ने देख लिया होगा तो क्या कहेगा ? उसने आत्महत्या करली। साधुओं ने उसका अन्तिम संस्कार कर दिया पर किसी को कारण ज्ञात न हुआ।

स्त्री को बडी लज्जा आई और वह आत्मग्लानि के मारे मरी जा रही थी। उसे पश्चात्ताप हो रहा था कि उसके पाप ने एक महात्मा की जान ले ली। अन्त में उसने प्रायश्चित्त करने का निर्णय किया।

वह आचार्य के पास पहुँची और जाकर अपने पाप को बताया और प्रायश्चित्त कराने की प्रार्थना की।

आचार्य ने उसे टालने के लिए दूसरे दिन आने को कहा। और दूसरे दिन कुछ प्रतिष्ठित श्रावकों को बुलाकर छुपाकर बैठा दिया। उक्त स्त्री आई।

आचार्य जी ने कहा कि वह सारी घटना पुन सही-सही सुनाओ।

स्त्री ने घटना दोहराई और अन्त मे रोकर कहा कि मुझ से यह भयकर पाप होगया है, आप प्रायश्चित्त का उपाय बतादे। वह गिडगिडाने लगी। उसने अपनी पूरी आलोचना की।

श्रावकों ने गुप्त स्थान में से बाहर निकलकर उस स्त्री से कहा कि बेटी तुम धन्य हो, तुमने अपनी आलोचना करदी और प्रायश्चित्त के लिए तैयार हो। अब तुम घर जाओ।

और फिर आचार्य ने कहा कि आपने हमें बुलाकर हमारे सामने आलोचना कराई, यह आपने धर्म का उल्लघन किया है, इसलिए इसका दण्ड लो वरना आचार्य पद से हटो।

धर्म के नियमों से हटने पर हमें किसी का लिहाज नहीं करना चाहिए। उस आचार्य ने गलती की तो गलती का दण्ड भी दिया जाना चाहिए था। इसी प्रकार यदि आज भी सभी श्रावक

धर्म के इतने पक्के हों तो संघ धर्म की रक्षा हो सकती है। श्रावक धर्म पालन करें तो संघ स्थविर की क्या मजाल है कि वह अपने धर्म से गिरे और यदि संघ स्थविर अपने धर्म पर अटल है तो फिर श्रावक धर्म का उल्लंघन नहीं कर सकते।

नियमों के प्रतिकूल चलने से बड़े-बड़े राज्य, बड़े-बड़े व्यापार समाप्त हो जाते हैं। अतः नियमोवृत्ति होनी आवश्यक है। नियमोन्नति का अर्थ है संघ धर्म का पालन करना। पर नियमोवृत्ति संघ स्थविर में होगी तभी संघ में चलेगी।

जिस प्रकार लौकिक संघ स्थविर को संघ धर्म से गिरने वालों को दण्ड देने का अधिकार है इसी प्रकार लोकोत्तर संघ स्थविर को धर्म का उल्लंघन करने वालों को दण्ड देने का पूर्ण अधिकार है। वह किसी भी साधु द्वारा नियम भंग होने पर उसे दण्ड दे सकता है।

कभी-कभी ऐसा भी होता है कि किसी ने अपराध किया और संघ स्थविर उसे दण्ड देने को हुए तो कितने ही और लोग अपराधी के पक्ष में होकर आचार्य के विरुद्ध मोर्चा लगा देते हैं और अपराधी को दण्ड भोगने से बचाने की योजनाएं बनाकर संघ में फूट डालने की चेष्टा करते हैं। ऐसे समय यदि आचार्य बुद्धिमान् और अनुभवी है तो वह अपराधी के पक्षपातियों की योजनाएं सफल नहीं होने दे सकता, वह अपने प्रभाव और आत्मबल से अपराधी टोले को परास्त कर देगा। परन्तु यदि आचार्य बुद्धिमान् नहीं है तो फिर संघ में विग्रह पैदा हो जाता है। जो संघ को ही खतरे में डाल देता है। ऐसे समय श्रावकों और संघ धर्मी त्यागियों का कर्तव्य हो जाता है कि वे संघ स्थविर का साथ दें।

* अष्टम सोपान *

सिद्धान्त धर्म (सूत्र धर्म)

सूत्र एक आधार है, मनुष्य के चरित्र का, और मनुष्य का चरित्र और मनुष्य के धर्म ही मानव की आत्मा को निर्मल बनाकर सुख प्रदान करते हैं। परन्तु भगवान् कहते हैं कि सब की व्यवस्था ठीक नहीं होगी तो सिद्धान्त धर्म नहीं चल सकता। भगवान् ने कहा है कि स्वावलम्बी बनो। मनुष्य यदि अपने सिद्धान्तों को आधार बनाकर चारित्र धर्म निभाता है तब वह मोक्ष प्राप्त करता है।

मोक्ष पथ पर ले जाने वाले सिद्धान्त सर्वज्ञ भगवान् ने बनाए है और उन सिद्धान्तों को निभाना ही सिद्धान्त धर्म कहलाता है।

सर्वज्ञ देव ही ऐसे सिद्धान्त बना सकते हैं जो मानव को मुक्ति पथ पर ले जायें। अल्पज्ञों द्वारा रचित सिद्धान्त कभी मोक्ष प्राप्ति का साधन नहीं बन सकते। क्योंकि सर्वज्ञ द्वारा बनाए गए नियम कभी नीचे नहीं झुकते। वे अटल होते है। परन्तु अल्पज्ञ के सिद्धान्त में लचक आनी स्वाभाविक ही है। अल्पज्ञ कहेगा कि उक्त परिस्थिति में उक्त सिद्धान्त का त्याग किया जा सकता है। पर सर्वज्ञ सिद्धान्तों के बारे में ऐसी धारणा भी नहीं जा सकती। वह नियम सिद्धान्त नहीं कहा जा सकता

जिसमें परिवर्तन हो सकता है। इसलिए यह बात माननी ही होगी कि सिद्धान्त कभी समझौता परस्त नहीं होते और इसलिए उनका पालन करना ही वास्तव में धर्म है।

भगवान् कहते है कि मै कोई सिद्धान्त नया नहीं लाया हूँ। यह अनादि है। जो कभी-कभी मानव समाज के ही भटकाव के कारण लुप्त हो जाते है और जब मानव समाज से वे लोप हो जाते है, तब तीर्थंकर आकर उन्हे पुन स्मरण करते हैं। क्योंकि जब भटकाव आता है तभी किसी मार्ग प्रदर्शक की आवश्यकता होती है। और ऐसे समय मार्ग प्रदर्शनार्थ आने वाले को तीर्थंकर धर्मावतार कहते हैं।

भगवान् ने कहा है कि मैंने पहले २७ जन्मों मे आत्मा को डाला है और ३० वर्ष तक गृहस्थी मे रह कर पूर्व जन्मों के ज्ञान का पालन किया और फिर अपने त्याग व तपस्या से केवल (सम्पूर्ण) ज्ञान प्राप्त किया। तदुपरान्त इन अनन्त एव अनादि सिद्धातों के प्रचार मे लगा।

शास्त्रो ने बताया है।

'सगेय अम्मा सगेय अनम्मा'

एक आत्मा है एक अनात्मा।

आत्मा अनन्त है और प्रकृति भी अनन्त हैं। आत्मा, परमात्मा ओर प्रकृति (matter) यह तीनों अनादि है। जब तक आत्मा पर मल अर्थात् आवरण रहता है तब तक वह ससार मे भटकती है, पर जब आत्मा अपने ऊपर आवरण दूर करके निर्मल एव विशुद्ध हो जाती है तब वह परमात्मा हो जाती है। आत्मा प्रकृति के साथ भी निर्मल है, पर कीचड़ मे पडी है।

आत्मा का समझना इतना कठिन नहीं कि जितना प्रकृति का। आत्मा तप करते-करते देव का रुप ग्रहण कर लेती है।

सुख-दुःख आत्मा के साथ उसी समय तक है जब तक आत्मा कीचड मे है। परन्तु जो मिला है वह जा भी सकता है। जो कीचड अथवा मल आत्मा के साथ लगा है वह अलग भी हो सकता है। मल को दूर करने के लिए सर्वज्ञ देव ने सिद्धान्त अथवा सूत्र बनाए है, उनका ज्ञान और उन पर अमल करना ही सिद्धान्त धर्म कहलाता है।

मनुष्य के भाव शुभ हो तो शुभ प्रकृति आत्मा पर आ जाती है। अशुद्ध भाव होने पर अशुद्ध प्रकृति आ जाती है। शुद्ध भाव आने पर आत्मा पर कोई प्रकृति नहीं आती।

आप पूछ सकते है कि अशुद्ध प्रकृति अथवा शुभ प्रकृति अशुद्ध और शुभ भाव आते ही आत्मा पर कैसे आ जाती है? तो मै आप से कहूँगा कि आप फोटोग्राफी पर ध्यान दे। कैमरे के सामने जो वस्तु जैसे भी रूप मे होती है, जब बटन दबता है उसका वैसा ही चित्र आ जाता है। इसी प्रकार अशुभ प्रकृति हुई तो तुरन्त ही पापमयी प्रकृति आत्मा पर आ जाती है और मनुष्य को पता भी नहीं चलता। डाक्टरी उसूल के अनुसार भोजन के समय मनुष्य के जैसे भी भाव होते है वैसा ही उस भोजन का रक्त बनता है।

आप बाग को ही ले। बाग मे कडवे और मीठे तथा खट्टे सभी प्रकार के फलो के वृक्ष है। पानी तो सारे बाग पर एक ही प्रकार का बरसेगा। वर्षा हुई और पानी बहा और प्रत्येक वृक्ष को एक ही प्रकार के पानी से खूराक मिली। पर एक ही प्रकार की खूराक मिलने पर भी किसी के फल कडवे किसी के मीठे और किसी के खट्टे क्यो हो जाते है?

इसका रहस्य है कि जिसमे जैसे परमाणु अधिक होगे उसे मिलने वाली खूराक के छोटे-छोटे परमाणु भी उसी प्रकृति के

हो जायंगे। बडे परमाणु छोटे परमाणुओं को अपना ही सा बना लेते है। अत जिसके अन्दर जितना पाप है उसके भाव भी उतने ही पापमय होते जाते हैं और उतना ही वह दुखी रहता है। पर जिस में पुण्य अधिक है वह उतना ही सुखी रहता है।

कर्तव्य करना और कोई इच्छा न करना ही शुभ भावना कहलाती है। इस से आत्मा पर कोई चित्र नहीं खिंचता। कोई आवरण नहीं आता आता आत्मा पर।

आप ने देखा होगा कि बरसाती हवा से लोहे पर जग लगते-लगते लोहा खत्म तक हो जाता है। पर ताँब पर बरसाती हवा का पीला दाग ही पड़ता है, जो कि आसानी से साफ भी हो सकता है। हाँ, बल्लौर पर बरसाती हवा का कोई भी प्रभाव नहीं पड़ता। न जग लगता है और न दाग ही पडता है। इसी प्रकार आत्मा के भाव से उस पर किसी प्रकृति के प्रभाव होने अथवा न होने की बात निर्भर करती है। शुभ भावो का परिणाम मिलता है पुण्य के रूप मे, अशुद्ध भावो का पाप के रूप में, और शुद्ध भावों का धर्म के रूप में।

धर्म ही आत्मा के ऊपर जो मल होता है उसे साफ कर देता है और आत्मा निर्मल होते-होते अवतार की श्रेणी मे पहुँच जाती है, और अन्त मे परमात्मा की श्रेणी को।

अर्हन्त भगवान् ने आत्मा को देव, अथवा अवतार और परमात्मा की श्रेणी तक पहुँचाने के कुछ उपाय बताए हैं जो सूत्र कहलाते हैं।

आत्मा को निर्मल करने के लिए पाच धर्म अथवा सूत्र हैं।

(१) अहिंसा, (२) सत्य, (३) अचौर्य, (४) ब्रह्मचर्य, (५) अपरिग्रह।

इनमें से चार अहिंसा की पुष्टि के लिए हैं।

पाँच पाप बताए गए है।

(१) हिंसा, (२) असत्य, (३) चोरी, (४) दुराचार, (५) परिग्रह।

और इन सब को परखने की कसौटी सत्य है। यदि कर्म कसौटी पर कस कर धर्म निकलते है, यदि मनुष्य के कर्म सत्य की कसौटी पर धर्म प्रमाणित होते है तो वह उसकी आत्मा को अवश्य ही निर्मल करेगे अन्यथा नहीं। इसलिए कहा गया है कि '

'सत्यमेव भगवान्'

अर्थात् सत्य ही भगवान् है।

भगवान् की शास्त्रो मे व्याख्या इस प्रकार की गई है :—

भगवान् —भग' कोऽर्थ. जगदैश्वर्यज्ञानं वा अस्ति अस्य इति भगवान्।

इस जगत् का सब एश्वर्य और ज्ञान जिस परमात्मा को है उस का नाम भगवान् है।

और जिनका अर्थ यूँ कहा गया है कि "जयति रागद्वेप मोहादिशत्रन् इति जिन" अर्थात् राग द्वेप मोहादि शत्रुओ को जीतने वाला जिन कहलाता है और उनके अनुयायी को 'जैन' कहते है। इसलिए जैन कोई सम्प्रदाय नहीं बल्कि जैन एक धर्म है। जिसके लिए भगवान् द्वारा बनाए गए कुछ सूत्र है, कुछ सिद्धान्त है, जिनका पालन सूत्र धर्म कहलाता है।

शास्त्रकारो ने कहा है कि—

ना दसणस्य नाण नाणेण विना न हुति चरण गुणा
अगुणिस्स नत्थि मोक्खो नत्थि अमोक्खस्य निव्वाण

और

सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः

अर्थात् दर्शन (श्रद्धा) से रहित को ज्ञान नहीं होता, ज्ञान बिना

चारित्र के गुण प्रगट नहीं होते, चारित्र के गुणो बिना कर्मों से मुक्ति नहीं मिलती और कर्मों से मुक्त हुए बिना सिद्ध पद की प्राप्ति नहीं होती।

अत श्रद्धा ही सम्पूर्ण सुखों की मूल है। गीता मे बतलाया गया है कि "श्रद्धामयोऽय पुरुष। पुरुष श्रद्धामय बन जाय, पुरुष श्रद्धा का सागर हो जाय, पुरुष के रोम-रोम मे धर्म की श्रद्धा चमक उठे।

जहा विश्वास है वहीं सम्पूर्ण सुख है। विश्वास और श्रद्धा पर ही ससार का कार्य चल रहा है। भगवान् रामचन्द्र, महावीर और बुद्ध आदि की कार्यसिद्धि का एक मात्र मूल मत्र विश्वास था। नपोलियन बोनापार्ट का तो सारा शौर्य ही विश्वास पर आधारित था और वह तो यहा तक कहता था कि ससार मे 'असम्भव' कार्य कोई नहीं है। असम्भव शब्द मूर्खों के शब्द-कोष मे होता है। उसके यह शब्द उसके असीम विश्वास के कारण थे।

इसलिए सर्वप्रथम मनुष्य को भगवान् द्वारा बताए गए पथ मे और उनके बताए सिद्धान्तो मे विश्वास एव श्रद्धा होनी चाहिए।

"तत्त्वार्थश्रद्धान सम्यग् दर्शनम्"

तत्त्वो पर सत्य रूपेण श्रद्धा रखना सम्यक्त्व कहलाता है। और सम्यक्त्व का स्वरूप शास्त्रो मे इस प्रकार बताया गया है।

तहि याण तु भावाण सब्भावे उव एसण।
भावेण सद्द हतस्स सम्मत्त त वियाहिय॥

उत्तराध्ययन अ० २८ गा

अर्थात्—जीवाजीवादि पदार्थों के सद्भाव मे .
या किसी के उपदेश से भावपूर्वक जो श्रद्धा हो उसे

कहते हैं।

अतः मनुष्य के लिए जीवन मरण के दुखों से मुक्ति प्राप्त करने के लिए सम्यक्त्व आवश्यक है और सम्यक्त्व ज्ञान तथा सम्यक्त्व श्रद्धा ही धर्म पालन का मूल है। यही सिद्धान्त धर्म का आधार है।

सर्वज्ञ देव द्वारा बनाए गए सिद्धान्तों का पालन करने वाले सूत्रधर्मी दो प्रकार के होते है। एक सर्वव्रती, जिन्हे महात्मा अथवा त्यागी कहते है और जो पाच धर्मो का पालन करते है। दूसरे देशव्रती जो कि अणु व्रतो का पालन करें।

शास्त्रों ने सूत्रधर्म अर्थात सिद्धान्त धर्म अथवा समकित धर्म के आठ आचार बताए गए है।

निस्सकिय, निक्कखिय, निव्वितिगिन्छ अमूढ दिट्ठीय।
उव वूह, थिरीकरण, वच्छल्ल, पभावणेऽट्ठ ते॥

टीका—शङ्कन सङ्कित-देश सर्व शङ्कात्मक तस्याभावो नि.शङ्कितं, एव काङ्क्षण काङ्क्षित-युक्ति युक्त वादहिंसाद्यभिधायित्व च शाक्योलूकादि दर्शनान्यपि सुन्दराणीत्येवमन्यान्य दर्शन ग्रहात्मकं तदभावो निष्काङ्क्षित, प्राग्वदुभयत्र विन्दुलोप, विचिकित्सा फल प्रति सन्देहो यथा किमियत. क्लेशस्य फल स्यादुत नेति ? तन्त्रन्यायेन 'विद' विज्ञा. तेच तत्त्वत साधव एव तज्जुगुप्सा वा यथा किममी यतयो मलदिग्धदेहा ? प्रासुकजलस्नाने हि क इव दोष: स्यादित्यादिकानिन्दा तदभाव. निर्विचिकित्स निर्जुगुप्स वा, आर्षत्वाच्च सूत्र एव पाट 'अमूढ.' ऋद्धिमत्कुतीर्थिक दर्शनेऽप्यनवगीतमेवास्मद्दर्शनमिति मोहविरहिता सा चासौ दृष्टिश्च बुद्धिरूपा अमूढदृष्टि, स चाय चतुर्विधोऽयान्तर आचार. वाह्यं स्वाह—

'उववूह' त्ति, उपवृंहणामुपवृंह-दर्शनादि गुणान्वितानां सुलब्ध जन्मानो यूयं युक्तं च भवादृशामिदमित्यादि वचोभिस्तत्तद्गुण

परिवर्द्धन सा च स्थिरीकरण च अभ्युपगम (त) धर्मानुष्ठान प्रति विषीदता स्थैर्मापादन मुपबृंहास्थिरीकरणो, वत्सलभावो वात्सल्य साधर्मिकजनस्य-भक्तपानादिनोचित प्रतिपत्तिकरण तच्च प्रभावना च—तथा स्वतीर्थोन्नति हेतु चेष्टासु प्रवर्त्तनात्मिक वात्सल्य प्रभावने, उपसहार माह अष्टैते दर्शन चारा भवन्तीति शेष. एभिस्वाष्टभिराचार्य प्राणास्या स्योक्त फल सम्पादकतेति भाव, एतच्च ज्ञानाचाराद्युपलक्षक, यद्वा दर्शनस्यवै यदाचाराभिधान तदस्यै चोक्त न्यायत मुक्तिमार्ग मूलत्व समर्थनार्थ मिति सूत्रार्थ ॥

अर्थ—शङ्का करने को शङ्कित कहते है। देश से या सर्व से शङ्का के भाव को नि शङ्कि कहते है। इच्छा करने का नाम कांक्षित है, युक्तियुक्त होने और अहिंसादि के प्रतिपादक होने से बौद्ध दर्शन तथा उलूकादि दर्शन भी अच्छे ही है, इस प्रकार अन्य दर्शनों मे जो उपादेय बुद्धि है उसके अभाव को निष्कांक्षित कहते हैं। विचिकित्सा यानी "फल होगा या न होगा?" इस प्रकार सशय करना, अथवा ये साधु लोग मलीन देह होकर क्यो रहते है, यदि अचित जल से ये स्नान करले,तो क्या दोष होगा? इस प्रकार साधुओं की विचिकित्सा है। उसके अभाव को निर्विचिकित्सा कहते है। धनवान् अन्य तीर्थो को देखकर तथा उनके आडम्बर को देखकर भी, मेरा दर्शन उत्तम ही है, ऐसी मोह रहित जिसकी बुद्धि है वह अमूढदृष्टि कहलाता है, यह चारो व्यवहार अन्तरव्यवहार है। अब वाह्य व्यवहार कहे जाते है। उत्साह वृद्धि का नाम उपबृंहा है। जैसे कि सम्यक्त्वादि गुणो से युक्त पुरुषो के गुणो को यह कह कर बढाना कि 'आप का जन्म सफल है, आप लोगों के सदृश पुरुषो के लिए यह कार्य उचित ही है।' इस प्रकार उनके उत्साह को बढाना उपबृंहा कहलाती है। (स्थिरीकरण) अर्थात् स्वीकार किए हुए धर्म के अनुष्टान करने मे विषाद

करते हुए पुरुष को स्थिर बनाना, स्थिरीकरण कहलाता है। (वात्सल्य) अपने सहधर्मी-जन को भात-पानी आदि उचित सहायता करना, वात्सल्य है। (प्रभावना) अपने धर्म की उन्नति की चेष्टा में प्रवृत्ति होना, प्रभावना कहलाती है। यह आठ, दर्शन के आचार होते हैं। इन आठो का आचरण करने वाला पुरुष, बतलाए हुए फल का सम्पादक होता है। यह (आचार) ज्ञानाचार आदि का भी उपलक्षण है। अथवा दर्शनाचार ही मुक्ति मार्ग के मूल है। इसका समर्थन करने के हेतु इन दर्शनाचार का वर्णन किया गया है।

उपरोक्त आठ आचार सूत्र धर्म के है। इनमें से प्रथम आचार है, "नि शङ्क बनो"। अर्थ यह है कि जो मनुष्य श्रद्धा मे, ज्ञान मे, शास्त्रो मे और धर्म कार्यो आदि मे सन्देह करता है वह निश्चय को नहीं पहुच सकता।

साहित्य में शङ्का अथवा सशय के बारे मे कहा गया है कि—

'न सशयमनारुह्य नरो भद्राणि पश्यति।'

अर्थात्—जब तक मनुष्य शङ्का पर आरोहण नहीं करता तब तक उसे अपना कल्याण मार्ग दिखाई नहीं देता।

और दूसरे स्थान पर कहा गया है कि—

'सशयात्मा विनश्यति'

अर्थात्—सशय करने वाले का ज्ञानादि आत्मा नष्ट हो जाता है, शास्त्रो की यह दो विरोधी बाते आपको चक्कर मे डाल देगी। प्रश्न उठता है कि एक-दूसरे की विरोधी बाते क्यों कही गई? शास्त्रो में कई स्थानो पर आता है कि 'जाय संशय' अर्थात् गौतमादि गणधरो को सशय उत्पन्न हुआ। यदि सशय अच्छा है तो सशय को समकित का दोष क्यो कहा गया है? शास्त्र की भावना को समझने के लिए इस शङ्का का समाधान आवश्यक है।

जिस समय नट (कला वाज) रस्से पर अपनी कला का प्रदर्शन करने के लिए चलता है तो रस्से को झटका देकर देख लिया जाता है कि कहीं रस्सा उखड़ तो नहीं जायगा।

और जिस समय किसी जकशन से गाडी सफर पर भेजी जाती है, प्रत्येक डिब्बे के पहियों को हथोडी लगा-लगा कर रेल-कर्मचारी देख लेते हैं कि कहीं कोई खरावी तो नहीं है। इञ्जन की भी देख-भाल करली जाती है।

परन्तु यदि नट यह शङ्का करके कि रस्सा तो उखड ही जायेगा, इसलिए कला मत दिखाओ और रेलवे कर्मचारी यह सोचकर कि इञ्जन अथवा डिब्बे तो पटरी से उतर ही जायेंगे, कोई न कोई खरावी तो होगी ही, ट्रेन को ही न छोडे तो यह उनकी भारी भूल होगी। इसलिए छद्मस्थावस्था तक तो सशय रहता ही है और उस सशय को दूर करते रहना और केवली ज्ञान तक उसे दूर करना अच्छी बात है, इसमें दोष नहीं। पर सशय में डूबे रहना, किसी निर्णय तक न पहुचना गलत है और इसके लिए 'सशयात्मा विनश्यति' का सिद्धान्त पूरा होता है।

यदि व्यक्ति सशय में ही खो जाय तो वह ससार में कुछ कर ही नहीं सकता। सशय में डूब जाना मनुष्य को वहम हो जाना होता है और आप जानते ही है कि इस वारे मे एक लोक कहावत बनी हुई है कि 'वहम की दवा तो हकीम लुकमान के पास भी नहीं थी।' वहम तो आदमी को ले डूबता है।

आप जानते हैं कि आजकल हवाई जहाजो की कितनी ही दुर्घटनाएँ होती रहती है, रेलवे ट्रेन उलट जाती है। खानो मे दुर्घटनाएँ हो जाती हैं, सैकड़ों मर जाते हैं। कारखानों की मशीनों मे मजदूरो के हाथ आदि कट जाते है। व्यापारो में दिवाला निकल जाता है। ओलों अथवा सूखा से फसलें नष्ट हो

जाती है। तो फिर क्या आदमी हवाई जहाजों और ट्रेन की सवारी, खानो और कारखानो मे काम करना, व्यापार और कृषि करना छोड़ दे ?

आप कहेगे ऐसा करना तो मूर्खता होगी। शास्त्र ऐसे वहम अथवा सशय की मनाही करता है और भगवान्, आत्मा और प्रकृति क्या है, ऐसा क्यो होता है, शुभ भाव से शुभ प्रकृति, अशुद्ध से अशुद्ध प्रकृति आत्मा पर क्यो आ जाती है? यह आत्मा निर्मल हो सकती है या नहीं ? हो सकती है तो कैसे ? इस प्रकार के सशय करना तो ज्ञान की इच्छा को जन्म देता है, इसलिए शास्त्र अनुकूल है।

एक बादशाह ने एक पुस्तक मे ऐसा पढ़ा कि उक्त आदमी का शरीर काच का हो गया था। बादशाह ने समझ लिया कि मनुष्य का शरीर काच का भी हो सकता है और एक दिन उसे यह सशय हो गया कि उस के हाथ की एक उँगली काच की हो गई है। इस लिए इस भय से कि कहीं उस की वह उँगली टूट न जाय अपने हाथ को अपने शरीर से रगड न लगने के लिए फैलाये रहता, कपड़ा तक उस पर न पडने देता और जब चलता तो सभी को कहता "बचो मेरी उँगली से मत टकरा जाना", और जब कोई करीब आता तभी उसी पर क्रोधित हो जाता।

दूसरे दिन उसे सशय हुआ कि उस की दूसरी उँगली काच की हो गई है। धीरे-धीरे उस ने समझ लिया कि उसका पूरा पंजा ही कांच का हो गया है। चिन्ता के मारे वह सूखने लगा। प्रसिद्ध-प्रसिद्ध वैद्य उस की चिकित्सा को आये। उन्होने पजे का टैस्ट करने के लिए उसे छूना चाहा तो इस भय से कि कहीं पजा टूट न जाय, बादशाह ने पजा किसी को न छूने दिया। वैद्य दूर से देख कर कह देते कि पजा कांच का नहीं है। पर बादशाह

को उनकी बात पर विश्वास ही नहीं हुआ और धीरे-धीरे दिन बीतने लगे। सारा राजदरबार बादशाह की दशा देख कर चिन्तित रहता था। अन्त में कुछ दिनों पश्चात् समझ लिया कि उस का सारा शरीर ही कांच का हो गया है। इस लिए वह नरम गद्दे पर लेटा रहता, करवट भी बडी सावधानी से धीरे-धीरे सम्भल-सम्भल कर बदलता। खाना भी उससे भर पेट न खाया जाता क्योंकि उसे भय रहता कि कहीं हाथ होंठ से न टकरा जाय। ऐसा हो गया तो होंठ टूट जायेगा।

इस प्रकार वह मरणासन्न पडा था। सारे राज्य में घोषणा कराई गई कि जो बादशाह को ठीक कर देगा उसे मालामाल कर दिया जायेगा। एक बुद्धिमान् व्यक्ति जिनका चिकित्सा कार्य से दूर का भी सम्बन्ध न था, दरबार में पहुँचा और उसने बादशाह को देखने की इच्छा प्रगट की। बादशाह को देखकर और सारे हालात सुनकर वह बोला कि बादशाह सशय के शिकार है, मैं इनकी चिकित्सा कर सकता हूँ। मुझे इनके पास रहने की आज्ञा दे दी जाय।

आज्ञा मिलने पर बुद्धिमान् व्यक्ति वापिस चला गया और कई दिन बाद उसने एक दरबारी के हाथों बादशाह के पास सूचना भिजवाई कि एक और आदमी की उँगली काच की हो गई है।

बादशाह ने समाचार सुनकर कहा कि देखा, वैद्यों को विश्वास ही नहीं आता था। देखो एक और आदमी की उँगली काच की हो गई।

और बादशाह ने उस व्यक्ति से मिलने की इच्छा प्रगट की।

बुद्धिमान् व्यक्ति वहा पहुँचा और उसने बादशाह को एक उँगली दिखाकर कहा कि यह उँगली काच की हो गई है। जब

बादशाह ने उसकी उँगली छू कर देखनी चाही, उसने हाथ खींच कर कहा कि नहीं नहीं, छूना नहीं, उँगली टूट जायेगी।

फिर क्या था? बादशाह को विश्वास हो गया कि वास्तव में उसकी उँगली काच की ही हो गई है और उस व्यक्ति को अपने पास ही रख लिया।

दूसरे दिन बुद्धिमान् बोला कि उसकी दूसरी उँगली काच की हो गई है और धीरे-धीरे शरीर के दूसरे अङ्गों को काच का बताने लगा। अन्त में एक दिन उसने कहा कि उसका सारा शरीर ही काच का हो गया है। बादशाह को बडी प्रसन्नता हुई कि उस जैसा एक और भी व्यक्ति है।

कुछ दिनों बाद एक दिन बुद्धिमान् व्यक्ति ने प्रात ही बादशाह को जगा कर कहा कि आज उसने एक स्वप्न देखा कि उसकी एक उँगली ठीक हो गई है। वह काच की नहीं रही। बादशाह को विश्वास नहीं आया। बुद्धिमान् व्यक्ति ने अपनी उस उँगली को मोड कर दिखाया कि वास्तव में उँगली ठीक हो गई है और परीक्षा देने के लिए कहा कि लाइये, आप और मैं अपनी-अपनी इस उँगली को धीरे से लडा कर देखे। इस प्रकार पता चल जाएगा।

बादशाह ने डरते-डरते धीरे-धीरे अपनी उँगली को लडाया। जब दोनों उंगलियों में से कोई उँगली न टूटी तो बुद्धिमान् बोला "बादशाह सलामत! हमारी दोनों की यह उँगली ठीक हो गई दीखती है।" पर बादशाह को उसकी बात पर विश्वास न आया, दूसरे दिन उस व्यक्ति ने कहा कि 'लीजिए! आज दूसरी उँगली ठीक हो गई।' और वह भी लडाकर देखी।

प्रतिदिन वह किसी अग को कह देता कि वह ठीक हो गया है। राजा धीरे-धीरे सोचने लगा कि जब इस व्यक्ति के अंग

ठीक हो रहे हैं तो मेरे भी हो सकते हैं। इस भावना का जाग्रत होना था कि बुद्धिमान् व्यक्ति की बातों पर बादशाह को कुछ-कुछ विश्वास होने लगा।

एक दिन बुद्धिमान व्यक्ति ने कहा "हजूर आप को खुशखबरी सुनाऊं ?"

बादशाह ने पूछा क्या ?"

"मैं बिल्कुल ठीक हो गया हूँ ?" वह बोला—

बादशाह को बड़ा आश्चर्य हुआ। पर विश्वास न आया। अन्त में बुद्धिमान् व्यक्ति अनायास ही बादशाह के ऊपर गिर पड़ा और जान बूझकर अपने हाथ, पैरों सिर नाक, कान आदि को उसके शरीर से लड़ाने लगा। राजा ने डर के मारे आंख मूंद ली। पर वह महसूस करता रहा कि उसके सारे शरीर से उस व्यक्ति का शरीर टकरा रहा है।

अन्त में वह बुद्धिमान व्यक्ति उठकर ठहाका मार कर हंसने लगा। बादशाह ने यह देखने के लिए कि देखूँ क्या बात है ? आंखे खोली। तो वह बुद्धिमान व्यक्ति बोला "बादशाह साहब। उठिये, उठिये ! जल्दी उठिये" और जबरदस्ती बादशाह को उठा कर इधर से उधर खूब घुमाता फिरा। गिराया उठाया। बादशाह बहुतेरा चिल्लाता रहा पर उसने एक न सुनी।

थोड़ी देर इसी प्रकार करने के उपरान्त बुद्धिमान् बोला "यह बड़े मजे की बात है कि मैं भी ठीक हो गया और आप भी। कांच होता तो कोई अंग तो टूटता। पर आपका कोई अंग भी नहीं टूटा।"

राजा ने अपने शरीर को बड़े ध्यान से देखा। तब उसे भी विश्वास हुआ कि वास्तव में वह ठीक ही हो गया है।

यह दृष्टान्त मैंने आपको संशय से होने वाली दुर्दशा को दर्शाने

के लिए सुनाया है। सशय कितने अनर्थकर डालता है। यह आपने इस दृष्टात से समझ लिया होगा। यह तो था एक ऐसा सशय जिसे एक बुद्धिमान् व्यक्ति ने दूर कर दिया। पर यदि कोई धर्म मे शका करने लगे कि जाने भगवान् है भी या नहीं, सूत्र धर्म निभाने से, सिद्धान्तो पर आचरण करने से परमात्मा की गति को मै पहुच भी सकूंगा या नहीं। सत्य बोलने से कहीं मेरा अहित ही अहित और नुकसान ही नुकसान हुआ तो क्या होगा? ऐसी शका मनुष्य को धर्मानुकूल नहीं चलने देती। इसलिए शास्त्र निशङ्क होने को कहते है।

कोई व्यक्ति यह कहे कि इस बात का क्या प्रमाण है कि जैन शास्त्रो मे बताए गए सिद्धान्त ही मनुष्यों की आत्मा की निर्मलता के अत्युत्तम उपाय है? तो उसकी यह शङ्का ही उसे जैन धर्म के सिद्धान्तो पर विश्वास करने से रोकती रहेगी। यद्यपि उसकी यह शङ्का निर्मूल और निराधार है। क्योंकि यह तो ऐसा ही प्रश्न है कि उक्त नौका जो दूसरो का नदी के पार पहुँचा चुकी है, मुझे भी नदी पार पहुँचा देगी, इसका प्रमाण क्या है? यह ठीक है कि जब वह उस नौका मे बैठकर नदी के पार गया ही नहीं तो फिर सिवाय यह कहने के कि इस नौका के द्वारा ही कितने व्यक्ति नदी पार जाते है और कोई प्रमाण नहीं दिया जा सकता। जैन धर्म के जो सिद्धान्त है वे अपना कर देख लिए जायें यदि उनसे आत्मा का शांति मिलती हो तो इन सिद्धान्तो के लिए फिर किसी प्रमाण की आवश्यता नहीं रहती। जैसे जैन धर्म कहता है कि चोरी मत करो। शका करने वाले से कोई पूछे कि चोरी करना अच्छा है या बुरा? तो वह चाहे चोरी करता ही हो पर कहेगा यही कि चोरी करना बुरा है। इसका अर्थ यह हुआ कि यह एक ऐसा सत्य है जिसे झुठलाया ही नहीं जा सकता।

अहिंसा ही मानव की आत्मा को शांति प्रदान करती है। इस सिद्धान्त को यदि कोई यह कह कर चुनौती देने लगे कि यूरोप के देश तो अहिंसावादी नहीं, फिर वे सुखी क्यों हैं, वे उन्नति क्यों कर रहे है ? तो मै उससे कहूँगा कि जो स्त्रिया लिपस्टिक और पाउडर लगाती हैं तो क्या उनका चेहरा उतना ही सुन्दर होता है जितना दिखाई देता है ?

उत्तर साफ है कि नहीं, वह तो कृत्रिम सुन्दरता होती है जो पानी से धुल जाती है।

इसी प्रकार यूरोप को सम्पन्नता और यूरोप का सुख वास्तविक नहीं है। वे अपनी कृत्रिमता मे आपको अच्छे भले ही लगें, पर अब उनकी कृत्रिमता ही उन्हे खाये जा रही है।

अमरीका अहिंसावादी नहीं फिर भी वह धनवान् देश है, आप पूछेंगे ऐसा क्यों है ? मै आप से कहूँगा कि किसी देश में ऊंची-ऊंची अट्टालिकाएं, भयंकर संहारक अस्त्र और धनवानों के पास अधिक धन होने से वह देश उन्नतिशील अथवा धनवान् नहीं कहा जा सकता। वहां एक ओर ऐसे धनाढ्य है कि विश्व में उनका मुकाबला कोई नहीं कर सकता पर इतने गरीब लोग भी हैं जिनकी निर्धनता को देखकर लगता है कि हमारा देश ही उससे अच्छा है और फिर कितने बेचैन रहते है यूरोप और अमरीका के निवासी, कभी यह अनुभव करें तो आपको वास्तविकता का पता चल जाय। यह देश तो दूसरे देशों की कमाई पर यह कृत्रिम वैभव और सुख लूट रहे हैं। जिस दिन इनके हाथों से दास देश निकल जायेंगे और एशिया के देश स्वयं साधन सम्पन्न हो जायेंगे और इन देशो के सामान के लिए बाजार नहीं मिलेगा, तब अमरीका और यूरोप के मुंह का पाउडर और लिपस्टिक धुल जायेगा और अन्दर से पीली, मुरझाई हुई दाग-

द्वार त्वचा निकल आयेगी। अहिंसा चिर सुख प्रदान करती है।

आप पूछ सकते है कि जब अहिंसा का सिद्धान्त अत्युत्तम है तो रावण, कौरवों, कौणक आदि के विरुद्ध युद्ध क्यों किया गया ? और इस प्रकार तो वे राम, पाण्डव और चेड़ा आदि हिंसावादी हुए। यह शका भी अज्ञानता वश ही हो सकती है। क्योंकि राम, पाण्डव और चेडा राजा का युद्ध करना विरोधी हिंसा थी । और गृहस्थियों के लिए विरोधी हिंसा उतना पाप नहीं है जितनी सकल्पी हिंसा। क्योंकि इस प्रकार होने वाली हिंसा का पाप अन्यायियों को जाता है।

कोई यह कहे कि जब जैनी अहिंसावादी होते है और जैन शास्त्रों के सिद्धान्तो के मानने वाले है, तो उन सब को सुख क्यों नहीं मिलता ?

ऐसा प्रश्न करने वाले को सोचना चाहिए कि किसी धर्म का अनुयायी होकर उस धर्म के सिद्धान्तों का पालन करने के उपरान्त यदि उस धर्म के शास्त्रानुकूल परिणाम न मिले तब तो ऐसा प्रश्न उठाया जा सकता है। परन्तु जब लोग सिद्धान्त पर आचरण ही न करे तो फल कैसे मिलेगा ?

आप जानते हैं कि भारत के सभी धर्म 'अहिंसा परमोधर्म' का सिद्धान्त मानते है। फिर भी लोग उस पर अमल नहीं करते तो इसमे धर्म का दोष नहीं, दोष व्यक्तियों का है। जो व्यक्ति भय करता है वह अहिंसा का पालन नहीं कर सकता। अहिंसा धर्म कर्तव्य मे है। जो व्यक्ति अहिंसा को पूर्णतया निभाते है वही अहिंसा से प्राप्त सुख को भोगते है। पर आज तो लोगों ने कायरता का दूसरा नाम अहिंसा रख लिया। वास्तव मे जिन लोगो ने ऐसा समझ लिया है उन्हे अहिंसा का ज्ञान ही नहीं है। अहिंसा अत्याचारी के सामने सिर झुकाने के लिए नहीं कहती।

कुछ लोग कह देते हैं कि जैन धर्म में दो प्रकार की अहिंसा मिलती है। क्योंकि एक पक्ष कहता है कि न मारना तो अहिंसा है पर मरते जीव को बचाना हिंसा है।

इस बात का रहस्य समझाने के लिए मैं एक ग्राम की बात सुनाऊं। एक अशिक्षित पशु चराने वाले की वृद्धा मा बीमार पड गई। वह और उसके भाई सब अधिकतर जगल मे पशु चराने का ही काम करते थे, उन्हे ससार की बातो को सुनने-समझने का समय ही नहीं मिलता था, पर वृद्धा मा को बीमार देखकर उसे वैद्य के पास जाना ही पडा। यह उसका पहला ही अवसर था, जबकि उसे वैद्य के पास औषधि के लिए जाना पडा। उसने टोने-टोटके की बाते सुनी थीं, पर औषधि सेवन की विधि आदि बातो का उसे ज्ञान ही न था।

वैद्य को रोग बताया। वैद्य जी ने एक शीशी मे दवा दी और कहा कि लो प्रात, मध्याह्न और सायंकाल तीन बार खूब हिला कर पिला दिया करना। बिना हिलाये ही पिला दी तो असर न करेगी।

वह वैद्य से बोला कि आप मुझे छ-सात दिन की दवा दे दे। फिर बार-बार कौन आता फिरेगा।

वैद्य ने सात दिन की दवा दे दी।

घर आकर वह भागा-भागा जगल गया और अपने तीन भाइयों को बुला लाया और कहा कि मा को हिलाकर दवा पिलानी है। सब हिलायेगे तो खूब हिलेगी। वैद्य ने कहा था कि खूब हिलाकर पिलाना।

चारों ने बुढ़िया के हाथ-पांव पकड़े और जोर-जोर से झटके दिये। दस-पन्द्रह मिनट तक झटके देने से बुढ़िया जो पहले ही से बहुत कमजोर थी, बेहोश हो गई और फिर मुंह मे दवा

डाल दी।

प्रात , मध्याह्न और सायकाल उन चारों कडियैल जवानो ने जोर-जोर से झटके दे देकर बुढिया को दवा पिलाना जारी रखा। पर वेचारी वुढिया मे इतनी जान कहां थी कि उनके झटके सह सकती, आखिरकार एक दिन हिचकिया लेने लगी। तो वे घबराये और दौडे-दौडे वैद्य के पास गये और कहा कि वैद्य जी तनिक जल्दी चलिये। बुढिया का बुरा हाल है।

वैद्य ने पूछा कि ऐसी क्या बात हो गई?

वह बोले—"वैद्य जी बात तो ऐसी कोई खास नहीं हुई जब हम उसे हिलाते थे तब वह रोज ही बेहोश होजाती थी। इसी दिन से उसकी तबियत और खराब होने लगी थी, जब से उसे हिलाकर दवा पिलानी आरम्भ की। आज हमने सोचा कि शायद दवा असर नहीं कर रही। जरा जोर से हिलाये। बस तीन चार झटके जोर के दिये तो वह टे होने लगी।"

वैद्य जी ने पूछा कि तुमने दवा हिलाई या बुढिया ही हिलादी थी?

चरवाहे बोले—अजी! आपने हिलाकर पिलाने को कहा था, हमने मा को ही तो हिलाया। दवा को नहीं।

वैद्य बोला मूर्खो! मैने दवा को हिलाने को कहा था, मां को नहीं।

जब तक वैद्य जी उनके घर पहुँचे, बुढिया के प्राण पखेरु उड़ गये।

अब मै आपसे पूछता हू कि वृद्धा की मृत्यु के लिए जिम्मेदार कौन है?

"वैद्य या चरवाहे"?

"चरवाहे"

इसी प्रकार शास्त्रों का गलत अर्थ निकालने वालों की मूर्खता से शास्त्रों पर शङ्का नहीं की जा सकती। शास्त्रो ने कभी नहीं कहा कि मरने वाले को बचाना पाप है। यह तो साधारण समझ की बात है कि जो धर्म समस्त जीवों से प्रेम की शिक्षा देता है वह क्या मरते हुए को बचाना पाप बता सकता है?

'कदापि नहीं।

लोग कहा करते हैं कि नादान दोस्त से दाना दुश्मन अच्छा होता है। इसी प्रकार वे लोग जो अपने को जैन धर्म के अनुयायी कहते हैं और शास्त्रों का गलत अर्थ निकालकर प्रचार करते है वे जैन धर्म के वास्तविक शत्रु है। क्योंकि उनके कर्म से जैन धर्म की श्रेष्ठता को आंच आती है। जो व्यक्ति जैन धर्म को समझे बिना उसकी आलोचना करते हैं वे क्षम्य हैं क्योंकि उनका दोष नहीं, उनकी अज्ञानता का दोष है।

जैन शास्त्रों के अनुसार जिसमें हिंसा का विरोध हो वह अहिंसा और जिसमें अहिंसा का विरोध हो वह हिंसा है। मान लीजिए कोई व्यक्ति किसी को गोली से मारने वाला है। और किसी ने उसे मारने से रोक दिया तो दोनों में हिंसक कौन है और अहिंसक कौन?

साधारण समझ वाला भी कह देगा कि जिसने बचाया वह अहिंसक हुआ और जो मारना चाहता था वह हिंसक।

साराश यह है कि प्रत्येक बात की सत्यता का पता लगा लेना चाहिए सन्देहादि निर्णयात्मक बुद्धि से दूर कर लेने चाहिए।

जो व्यक्ति आत्मा में परमात्मा में ही सन्देह करता है, उसका आत्मा ज्ञान दृष्टि से नष्ट हो जाता है और जो निर्णयात्मक बुद्धि से अपनी शङ्काओं का निवारण करता है, वह भद्र कल्याण मार्ग पाता है। इस लिए आठ आचारो में निशङ्का प्रथम आचार

है। क्योंकि शङ्का रहेगी तो श्रद्धा हो ही नहीं सकती।

'काक्षा' इच्छा करने को कहते है। अन्य धर्मों का दर्शन अथवा धर्म क्रिया देखकर उनकी ओर आकर्षित हो जाना और उन्हे ही ग्रहण करने की इच्छा करना कांक्षा कहलाती है। दूसरो के धर्म मे कोई आकर्षण हो और उसी आकर्षण से आप प्रभावित होकर अपने धर्म पथ को तिलाजलि देकर उस धर्म के अनुयायी बन बैठे, यह अधर्म है। दूसरे धर्मों के दर्शन के प्रति उपादेय बुद्धि ही काक्षा कहलाती है। और ऐसी प्रवृत्ति को त्यागना निकांक्षा कही जाती है।

धर्म ज्ञानी और व्रतधारी को निकांक्षी होना चाहिए। क्योंकि दूसरे धर्मों के प्रति उपादेय बुद्धि धर्म के मर्म तक नहीं पहुँचने देती और धार्मिक क्रियाओं को भी एकाग्रचित होकर पूर्ण करने नहीं देती।

देखा गया है कि कुछ लोगो की काक्षा की हद होगई है, किसी भी धर्म का प्रचार हो उसमे जाकर दिलचस्पी लेते हैं और कहीं विट्ठल भगवान् के गुण गान मे लग जाते है, कहीं पत्थरों के सामने सर पटकने लगते है, यह सब मनुष्य की बुद्धि परिपक्व न होने के कारण होता है और कभी स्वार्थों वश अधिकतर इस की जड़ मे अज्ञान होता है।

किन्तु यदि विचार कर देखे तो यह स्पष्ट हो जाता है कि सर्वज्ञदेव के उपदेशो पर आचरण करने के उपरान्त अन्य किसी ओर भटकने की आवश्यकता नहीं। जो दो नौकाओ पर सवार होकर नदी पार करने की सोचता है वह बीच मझधार मे ही डूब जाता है। यह मानसिक बौद्ध धर्म की कितनी ही बाते जैन धर्म से मिलती-जुलती है। किन्तु पूर्वापर विरुद्ध होने से उनकी बाते सत्य नहीं है। अहिसा के सिद्धान्त को कई धर्म स्वीकार करते है

पर आगे जाकर कोई तो पत्थरों का दास बना देता है, कोई दूसरे आडम्बरों का । इसलिए यह ठीक होते हुए भी कि एक धर्म दूसरे धर्म की कितनी ही बातों को ठीक बताता है, इसका यह अर्थ नहीं हो जाता कि सर्वज्ञ के पथ को छोडकर अल्पज्ञों की ओर आकर्षित हों । इसलिए निकांक्षा समकित का आचार मानी गई है ।

विचिकित्सा का अर्थ है फल के प्रति सन्देह करना । जैसे कोई व्यक्ति सोचे कि मैं सर्वज्ञ देव के बताए पथ का अनुसरण करूँ तो मुक्ति भी मिलेगी या नहीं ? साधु लोग मुद्रा दान स्वीकार कर लिया करें तो क्या हर्ज है ? इस प्रकार की बातें सोचना विचिकित्सा है । यह विचिकित्सा धर्म के अटल सत्यों को झुठलाना है, उनके प्रति अश्रद्धा की भावना को जन्म देती है । और नियमों को तोड़ लाने की प्रवृत्ति को भडकाती है ।

मान लीजिए कोई यह सोचे कि साधु मुफ्त के बैठे-बैठे क्यों खाते है ? यह भी कुछ किया करें । गृहस्थियों की तरह सब धर्म प्रचार करने निकलें । तब जानें ? उसका यह सोचना साधुओं का अपमान है । इस विचिकित्सा को समाप्त करके निर्विचिकित्सा को अपनाना समकित धर्म का तीसरा सूत्र है ।

दूसरे धर्मावलम्बियों की बाह्य ऋद्धि को देखकर जिसकी आखें चौंधियां जाती हैं, वह मूढ दृष्टि है । दूसरे धर्मावलम्बियों के साधुओं को देखकर यह मान बैठना कि वे महान् है और हमारे साधु उन जैसे महान नहीं है, मूर्खता है और अपने धर्म के प्रति अश्रद्धा है । हीनता का यह भाव मनुष्य को कभी भी शांति नहीं लेने देता । उक्त धर्मावलम्बी ऋद्धिसम्पन्न है और मैं अल्प ऋद्धि हूँ, ऐसा सोचने वाला कभी उन्नति नहीं कर सकता, और न वह अपने आदर्शों पर गर्व ही कर सकता है । इससे वह अपने पर शङ्का करने लगेगा और कांक्षा के चक्कर मे फस

जायेगा। उसे यह समझना चाहिए, भगवान् ने जो भी सिद्धांत बनाए हैं वह अटल सत्य हैं। उनमें शङ्का करने की गुंजायश नहीं और यह अत्युत्तम हैं। इसलिए ऐसी बातें न सोचनी जो सर्वज्ञदेव के सिद्धान्तों से विचलित करके दूसरों की ओर आकर्षित करती हैं, धर्म पर अटल रहने का उपाय है। शास्त्र ऐसी भटकाव की दृष्टि न रखने को अमूढ दृष्टि कहते हैं और यह सूत्र-धर्म का चौथा आचार है।

यह चार थे अन्तर आचार। और अब हम आते हैं बाह्य आचारों पर, जो चार हैं। उपरोक्त चार हृदय से सम्बन्ध रखने वाले दोषनिवारणार्थ—आचार थे।

किसी व्रतधारी धार्मिक भावना से ओत-प्रोत उत्साही व्यक्ति को प्रशसात्मक शब्द कह कर प्रोत्साहन देना उपवृंहा कहलाता है। जैसे कि किसी ने कोई महान धार्मिक कार्य किया, अथवा अपने आचरण से अपने को महान् आत्मा सिद्ध किया तो हम उसकी सराहना करें। उसे प्रोत्साहन देने के लिए उसकी पीठ थपथपाएँ, उसका गुणगान करें, तो इससे उस व्यक्ति को भविष्य में उससे भी अधिक उत्साह होगा और वह ख्याति के प्रभाव से से भी धार्मिक क्षेत्र में अधिकाधिक कार्य करने और अपने को सच्चा मानव सिद्ध करने के लिए महान कार्य करेगा। यह उसकी चापलूसी नहीं होगी, वरन उसका मन ज्ञान-दर्शनादि उत्तम गुणों की ओर अधिक आकर्षित होगा। यही उपवृंहा कहलाता है।

सत्य धर्म के अनुयायी को उसके धर्म में अधिकाधिक स्थिर करना स्थिरीकरण कहलाता है। मान लीजिए कोई व्यक्ति जैन धर्म को स्वीकार करता है, पर किसी समय उसकी मान्यता में में कम्पन आ जाता है, वह डावाडोल स्थिति में आ जाता है तो हमारा कर्तव्य हो जाता है कि हम उसकी डावाडोल स्थिति का

अन्त कराये और उसे स्थिर करे। स्थिरीकरण दो प्रकार से होता है, एक तो उपदेश के द्वारा, दूसरे सहायता के द्वारा।

मान लीजिए कोई व्यक्ति अपनी किसी मजबूरी से धर्म से डिगने लगता है तो हम उसकी मजबूरी को दूर कराने में सहायता कर सकते हैं तो करें, और उसे उपदेश देकर अपने धर्म पर अडिग रहने का प्रोत्साहन दें। किसी को स्थिर करना समकित का आचार है और ऐसा करने से धर्म की वृद्धि होती है।

वात्सल्य मनुष्य का स्वभाव है। प्रत्येक व्यक्ति अपने परिवार से अपनी सन्तान से प्रेम करता है। प्रत्येक व्यक्ति चाहता है कि उसका जीवन के हर क्षेत्र में सम्बन्ध सहधर्मी से हो, ताकि धर्म-निष्ठा बनी रहे और आचार-विचार मिलने के कारण मन को शान्ति रहे। क्योंकि भिन्न मान्यताओं वालों के साथ मिलकर कार्य करने में मन को शांति नहीं मिलती, न धर्म की अभिवृद्धि ही होती है। इसलिए मनुष्य यदि अपनी पुत्री का ब्याह करना चाहता है तो सहधर्मी से, कारोबार करना चाहता है तो सहधर्मी से, नौकरी करना चाहता है तो सहधर्मी के यहां, इसी का नाम वात्सल्य है।

परन्तु वात्सल्य का क्षेत्र बड़ा विशाल है। वात्सल्य मनुष्य का स्वभाव होने के कारण वह कभी समाप्त नहीं हो सकता। जब हम अपने किसी मित्र को अथवा सहधर्मी व्यक्ति को उन्नति करते देखते हैं तो हमारे नेत्रों में जो भाव प्रगट होता है, वही वात्सल्य है। अपने धर्म की उन्नति की चेष्टा में प्रवृत्त होना प्रभावना कहलाती है। अथवा यूँ कहिए कि जिस कार्य से स्वधर्म उज्ज्वल हो वह प्रभावना है।

वात्सल्य और प्रभावना ही धर्म के प्रसार में बहुत अधिक सहायक होते हैं। भगवान् महावीर बल प्रयोग करके अपने रास्ते

पर लोगों को नहीं लाये थे। इतिहास साक्षी है कि जैन धर्म तलवार की धार पर नहीं बढा, वरन जैन धर्म के स्थविरो ने अपने धर्म को वात्सल्य और प्रभावना के द्वारा ही बढाया है। वात्सल्य केवल केवल अपने धर्म के अनुयायियो के लिए ही नहीं होना चाहिए, वरन उन लोगों के प्रति भी होना चाहिये जो कि किसी दूसरे धर्म के प्रशसक अथवा अनुयायी है। उनके साथ वात्सल्य-पूर्ण व्यवहार करने से वे लोग आपके धर्म की ओर आकर्षित होगे। क्योंकि किसी धर्मावलम्बियों के व्यवहार से ही उस धर्म के गुणो का पता चलता है।

मुसलमानो मे एक कथा आती है कि एक समय जब हजरत उमर फारुकी मुसलमानो के स्थविर व राजा थे, किसी शत्रु ने उनके देश पर आक्रमण कर दिया, और राजधानी से दूर अपना कैम्प डालकर उमर फारुकी को कहला भेजा कि वह यदि उसकी आधीनता स्वीकार करे तो रक्तपात रुक सकता है। इसके लिए उमर फारुकी स्वयं आकर मिले। उमर फारुकी सदेश पाकर आक्रमण-कारी के डेरों की ओर ऊँट पर सवार होकर चल दिये। उनके साथ उनका एक सेवक भी था जो ऊंट की नकेल पकडकर चलता था। कुछ दूर जाने पर उमर फारुकी ऊँट पर से उतर पड़े। सेवक से यह कहकर कि तुम्हारे पैर थक गए होगे अब तुम ऊँट पर सवार हो जाओ।

सेवक ने मना किया और कहा—कि आप राजा हैं, आप मेरी चिन्ता न करे।

उमर फारुकी ने कहा कि नहीं थकान तुम्हे भी आ सकती है मुझे भी, आराम मुझे भी चाहिए और तुम्हे भी। मुझे कोई अधिकार नहीं है कि ऊँट पर आराम से सवार रहूँ और तुम कष्ट उठाते रहो।

उमर फारूकी के कहने पर सेवक ऊँट पर सवार हो गया और हजरत उमर ऊँट की नकल पकड़कर चलने लगे। कुछ दूर जाने पर सेवक उतर गया और हजरत उमर सवार हो गए। इसी प्रकार बारी-बारी से ऊँट की सवारी करते हुए यात्रा पर बढते रहे। परन्तु जब शत्रु के डेरों के पास पहुँचने को थे, हजरत उमर की ऊँट की नकेल पकडकर चलने की बारी आ गई। सेवक ने कहा यहा तो आप ही ऊँट पर सवारी कीजिए, नहीं तो शत्रु आप को नीच समझ लेगा। पर उमर हंसकर रह गए और सेवक को ऊँट पर सवारी कराकर स्वय ऊँट की नकेल पकडे-पकडे शत्रु के कैम्प मे पहुँचे। जब शत्रु राजा को पता चला कि उमर आ रहे हैं वह सभ्यता के नाते कैम्प से बाहर आया स्वागत के लिए।

पर वह और उसके साथी देखकर आश्चर्य चकित रह गए कि ऊँट पर सवार व्यक्ति मामूली सा दास प्रतीत होता है। फिर राजा कौन है ?

हजरत उमर ने आगे बढ़कर अपना परिचय दिया। उन्होंने पूछा कि आपका सेवक ऊँट पर और आप पैदल ? यह क्या बात है ?

हजरत उमर बोले, 'इन्सान मैं भी हूँ और इन्सान सेवक भी है। आराम मुझे चाहिए और उसको भी। मै राजा हूँ तो क्या ? मैं खुदा का एक बन्दा हूँ। हम मुसलमान हैं और सेवक भी मुसलमान। इसलिए मुझे कोई हक नहीं है कि स्वय तो ऊँट पर सवारी करूँ और सेवक को सारे रास्ते पैदल चलाऊँ। ऐसा करूँगा तो सेवक मेरे धर्म की क्या इज्जत करेगा ? यही सोच-कर हम बारी-बारी से ऊँट पर सवारी करते आये है।

शत्रु यहूदी इस बात को सुनकर बहुत प्रभावित हुआ और बोला कि जब आप मे मानव के लिए इतना वात्सल्य है तो तुम्हें

कौन जीत सकता है ? और जीता हुआ क्षेत्र हजरत उमर को वापिस करके वापिस चला गया।

मैंने यह दृष्टांत इस्लाम धर्म की प्रशंसा के लिए नहीं सुनाया। बल्कि मेरा मतलब यह दृष्टांत सुनाने से यह है कि वात्सल्य शत्रुओं को भी परास्त कर देता है। मनुष्य दो प्रकार से जीता जाता है एक तो बल प्रयोग से दूसरे वात्सल्य से। परन्तु वात्सल्य ही सफल और मानवोचित उपाय है। क्योंकि बल प्रयोग से जीता हुआ व्यक्ति जब भी अवसर पायेगा और देखेगा कि अब आपमें उसे परास्त करने का बल नहीं है तभी आपके विरुद्ध खडा हो जायेगा। बलप्रयोग हिंसा का जन्मदाता है और एक हिंसा ही है। परन्तु वात्सल्य का प्रभाव स्थायी रहता है।

ठाणाङ्ग सूत्र के चौथे ठाणे में कहा गया है कि प्रवचना प्रभावना के वास्ते, पात्र-अपात्र दोनों को दान देने वाला दाता तीसरे भङ्ग का दातार है। इससे स्पष्ट है कि अपात्र को दान देने से भी तीर्थङ्कर के मार्ग की प्रभावना होती है। अर्थात जो व्यक्ति सूत्र-चरित्र-धर्म का पालन नहीं करता और जैन धर्म का भी अनुयायी नहीं है, पर वह असहाय है, निर्धन और लाचार है, लूला-लगडा अपाहिज है। उसे भी दान सहायता देने से तीर्थङ्करों का मार्ग दीप्तिमान् होता है। क्योंकि ऐसे व्यक्ति पर आपके आचरण से जैन धर्म का प्रभाव होता है।

जो लोग जैन धर्म को स्वीकार नहीं करते। वे जैन धर्म को नहीं समझते, न जैन शास्त्रों से ही परिचित हैं। पर यह तो आवश्यक नहीं है कि वे स्वयं आपके धर्म के शास्त्र पढे और फिर समझ कर आपके साथ आ जाये। बल्कि सम्भावना यह है कि आपका आचरण, आपका वात्सल्य और प्रभावना उन पर प्रभाव डाले और वह यह सोचे कि जिस धर्म के अनुयायी इतने अच्छे

और उच्च विचारों के हैं वह धर्म कौनसा है और कैसा है ? और वे जैन धर्म को जानने की इच्छा करें। तब आप उपदेश देकर उन्हें तीर्थङ्करों के मार्ग पर ले आये।

प्रभावना दूसरों को प्रभावित करती है। जो लोग यह कहते हैं कि दान देना पाप है वह प्रवचन प्रभावना को समझे ही नहीं हैं।

उपरोक्त आठ आचार सूत्र धर्म के हैं। इन्हीं के पालन से चारित्र धर्म की उत्पत्ति होती है बल्कि यह मूल मंत्र है। यह आठ ही चारित्र धर्म के उपलक्षक हैं।

सूत्र धर्म मोक्ष की नींव है। इसी नींव पर मुक्ति का महल खड़ा होना है, इसलिए दर्शनाचार के आठों सूत्रों का पालन करना ही मोक्ष की गारंटी है। जो इनका पालन करता है वह अवश्य ही मोक्ष प्राप्त करता है।

सूत्र स्थविर

सूत्रधर्म के पालन की समुचित व्यवस्था करने वाले को सूत्र स्थविर कहते है। जिन्हे ठाणाङ्ग सूत्र और समवायाग सूत्र आदि की वारीक से वारीक वातो का ज्ञान हो, वही सूत्रधर्म के पालन की व्यवस्था कर सकते है। ऐसे मुनिराजों को सूत्र स्थविर के नाम से पुकारा जाता है।

सूत्र स्थविर इस वात का ध्यान रखता है कि कौन व्यक्ति सूत्र-धर्म का समुचित पालन करता है और कौन नहीं। उसका धर्म होता है कि वह प्रत्येक मनुष्य को सूत्र धर्म के पालन करने का उपदेश दे। वह समझाए कि सूत्र धर्म का पालन करना क्यो आवश्यक है। वह प्रत्येक व्यक्ति को जो सूत्र धर्म के पालन मे कुछ शिथिल पड जाता है, धर्मोपदेश देकर धर्म मे दृढ करता है।

सूत्र धर्म के आठ आचार वताए गए है। उन आचारों के प्रति सूत्र स्थविर के कर्तव्य अपने आत्मा के अतिरिक्त अन्य लोगों के सम्बन्ध मे भी हो जाते है। जैसे सूत्र धर्म का प्रथम आचार है, निशङ्का। शङ्का उत्पन्न होने से सूत्रधर्म का पालन नहीं हो सकता। इसलिए यदि किसी को धर्म अथवा शास्त्रो मे किसी प्रकार की शङ्का उत्पन्न होती है तो वह धर्म से डिग जायेगा। अत. सूत्र स्थविर का धर्म है कि वह उस व्यक्ति की शङ्का को दूर करे।

इसी प्रकार दूसरे आचार हैं। उनके लिए स्थविर में पूर्ण ज्ञान होना चाहिए और उनका पालन करने और कराने की क्षमता होनी चाहिए और उसका प्रभाव भी इतना होना चाहिए कि साधारण जन उसकी ओर आकर्षित हों।

यह तो आप समझ ही गए हैं कि सब श्रावक और साधुओं से मिलकर बनता है और बिना श्रावकों के साधु का और बिना साधुओं के श्रावक का कार्य चलना दुर्लभ है। इसलिए सूत्र धर्म के पालन में श्रावक और साधुओं को अपने-अपने कर्तव्यों को पूरा करना चाहिए। मुनि साधु का कर्तव्य है कि वह श्रावकों को सूत्र धर्म का महत्त्व समझाए और श्रावकों का कर्तव्य है कि वे शास्त्रों और सर्वज्ञ देव के सिद्धान्त में कोई शङ्का उत्पन्न हो तो साधु के पास जाकर समाधान करें। यदि साधु और श्रावक का इस प्रकार सहयोग चलता रहे तो फिर सूत्र धर्म का पालन होने में कोई भी शङ्का न रहे।

परन्तु आज तो देखा यह गया है कि लोग साधुओं के पास नहीं जाते, जाते हैं तो मन में उठती शङ्काओं को दूर करने का प्रयत्न नहीं करते। यही कारण है कि सूत्रधर्म का पालन नहीं हो पाता।

* नवम सोपान *

चारित्र धर्म

मैने इससे पूर्व सूत्र धर्म की व्याख्या की थी और आपको यह भी बताया था कि सूत्र मूल है चारित्र धर्म के। सूत्र धर्म आधार है चारित्र धर्म को निभाने का। शास्त्र मे चारित्र धर्म की महिमा का इस प्रकार वर्णन किया गया है।

जम्मतरेवि सुलहा, पिउभाउसुपाइया।
परन्तु सुयचारित्त,—धम्मो सुलहो भूवि ॥

अर्थात्—

पिता, भ्राता और पुत्र आदि तो जन्मान्तर मे—आगामी भव मे—भी सुलभ है किन्तु ससार मे श्रुत—चारित्र धर्म सुलभ नहीं है।

और—

विणा सिद्धं जण भूमि,—णिहाण णोव लब्भई।
सुयचारित्त धम्मेण, विणा णो णाणमप्पणो ॥

अर्थात्—

सिद्धाञ्जन के अभाव मे पृथ्वी के भीतर का खजाना नहीं प्राप्त किया जा सकता, इसी प्रकार श्रुत चारित्र के विना आत्मा को सम्यग् ज्ञान नहीं होता।

अपनी अज्ञानता को दूर करके अपने नियमो का पालन

करना चारित्र धर्म कहलाता है।

शास्त्रकारों ने कहा है कि —

ना दंसणस्स नाणं नाणेण विना न हुंति चरण गुणा।
अगुणिस्स नत्थि मोक्खो नत्थि अमोक्खस्स निव्वाणं॥
उ० अ० २८ गा० ३०

अर्थात्—दर्शन (श्रद्धा) से रहित को ज्ञान नहीं होता, ज्ञान विना चारित्र के गुण प्रकट नहीं होते, चारित्र के गुण विना कर्मों से मुक्ति नहीं मिलती। और कर्मों से मुक्त हुए विना सिद्ध पद की प्राप्ति नहीं होती।

श्रद्धा और ज्ञान के साथ-साथ चारित्र का सिद्ध पद की प्राप्ति मे कितना महत्त्व है, यह शास्त्र के उपरोक्त सूत्र से पता चल जाता है। चारित्र के गुणों के विना कर्मों से मुक्ति नहीं मिलेगी और कर्मों से मुक्ति नहीं मिले तो सिद्ध पद प्राप्त न हो, अर्थात् मुक्ति न मिले। सूत्र धर्म हमे चारित्र धर्म को खडा करने का आधार दे देता है पर विना चारित्र के सूत्र बेकार है और विना सूत्र के चारित्र नहीं बनता। इसलिए सूत्र धर्म चारित्र धर्म से बहुत ही जकडा हुआ है।

"ज्ञानक्रियाभ्यां मोक्ष"

ज्ञान और उसका साथी दर्शन अर्थात् ज्ञान से जो तत्त्व जाना और दर्शन द्वारा जिस पर विश्वास (श्रद्धा) किया है, उसे क्रिया द्वारा आचरण मे लाना, यही चारित्र धर्म की परिभाषा है।

यदि मनुष्य को ज्ञान तो हो, और धर्म पर श्रद्धा भी हो पर आचरण मे ज्ञान और धर्म को नहीं लाया तो वह ज्ञान अधिक लाभदायक नहीं है और न श्रद्धा ही। क्योंकि ज्ञान और श्रद्धा तभी सफल और उपयोगी हैं जब मनुष्य उसे व्यवहार मे भी लाये। वरना वही बात होगी कि किसी के पास धन तो है पर

उसका उपयोग न करके भूखा-नगा फिरता है। भूख और नग्न-पन रहा तो धन किस काम का ? आचरण ही तो मनुष्य के ज्ञान को प्रगट करता है।

शास्त्रों ने चारित्र धर्म के विषय में कहा है कि —

चरित्त धम्मे दुवि हे पन्नते तंजहा।
अणगार चरित धम्मे आगार चरित धम्मे य ॥

भावार्थ—चारित्र धर्म दो प्रकार का कहा गया है। यथा गृह त्यागियो का चारित्र धर्म और गृहस्थों का चारित्र धर्म।

घर गृहस्थी को त्याग कर अहिंसा, सत्य, अदत्त, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह पाच व्रतो के पालने वाले को त्यागी अथवा साधु कहते है।

साधु का अर्थ है "साध्नोति स्वपरकार्याणीति साधु" अर्थात अपना और पर का कार्य जो सिद्ध करता है वह साधु है।

महाव्रतावरा धीरा भैक्ष्यमात्रोपजीविन'।
सामायिकस्था धर्मोपदेशका गुरवो मता' ॥

महाव्रत धारण करने वाले, धीर, मात्र भिक्षा वृत्ति से जीवन निर्वाह करने वाले, सदा सामायिक समता मे स्थित रहने वाले धर्मोपदेशक गुरु कहलाते है।

"अहिसा सत्यमस्तेय ब्रह्मचर्याऽपरिग्रहा।" के सिद्धान्त पर अमल करने वाले की २५ भावनाए बताई गई है।

प्रथम महाव्रत की पाच भावनाएं है।

१—ईर्या समिति—चलते समय भूमि को देखकर चलना चाहिए।

२—मनो समिति—मन मे किसी जीव की हानि का विचार नहीं करना चाहिए।

३—वाग समिति—किसी को ठेस अथवा हानि पहुँचाने

वाला वचन न कहना चाहिए।

४—आहार समिति—संयम का निर्वाह शुद्ध निर्दोष भिक्षा द्वारा करना चाहिए।

५—आदान निक्षेप समिति—वस्त्र-पात्रादि यत्नपूर्वक उठाना व रखना चाहिए।

संसार के प्रत्येक जीव को प्राणों से मोह है, वह जीवित रहना चाहता है, इसलिए त्यागी को किसी जीव को मारना न चाहिए और न कोई ऐसा कार्य करना चाहिए जिस से जीव-हत्या हो।

मुनि सदा सच बोलते हैं। मारणान्त-कष्ट आने पर भी साधु को सत्य बोलना चाहिए। वे असत्य दूसरों से भी नहीं बुलवाते और न उन्हें असत्य अच्छा ही लगता है। सत्य व्रत की रक्षा के लिए निम्नलिखित पाच भावनाएँ हैं —

१—बिना सोचे समझे उतावला होकर न बोलना चाहिए।

२—क्रोध नहीं करना चाहिए।

३—लोभ का त्याग करना चाहिए।

४—भय न करना चाहिए। भय सत्य का संहार करता है। भगवान् ने कहा है कि मनुष्य को किसी से नहीं डरना चाहिए। डरे तो केवल अपने पापों से।

५—सत्यवादी को हंसी मजाक भी वर्जित है।

मुसा वाओ य लोगम्मि, सव्व साहूहिं गरिहिओ।
अविस्सा सोय भूयाणं, तम्हा मोसं विवज्जए।

अर्थात् मृषवादि—असत्य-लोक में समस्त सत्पुरुषों द्वारा निन्दनीय है और असत्य से अन्य प्राणियों को विश्वास होता है। इसलिए असत्य का त्याग निर्ग्रन्थ मुनि करते है।

३—अस्तेय-अचौर्य व्रत—साधु को सर्वदा बिना किसी की

आज्ञा के कोई वस्तु नहीं लेते। उन्हे कोई वस्तु चोरी न करनी चाहिए, न चोरी करानी चाहिए और न चोरी करने वाले को ही अच्छा समझना चाहिए। इस व्रत के लिए भी पांच भावनाएं हैं-

१—स्वामी अथवा उसके नौकर की आज्ञा से ही निर्दोष स्थानक में वास करना चाहिए।

२-गुरु या अन्य ज्येष्ठ मुनि की आज्ञा विना आहार वस्त्रादि उपयोग नहीं करे।

३—द्रव्य क्षेत्र काल भाव की मर्यादा पूर्वक सदा गृहस्थ की आज्ञा ग्रहण करना।

४—सचित शिष्य आदि, अचित्त तृण आदि, मिश्र उपकरण सहित शिष्य आदि के लिए पुन-पुन आज्ञा लेना चाहिए। जहां सहधर्मी मुनि भी ठहरे है, वहा भी उनकी आज्ञा लेकर ही ठहरना चाहिए।

५—एक साथ रहने वाले मुनियों के वस्त्र और पात्रादि भी उनकी आज्ञा लेकर ही ग्रहरण करना चाहिए।

चित्तमत माचित वा, अप्प वा जइ वा वहु।
दत सोहण मत्ते पि, उग्ग हमि अजाइया॥

अर्थात्—अल्प या वहुत, सचेतन अथवा अचेतन, यहां तक कि दात साफ करने का तिनका भी विना याचना के मुनि ग्रहण नहीं करते है।

४—ब्रह्मचर्य-मुनि साधु सदा मन, वचन, कर्म से ब्रह्मचारी रहते है। सूत्र कृताग मे कहा है —

जो विन्न वणाहिऽजो सिया, सतिन्नेहिं सम विया हिया।
तम्हा उड्ढति पासहा, अदक्खु कामार रोगव॥

जो पुरुष स्त्रियों से सेवित नहीं है वे मुक्त पुरुष के सदृश हैं। स्त्री परित्याग के वाद मुक्ति होती है, यह जानना चाहिए। जिसने

काम भोगों को रोग के समान जान लिया है, वे पुरुष मुक्त पुरुष के सदृश हैं।

महात्मा गांधी ने ब्रह्मचर्य के विषय में कहा है कि—'कान से विकारी बातें सुनना, आंख से विकार उत्पन्न करने वाली वस्तु देखना, जीभ से विकारोत्तेजक वस्तु का स्वाद लेना, हाथ से विकारों को उभारने वाली वस्तु को छूना और फिर भी जननेंद्रिय को रोकने का इरादा रखना तो आग में हाथ डालकर जलने से से बचने के प्रयत्न समान है।.. ब्रह्मचर्य के मूल अर्थ का सब याद रखें। ब्रह्मचर्य अर्थात ब्रह्म की, सत्य की, शोध में चर्या, अर्थात् तत्सम्बन्धी आचार। इस मूल अर्थ में से सर्वेन्द्रिय-संयम रूपी विशेष अर्थ निकलता है।'

इसीलिए ब्रह्मचर्य व्रत को पालने वाले के लिए पांच भावनाएँ बताई गई हैं।

१—ब्रह्मचारी को स्त्री, पशु और नपुंसक से रहित स्थान में रहना चाहिए।

२—ब्रह्मचारी को कामजन्य, स्त्रीकथा कदापि नहीं करनी चाहिए।

३—काम दृष्टि से स्त्रियों के अंगोपांग को नहीं देखना चाहिए।

४—पिछले गृहस्थावस्था में भोगे हुए काम भोग नहीं विचारने चाहिएं।

५—स्निग्ध पदार्थों का तथा कामोत्पादक पदार्थों का त्याग करना चाहिए।

५—अपरिग्रह—साधु अपने पास मन, वचन, काया से धन कौडी, कंचन इत्यादि नहीं रखते हैं। अर्थात् साधु सदा निष्परिग्रही होते हैं, जिनके द्वारा मोह-ममता जागृत हो, अनर्थ की बातें

सूझे, तथा संयम की विराधना हो, ऐसे द्रव्यादि पदार्थों का उप योग नहीं करते। मुनिजन न स्वय परिग्रह करते है न दूसरों को रखने के लिए कहते है।

इस व्रत के लिए भी पाच भावनाएँ हैं—

१—श्रोत्रेन्द्रिय २=चक्षुरिन्द्रिय ३—घ्राणेन्द्रिय ४—रसेन्द्रिय ५—स्पर्शेन्द्रिय

अपरिग्रह के सम्बन्ध मे कभी-कभी विवाद चल खड़ा होता है, बहुत से लोग कहने लगते हैं कि साधु कपड़े क्यों पहनते हैं? वे चादर रखते हैं तो क्या परिग्रह नहीं हुआ। पर वे भूल जाते हैं कि वस्त्र जो शरीर पर लपेटे जाते हैं वे सयम की लज्जा व रक्षा के लिए। शास्त्रों ने इसकी आज्ञा दी है। यदि यह वस्त्र भी उतार दिये जाये तो फिर शरीर रह जाता है, क्या फिर उससे मोह नहीं बताया जायेगा?

परिग्रह का अर्थ वास्तव में मोह ममत्व है। कोई वस्तु मोह-ममत्व को जन्म देती है तो वह नहीं रखनी चाहिए।

साधु के आचरण के लिए दस प्रकार का धर्म बताया गया है।

खन्ति, मुत्ति, अज्जवे, मद्दवे, लघवे, सच्चे, सयमे, तवे, चियाए, अवम्भचेरवासे।

अर्थात्—(१) क्षमा (२) निर्लोभता (३) आर्जव (सरल, कपट रहित) (४) मार्दव (अहंकार रहित) (५) लाघवता (६) सत्य (७) सयम (८) तप (९) त्याग (विरक्ति (१०) ब्रह्मचर्य वास।

उपरोक्त दस धर्मो का पालन करने वाला अर्थात् आचरण में उतारने वाला ही अनागार धर्म की आराधना कर सकता है।

साधु के जीवन के लिए कितने ही नियम बनाए गए हैं जो उसे महान् बनाते हैं।

उनमे से कुछ का अति सक्षिप्त वर्णन किया जाता है।

१. ईर्या समिति—उपयोग पूर्वक देख कर चले

२. भाषा समिति—विवेक पूर्वक प्रियकारी सत्य भाषा बोले।

३. एषणा समिति-शुद्ध और निर्दोष आहार की गवेषणा करे।

४. आदान भंड मात्र निक्षेपण समिति—धर्मोपकरण आदि यत्न पूर्वक रखना और उठाना।

५ उच्चार प्रश्रवण खेल सिंघाण जल्ल परिष्ठापनिका समिति पुरीष-मल-मूत्र आदि उपयोग से यत्न पूर्वक त्यागन करना।

इसके उपरान्त तीन गुप्ति बताई गई हैं।

१. मन गुप्ति—मन मे शुद्ध विचार रखना, मन वश में करना।

२. वचन गुप्ति—सोच-विचार कर बोलना, वचन पर अंकुश रखना।

३. काय गुप्ति—शरीर को धर्म ध्यान मे लगाना।

और पांच आचार हैं—

(१) ज्ञानाचार (२) दर्शनाचार (३) चरित्राचार (४) तपाचार (५) वीर्याचार।

इन सब नियमों का सार पच महाव्रतों मे और यह सब नियम उन्हीं की पुष्टि के लिए बनाए गए है। जो इन सबका अक्षरश पालन करता है वही सच्चा मुनि है और वही मुक्ति प्राप्त कर सकता है।

अब हम गृहस्थियों के लिए बताए गए चारित्र धर्म की व्याख्या करेंगे।

जो गृह त्याग कर पूर्णतया अहिंसादि को आचरण मे नहीं ला सकते, किन्तु गृहस्थावास मे रहकर चरित्र धर्म का आचरण करना चाहते है। उनके भी दो भेद है—

तत्र च गृहस्थधर्मोऽपि द्विविध.। सामान्यतो विशेषतश्चेति॥

गृहस्थ धर्म भी दो प्रकार का है, सामान्य धर्म और विशेप धर्म। सामान्य धर्म अर्थात् समकिती श्रावक अपनी शक्ति अनुसार गृहस्थ धर्म का पालन करने वाले को सामान्य धर्मी कहते हैं और विशेप धर्म का अर्थ है सम्यक्त्व वादी द्वादशाव्रती श्रावक का धर्म।

परन्तु ७ दुर्व्यसनो का त्याग करना सभी के लिए आवश्यक है।

(१) मास, (२) मदिरा, (३) वेश्या, (४) परस्त्रीगमन, (५) जुआ, (६) शिकार, (७) चोरी

परन्तु हम देखते है कि लोग इन दुर्व्यसनों को त्यागने की अपेक्षा उन्हे ग्रहण करते जाने की ओर अधिक जा रहे है। मैं एक दिन अमृतसर मे जा रहा था। एक सिख मेरे साथ था, उस ने दूसरे सिख से मेरा परिचय कराया और कहा कि यह बडा संयमी जीवन व्यतीत करते है। मास मदिरा आदि का विलकुल उपयोग नहीं करते।

दूसरा सिख सुनकर कहने लगा कि यह मांस नहीं खाते तो इनका भी कोई जीवन है। बेकार है इनका जीना।

-लोगो की ऐसी भावनाए होगई है कि उन्हे देखकर आश्चर्य होता है। क्या यह उसी देश के लोग है जिसमे भगवान् महावीर ने जन्म लिया था ?

लोग यह क्यो नहीं समझते कि ससार मे कोई जीव भी ऐसा नहीं है जो वेकार हो। यहाँ तक कि कीडे-मकोडे भी। दुःख तो इस वात का है कि लोग अब पशुभक्षी ही नहीं रहे, मनुष्यभक्षी भी हो गए है।

दिल्ली मे एक जौहरी का लडका जा रहा था। एक व्यक्ति ने उसे फुसलाया। कभी लड्डू खिलाने का चकमा दिया, कभी पेंसिल

व किताव का मोह दिखाया, पर वह न माना। इधर-उधर देखकर वह वलपूर्वक जवरदस्ती उसे उठा कर चल दिया। उसने एक हाथ से उसका गला दवा रखा था ताकि उसकी आवाज न निकलने पाये। सामने से आते हुए आदमियों को देखकर वह व्यक्ति गली में चला गया। गली मे भी एक व्यक्ति आता हुआ दिखाई दिया। आने वाले को देखकर उस व्यक्ति का तनिक हाथ ढीला पड़ा तो वालक चिल्लाया।

"वावू जी"

उठाने वाले व्यक्ति ने सोचा कि वे वालक के पिता हैं। इस लिए घवराकर छोड़कर भाग गया।

महात्मा गाधी ने अपनी आत्मकथा मे वताया है कि विद्यार्थी जीवन मे उन्होंने एक वार मास खाया तो रात्रि भर उन्हे यही शङ्का रही कि उनके पेट मे वकरी वोल रही है। फिर उन्हे आत्म-ग्लानि हुई और जीवन भर मास नहीं खाया। पर आज तो वे लोग जो मांस खाना पाप वताते है, चुपके से होटलों मे जाकर मांस की प्लेटें उडाते हैं। जव अहिंसावादी भी मास का प्रयोग करने लगेंगे तो फिर धर्म की रक्षा कैसे होगी ?

मैं आप को स्पष्टतया वताना चाहता हूँ कि वे लोग जो मांस को भोजन समझते है, सारे समाज के साथ हिंसा कर रहे हैं। वे अपनी आत्मा के साथ अन्याय करते हैं। क्योंकि मनुष्य जो कुछ दूसरी आत्मा के साथ करता है वह अपनी ही आत्मा के साथ करता है। ऐसे लोगों को ससार में दुखो के पजे में तड़फते रहने के अतिरिक्त और कोई चारा ही नहीं है।

मनुष्य जैसा भोजन करता है, उसका मन भी वैसा ही हो जाता है। लोग कहा करते है कि 'जैसा खावे अन्न, वैसा होवे मन' यह वात अक्षरश. सत्य है। मास खाने वालो की भावनाएं

भी हिंसक हो जाती है और फिर हिंसक पशुओं और मनुष्यों मे कोई अन्तर नहीं रहता।

पाकिस्तान मे मासाहारी लोग वसते है। इसलिए वहा की दशा देखिये कितनी क्रूरता आगई है उस देश मे ? पिछले दिनों पत्रो मे छपे समाचारो से पता चला कि पाकिस्तान मे पशुओं की वहुत कमी होगई है और मांसाहारी जनता को मास नहीं मिल रहा है। अब अमरीका से मास मगाने का प्रवन्ध किया जा रहा है। यदि यही दशा रही तो अन्त मे अमरीका के पशु भी एक दिन समाप्त हो ही जायेगे, फिर क्या होगा।

जो लोग गौ रक्षा की वाते करते है, गौ वध वन्द कराने के इच्छुक हैं, पर स्वय मांस खाते है, उन्हे यह न भूलना चाहिए कि मास खाने की आदत ही तो गौ वध कराती है। फिर वे किस मु ह से गौ वध वन्द कराने की वाते करते है। वे पहले स्वय मास खाना वन्द करें, फिर गौ वध की वाते करें तो उनकी मांग में जान आजायगी।

सहारनपुर में कुछ दिनो पूर्व एक शरणार्थी हिन्दू मृत गौओं का मास वेचते हुए पकडा गया। न जाने कितने दिनो से वह ऐसा किया करता था था। वह मास हिन्दू ही तो खाते होगे, फिर हिन्दू गोमास से कहाँ वचे।

मुझे हिन्दुओ की यह अधोगति देखकर लगता है कि वह समय निकट है जव हिन्दू धर्म मिट्टी मे मिल जायेगा। 'अहिंसा परमो-धर्म' के सिद्धान्त को ताकपर उठाकर रखदेने वाले लोग यह समझ लें कि एक हिंसा दूसरी हिंसा को जन्म देती है। एक पाप दूसरे पाप को और एक दानवीयता दूसरी दानवीयता को जन्म देती है। और इस प्रकार यदि हिंसा चलती रही तो सारा समाज हिंसक पशुओं के समान हो जायेगा। फिर उस समय की दशा कितन

भयकर होगी इसका अनुमान भी नहीं लगाया जा सकता।

कई वर्ष की बात है। एक व्यक्ति होटल मे खाना खाने के लिए गया। उसने मास की प्लेट मगाई, जब वह खाने लगा तो उसके सामने एक मनुष्य की उंगली आगई, जिसमे अंगूठी भी थी, और जब उसने अगूठी को ध्यान से देखा तो उसे पता चला कि यह अंगूठी उसकी पत्नी के हाथ मे थी। कुछ दिन पूर्व ही उसकी पत्नी का अपहरण हो गया था, इसलिए उसे यह समझते देर न लगी कि उसकी पत्नी की हत्या कर दी गई है और वह उसी का मास खा रहा है। पुलिस को सूचना दी गई और फिर वह केस चला।

मांस खाने की आदत ने देवी-देवताओं के नाम की आड ले कर भी अपने हाथ पाव पसार दिये हैं। आप ने सुना होगा, बल्कि कहीं-कहीं तो अपनी आखो से भी देखा होगा कि काली देवी को बकरो और भैंसे की बलि दी जाती है।

आचार्य चतुरसेन शास्त्री ने अपनी पुस्तक 'धर्म के नाम पर' मे देवी-देवताओं के नाम पर होने वाले पशुवध की हृदय को कम्पित कर डालने वाली कुछ घटनाओं का वर्णन किया है। वे लिखते है कि "कुछ दिनों पूर्व देशाटन करते हुए मुझे श्रीवैद्यनाथ धाम जाने का अवसर प्राप्त हुआ। उस दिन विजयादशमी थी, मन्दिर मे बाहर से बहुत से यात्री आये थे। हम लोग स्नान आदि से निवृत्त होकर पण्डे के साथ मन्दिर को चले। ज्योही हम ने मन्दिर के आगन मे प्रवेश किया कि देखा एक व्यक्ति कुछ विचित्र सी वस्तु केले के पत्ते मे लपेटे बड़ी स्वच्छता से लिए जा रहा है। यह ब्राह्मण था और जनेऊ गले मे डाले था। तिलक भी लगा रखा था। मेरे पास बालक था, उसने पूछा यह क्या चीज है। मै खुद भी उसे अनोखा फल समझा, पर ज्योही वह निकट

होकर गुजरा तो मैंने देखा कि वह किसी बकरे की टाँगे थीं। मैंने पण्डे से पूछा यह क्या है? उसने कहा, यह माई का भोग है। मन्दिर के विशाल आगन मे आकर जो देखा उसे देखकर मेरी आँखें खुल गईं। मैंने अपनी आँखो से जीवित पशुओ का हनन इतने निकट से कभी नहीं देखा था, पर वहा अपने सन्मुख मैंने देखा कि यथार्थनामा खून की नदी बह रही है और सैकड़ों धड़ इधर-उधर तड़प रहे हैं। और एक-एक क्षण मे ही खटाखट हो रही है। इतना अधिक खून एक बार ही देखकर और ऐसा भयानक दृश्य देखकर मेरी पत्नी और बालक इस तरह भयभीत हुए कि मैंने समझा कि बेहोश हो जायेंगे। मै स्वय भी विचलित हो उठा। पर तुरन्त मै एक कदम आगे बढ़ गया और गौर से यह अभूतपूर्व दृश्य देखने लगा।

मन्दिर के आगन मे ५० हजार मनुष्य खुशी से समा सकते थे और उस समय १५-२० हजार से कम स्त्री-पुरुष वहा न होंगे। हठात् वेग से खड्ग उठता और धड खून का फव्वारा छोड़ता हुआ धरती पर तड़पने लगता। सिर को मन्दिर के चबूतरे पर खड़ा हुआ पुजारी रस्सी के सहारे फुर्ती से ऊपर खींच लेता। पाच आने पैसे, एक नारियल और कुछ फूल दोने मे रखकर और देने पड़ते तब वह खुद जाकर सिर को देवी की भेंट कर सकता था। वहा से उसे दोने मे प्रसाद मिलता। वह बाहर आकर अपने पशु का धड खींच कर एक ओर जरा हटकर बैठ जाता और उसकी खाल उधेड़ना शुरु करता। पण्डे लोग भी जुट जाते और वहीं उसका खण्ड-खण्ड करके हिस्से बाट लिए जाते, मन्दिर मे चारों ओर बूचड खाना फैला हुआ था। मेरे पैरो मे मानो लोहे की कीलें जड़ दी गई थीं। मैं लगभग आठ या साढ़े आठ बजे मन्दिर में घुसा और एक बजे तक, जब तक वधिक अपना काम

करता रहा वहीं खडा रहा। मेरी पत्नी और साथी घबरा कर एक तरफ हटकर बैठ गए थे। मैंने हिसाब लगाकर देखा, कुल मिलाकर लगभग १२०० बकरे और तीन या चार भैंसे वहा पर काटे गए थे भैंसो का सिर काटने, उनके तडफने, उनके सिर को यूप में फंसाने का दृश्य और भी राक्षसी था। आज मैं उस दृश्य को याद करके भयभीत हो जाता हूँ। यह भी जरूरी था कि एक ही प्रहार मे सिर कट जाय और वह धरती मे न गिरने पाये। वहां मैंने मछलियों के खुले बाजार देखे। आगन के एक ओर शिवजी का मन्दिर था और दूसरी तरफ देवी का। देवी के मन्दिर का चबूतरा इतना ऊँचा था कि खडे मनुष्य की गर्दन तक आता था। वध करने वाला ब्राह्मण था, स्नान कर तिलक छाप लगाए, स्वच्छ जनेऊ पहिने, हाथ मे खाण्डा लिए खड़ा था, हर एक जीव की हत्या करने की उसकी फीस एक आना थी। लोग अपने पशुओ को कोई धकेल कर, कोई कधे पर, कोई रस्सी द्वारा खींचकर और कोई मारता हुआ ला रहा था। मैंने अच्छी तरह देखा कि हर एक पशु अपनी असल मृत्यु को समझ रहा था और भय से काप था। प्रत्येक आदमी की इच्छा पहिले अपना पशु कटाने की थी।

वधिक इकन्नी अपने पास रखता और पशु का मालिक पशु को यूप के पास धकेल देता। वधिक का सहायक फुर्ती से उसकी गर्दन यूप में फसाकर यूप के छेद मे लोहे का सरिया डालता और छींका उसके मुह पर लगा देता। मन्दिर के एक स्थान पर स्त्रियां दोने मे कुछ अनोखी घिनौली वस्तु लिए बैठी थीं। सडी हुई लीची जैसे होती है वैसी वह चीज थी। हमने पूछा तो उन्होंने कहा कि "आखे है" यानी मरे हुए पशुओं की आखें निकाल कर एकत्रित की गई हैं। पूछा इनका क्या होता है, तब कहा "खाते हैं।"

यह है हिंसक दानव रूपी मानव की लीला। लोगों ने देवी-देवता को हिंसक बताकर और ऐसे स्वाग रचकर मास भक्षण को मनुष्य समाज की रग-रग मे बसाने की चेष्टा की है।

श्री बाबूसिंह चौहान (इस पुस्तक के सम्पादक) ने मुझे अपनी आंखों देखी एक घटना सुनाई। घटना इस प्रकार है'—

उन दिनों मैं ठाकुरद्वारा (जि० मुरादाबाद) के सनातन धर्म हाई स्कूल मे पढता था। चैत्र मास की अष्टमी को काशीपुर मे एक मेला लगता है। काशीपुर (जि० नैनीताल) ठाकुरद्वारा से निकट होने के कारण मेला देखने के लिए मैं विद्यार्थियों के साथ चला गया। मेले मे हजारो नर-नारियो की भीड़ थी। पर्व के दिन मन्दिर मे गए। मन्दिर के प्रवेश द्वार मे बडी कठिनाई से प्रवेश किया। इतनी भीड थी कि कन्धे से कन्धा छिलता था। आगन मे जाकर देखा कि एक व्यक्ति हाथ मे खाण्डा लिए खड़ा है। लोग आते हैं और बकरे को आगे करके उसकी कमर या पूंछ पर अपने बालक का हाथ रखा देते है। बकरे को न बांधा जाता है न यूप जैसी किसी चीज मे उसका गला फसाया जाता है और वधिक एक बार बकरे की गदरन से खाण्डा स्पर्श करके कूद कर जोरो से खाण्डा मारता है और सिर धड़ से जुदा हो जाता है। सिर को दान-दक्षिणा लेकर मन्दिर के एक कमरे मे मे लगी काली देवी की मूर्ति के सामने फेंक दिया जाता है और धड तडफता रहता है जिसे बाद को खींचकर एक दूसरे कमरे में फेंक दिया जाता है। बहता हुआ रक्त और तडफते बकरे के शरीर को देख मेरा दिल काप उठा।

कुछ ही देर बाद एक व्यक्ति कन्धे पर बकरा लादे हुए आया। उसके साथ उसकी पत्नी थी जो अपनी गोद मे बालक को लिए हुए थी। बकरे को उस व्यक्ति ने वधिक के सामने खड़ा कर

दिया और बालक के हाथ में उसकी पूंछ थमा दी। उसकी पत्नी का जी कच्चा हो रहा था और वह बकरे का वध होते अपनी आंखों से न देख सकती थी। इसलिए वह घूंघट निकाल कर दूसरी ओर खडी हो गई और वह व्यक्ति बालक के पास रहा। पास ही खड़े अपने मित्र से वह दो बातें करने लगा और हंसता हुआ अपने मित्र की ओर ही देखने में तल्लीन हो गया। उधर वधिक ने बकरे की गरदन से खाण्डा स्पर्श किया और वध करने के लिए उछला। उधर हठात् बकरा आगे बढ गया और बकरे की पूंछ पकड़े-पकडे बालक भी आगे हो गया। बालक का पिता अपने मित्र से ही हंसता-बोलता रहा। वधिक का खाण्डा आया और बकरे के स्थान पर बालक की गर्दन धड से अलग करता हुआ निकल गया। तब बालक के पिता को ज्ञात हुआ। फिर क्या था बालक की माता आर्त्तनाद कर उठी। पिता भी चीख उठा। पर पण्डा और मन्दिर के पुजारियों आदि ने उन्हें ललकार कर कहा, काली माई को बकरा स्वीकार नहीं था, तुम्हारे बालक की बलि चाहती थी। इसमें किसी का क्या दोष ?"

बालक का सिर बकरों के सिर के साथ ही काली माई के सामने फेंक दिया गया और मात-पिता को रोने भी नहीं दिया गया।

मुझ से आगे न देखा गया और बाहर निकलने के बेताब हो गया। ज्यों-त्यों करके मन्दिर से बाहर चला आया। यह है दशा आज धर्म के नाम पर चलने वाली नृशंसता की। मांस भक्षण ने जब धर्म का सहारा ले लिया है, फिर समाज में उसका प्रसार क्यों न हो। परन्तु वह धर्म नहीं जो हिंसा का उपदेश देता हो, जो दुर्व्यसनों की ओर आकृष्ट करता हो और जो

हिंसक प्रवृत्ति को भड़का कर मनुष्य को हिंसक पशु के रूप मे परिणत करता हो, वह धर्म धर्म नहीं है, वह बूचड़खानो का रक्षक प्रचार मात्र है। मनुष्य उसे स्वीकार नहीं कर सकता।

मदिरा मनुष्य की बुद्धि को कुण्ठित कर डालती है, और दुर्व्यसनो की ओर खींच ले जाने मे सफल होती है। यह एक ऐसा दुर्व्यसन है जो कितने ही अन्य दुर्व्यसनो मे को जन्म देता है और मनुष्यत्व का वध कर डालता है। मदिरा कितने ही परिवारों को नष्ट कर चुकी है। और कितने ही लोगो ने अपना जीवन मदिरा के प्याले मे डुबोकर अपना, अपने परिवार और अपनी सन्तान का भविष्य अंधकार के गर्त मे फेक दिया है है। मदिरा के कारण कितने ही राजवंश जगत् के मच से ऐसे मिटे कि उनका नामोनिशान तक नहीं मिलता। इस दुर्व्यसन को पालना अपनी वरबादी को निमत्रण देना है, अपनी बरबादी को पालना है। इस लिए सुख और शाति के इच्छुक मनुष्य इसकी ओर नेत्र उठाकर भी नहीं देखते।

जुआ उन लोगो का खेल है जो मनुष्य जगत् के लिए कलक बन गए हैं। जिन्हे न अपना ज्ञान है न अपने समाज के प्रति अपने धर्म का। इसी प्रकार परस्त्रीगमन, वेश्या वृत्ति, शिकार, और चोरी मनुष्यत्व को कुण्ठित कर डालते है। संसार के किसी भी धर्म ने इन्हे उचित नहीं ठहराया। यह मनुष्य को शैतान बना डालते है। इनके होते धर्म और ज्ञान का होना असम्भव है। और इसलिए मनुष्य को वास्तविक सुख भी प्राप्त नहीं होता। इसलिए शास्त्रो ने आदेश दिया है कि प्रत्येक गृहस्थी इन सातो दुर्व्यसनो का त्याग करे, इन्हे अपने निकट भी न आने दे।

सद्गृहस्थ के लिए भगवान् ने १२ व्रत बनाए है जिनमें पाच अणु व्रत है। 'अणु' का अर्थ है छोटा और व्रत का अर्थ

'प्रतिज्ञा' है। साधुओं के महाव्रत की अपेक्षा गृहस्थो के हिंसा आदि के त्याग की प्रतिज्ञा मर्यादित होती है। अत वह अणुव्रत है। तीन गुण व्रत है। गुण का अर्थ है विशेषता। अस्तु, जो नियम पाच अणुव्रतो में विशेषता उत्पन्न करते हैं, अणुव्रतों के पालन में उपकारक एव सहायक होते है वे गुण व्रत कहलाते हैं। चार शिक्षा व्रत हैं। शिक्षा का अर्थ है शिक्षण अभ्यास। जिनके द्वारा धर्म की शिक्षा ली जाय, धर्म का अभ्यास किया जाय, बुद्धि को सवारा जाय, वे प्रतिदिन अभ्यास करने के योग्य नियम 'शिक्षा व्रत' कहे जाते है।

पांच अणु व्रत

१. स्थूल हिंसा का त्याग—बिना किसी अपराध के व्यर्थ ही जीवों को मारने के विचार से, प्राणनाश करने के सकल्प से मारने का त्याग। मारने में त्रास या कष्ट देना भी सम्मिलित हैं। इतना ही नहीं अपने आश्रित पशुओं तथा मनुष्यों को भूखा-प्यासा रखना, उनसे उनकी अपनी शक्ति से अधिक अनुचित श्रम लेना, किसी के प्रति दुर्भावना, डाह आदि रखना भी हिंसा ही है। अपराध करने वालों की हिंसा का अथवा सूक्ष्म हिंसा का त्याग गृहस्थ धर्म में अवश्य है।

इस अणु व्रत में जैन धर्म की राजनीति भी आ जाती है, और समाज नीति भी। क्योंकि इसका क्षेत्र इतना विशाल है कि समाज की वर्तमान दुर्दशा का कारण और उसे दूर करने का उपाय इसी एक व्रत में भरा पडा है।

(२) स्थूल असत्य का त्याग – सामाजिक दृष्टि से निन्दनीय एव दूसरे जीवों को किसी भी प्रकार कष्ट पहुचाने वाले झूठ

का त्याग। झूठी गवाही, झूठी दस्तावेज, झूठी सलाह, झूठा प्रचार, झूठी कसमे, फूट डलवाना एव वर-कन्या सम्बन्धी और भूमि सम्बन्धी मिथ्या भाषण आदि अत्यधिक निषिद्ध माना गया है।

(३) स्थूल चोरी का त्याग – चोरी करने के सकल्प से किसी की बिना आज्ञा कोई वस्तु उठा लेना चोरी है। इस मे किसी के घर मे पाड देना, दूसरी ताली लगा कर ताला खोल लेना, धरोहर मार लेना, चोरी की वस्तुएँ ले लेना, राष्ट्र द्वारा लगाई हुई चुंगी अथवा टैक्स मार लेना, मर्यादित मूल्य से अधिक मूल्य लेकर वस्तु बेचना, ब्लैक मार्केट करना, अपने नाम मे कोई वस्तु सरकार से लेकर दूसरे को अधिक पैसों मे देना, न्यूनाधिक नाप अथवा बाट रखना, असली वस्तु के स्थान पर नकली आदि शामिल हैं।

(४) स्थूल मैथुन=व्यभिचार का त्याग—अपनी विवाहिता स्त्री को छोडकर अन्य किसी भी स्त्री से अनुचित सम्बन्ध न करना, मैथुन त्याग है। स्त्री के लिए भी अपने विवाहित पति को छोड कर अन्य किसी पुरुष से अनुचित सम्बन्ध के त्याग का विधान है। अपनी स्त्री और अपने पति के साथ भी अधिक और अनियमित ससर्ग रखना, काम भोग की तीव्र इच्छा रखना और कामोद्दीपक शृंगार करना, कामोत्तेजक वार्ता करना, कामोत्तेजक साहित्य पढना और भूखी दृष्टि से परस्त्रियो को देखना भी ब्रह्मचर्य के लिए दूषण माने गए है और सद्गृहस्थ जीवन को कलकित करने वाले है।

(५) स्थूल परिग्रह का त्याग—किसी भी गृहस्थी से यह आशा नहीं की जा सकती कि वह धन का बिल्कुल ही त्याग करदे। क्योंकि बिना धन के गृहस्थी का कार्य ही चलना असम्भव है। अत: शास्त्रो ने गृहस्थ को धन, धान्य, सोना, चादी, घर, खेत,

पशु आदि जितने भी पदार्थ है अपनी आवश्यकतानुसार उन की एक मर्यादा निश्चित कर के रखने की आज्ञा दी है। और बताया कि आवश्यकता से अधिक सग्रह करना पाप है। परन्तु आजकल देखा गया है कि धन सग्रह की प्रवृत्ति ने लोगो को पागल बना दिया है और वे प्रत्येक अनुचित और अवैधानिक उपाय भी धन सग्रह के लिए अपना लेते है जो शास्त्रो के प्रतिकूल है। शास्त्र कहते है कि व्यापार आदि मे यदि निश्चित मर्यादा से अधिक धन प्राप्त हो जाय तो उसे परोपकार मे व्यय कर देना चाहिए। परन्तु "अहरन की चोरी करी, दिया सुई का दान" वाली कहावत चरितार्थ करने से पाप से मुक्ति नहीं मिल सकती।

तीन गुण व्रत

(१) दिग्व्रत=पूर्व पश्चिम आदि दिशाओ मे दूर तक जाने का परिमाण करना अर्थात् अमुक दिशा मे अमुक प्रदेश तक, इतनी कोसों तक जाना, आगे नहीं। यह व्रत मनुष्य की लोभ वृत्ति पर अकुश रखता है और हिंसा से बचाता है। देखा गया है कि मनुष्य व्यापार आदि के लिए दूर देशो मे जाता है और वहां की जनता का शोषण करता है। जब किसी व्यक्ति का यह ध्येय हो जाता है कि चाहे जो भी उपाय करना पडे, धन ही कमाना है तो एक प्रकार से उसकी मनोवृत्ति दूसरो को लूटने की हो जाती है। अतएव जैन धर्म का सूक्ष्म आचार इस प्रकार की मनोवृत्ति मे भी पाप ही देखता है। वस्तुत पाप है भी। शोषण से बढकर और क्या पाप हो सकता है। आज के युग मे यह पाप बहुत बढ़ चला है और इसी पाप की वृद्धि ने ससार की शान्ति

को खतरे मे डाल दिया है और एटम व परमाणु बमो का निर्माण भी इसी पाप के कारण हुआ है। दिग्व्रत मनुष्य को इस पाप से बचा सकता है। शोषण की भावना से न विदेशो को माल भेजना चाहिए और न विदेश का माल अपने देश मे लाना चाहिए।

(२) भोगोपभोग परिमाण व्रत—आवश्यकता से अधिक भोगोपभोग सम्बन्धी वस्तुए काम में न लाने का नियम करना, प्रस्तुत व्रत का अभिप्राय है। भोग का अर्थ एक ही बार काम मे आने वाली वस्तु है। जैसे अन्न, जल, विलेपन आदि। उपभोग मे आने वाली वस्तु का अर्थ उस वस्तु से है जो बार-बार काम में आती है। जैसे मकान वस्त्र, आभूषण आदि। इस प्रकार अन्न, वस्त्र आदि भोग-विलास की वस्तुओ का आवश्यकता के अनुसार परिमाण करना चाहिए। साधक के लिए जीवन को भोग के क्षेत्र मे सिमटा हुआ रखना अतीव आवश्यक है। अनियंत्रित जीवन पशु जीवन होता है।

(३) अनर्थ दण्ड विरमण व्रत—बिना किसी प्रयोजन के व्यर्थ ही पापाचरण करना अनर्थ दण्ड है। श्रावक के लिए इस प्रकार अशिष्ट भाषण आदि तथा किसी को चिढाने आदि व्यर्थ की चेष्टाओ का त्याग करना आवश्यक है। काम वासना को उद्दीप्त करने वाले चलचित्र देखना, गन्दे उपन्यास पढ़ना, गन्दा मजाक करना, व्यर्थ ही शस्त्रादि का संग्रह कर रखना आदि अनर्थ दण्ड मे सम्मिलित हैं।

चार शिक्षा व्रत

१. सामायिक—दो घडी तक पापकारी व्यापारो का त्याग कर समभाव मे रहना सामायिक है। राग द्वेष बढाने वाली

प्रवृत्तियों का त्याग कर मोहमाया के सकल्पों को हटाना, सामायिक का मुख्य उद्देश्य है।

> समता सर्वभूतेपु, सयम शुभभावना
> आर्तरौद्र-परित्यागस्तद्धि सामायिक व्रतम्

अर्थात्—सब जीवों पर समता=समभाव रखना, पाच इन्द्रियों का सयम नियन्त्रण करना, अन्तर्हृदय मे शुभ भावना=शुभ सकल्प रखना, आर्त-रौद्र दुर्ध्यानों का त्याग कर धर्म ध्यान का चिन्तन करना सामायिक व्रत है। प्राचीन जैनाचार्य हरिभद्र, मलयगिरि, आदि ने भिन्न-भिन्न व्युत्पत्तियों के द्वारा, वह भाव सक्षेप मे इस भाति प्रगट किया है।

(क) 'समस्य—रागद्वेषान्तरालवर्तितया मध्यस्थस्य आय' लाभ समाय, समाय एव सामायिकम्।' रागद्वेष मे मध्यस्थ रहना सम है। अस्तु साधक को समरूप मध्यस्थ भाव आदि का जो आय लाभ है वह सामायिक है।

(ख) 'समानि—ज्ञानदर्शनचारित्राणि, तेपु अयन-गमनं समाय, स एव सामायिकम्।' मोक्ष मार्ग के साधन ज्ञान, दर्शन और चारित्र सम कहलाते है, उनमे अयन अर्थात प्रवृत्ति करना, सामायिक है।

(ग) 'सर्वजीवेपु मैत्री साम, साम्नो आय लाभ सामाय स एव सामायिकम्।' सब जीवों पर मैत्रीभाव रखने को साम कहते है अत साम का लाभ जिस से हो, वह सामायिक है।

(घ) 'सम सावद्ययोगपरिहार निरवद्ययोगानुष्ठान रूप जीव-परिणाम., तस्य=आय लाभ. समाय, स एव सामायिकम्। सावद्य योग अर्थात् पाप कार्यो का परित्याग और निरवद्य योग अर्थात् अहिंसा, दया, समता आदि कार्यो का आचरण ये दो जीवात्मा के शुद्ध स्वभाव सम कहलाते है। उक्त सम की जिसके

द्वारा प्राप्ति हो वह सामायिक है।

[च] 'सम्यक् शब्दार्थ सम शब्द सम्यगयनं वर्तनम् समयः स एव समायिकम्।' सम शब्द का अर्थ अच्छा है और अयन का अर्थ आचरण है। अस्तु, श्रेष्ठ आचरण का नाम भी सामायिक है।

[छ] 'समये कर्तव्यम् सामायिकम्।' अहिंसा आदि की जो उत्कृष्ट साधना समय पर की जाती है वह सामायिक है। उचित समय पर योग्य आवश्यक कर्तव्य को सामायिक कहते है। यह अन्तिम व्युत्पत्ति हमे सामायिक के लिए नित्य प्रति कर्तव्य की भावना प्रदान करती है।

२ देशावकाशिक=जीवन भर के लिए स्वीकृत दिशा परिणाम मे से और भी नित्य प्रति गमनादि की सीमा कम करते रहना, देशावकाशिक व्रत है। देशावकाशिक व्रत का उद्देश्य जीवन को नित्य प्रति को बाह्य प्रदेशो मे आसक्ति रूप पाप क्रियाओ से बचा कर रखना है।

३. पौपध व्रत=एक दिन और रात के लिए ब्रह्मचर्य, पुष्प मालादि शृ गार, शस्त्र धारण आदि सासारिक पापयुक्त प्रवृत्तियो को छोडकर एकान्त स्थान मे साधु वृत्ति के समान धर्म क्रिया मे आरूढ रहना, पौपध व्रत है। यह धर्म साधना निराहार ही होती है और शक्ति न हो तो अल्प प्रासुक भोजन के द्वारा भी की जा सकती है।

४. अतिथिसविभाग व्रत=साधु श्रावक आदि योग्य सदाचारी अधिकारियो को उचित दान करना प्रस्तुत धर्म का स्वरूप है। सग्रह ही जीव का उद्देश्य नहीं है। सग्रह के बाद यथावसर अतिथि की सेवा करना भी मनुष्य का महान् कर्तव्य है। अतिथि सविभाग का एक लघु स्वरूप हर किसी भूखे गरीब की अनुकम्पा बुद्धि से

सेवा करना भी है। शास्त्र में उपरोक्त वारह व्रतों के पालन के सम्बन्ध में बताया गया है कि —

वारसगवारो धम्म णिच्छय व्यवहारिणो,
लहते सजया भव्वा भत्ति पराणेण नन्नहा,

अर्थात्—द्वादशाङ्गी दुकान में निश्चयनय और व्यवहारनय को जानने वाले सयमी पुरुष भक्ति-रूपी मूल्य चुकाकर धर्म प्राप्त कर सकते है। ऐसे किए बिना धर्म की प्राप्ति नहीं होगी। यदि मैं सामान्य धर्म पालने वाले के लिए शास्त्रों में बनाए गये नियमों का सक्षिप्त विवरण न दूँ तो यह विषय अधूरा रह जायगा। अत सामान्य धर्म के नियमों का विवरण दिया जाता है:—

१—न्याय पूर्वक अपनी प्रवृत्ति करना, अन्याय त्यागना, अपने स्वार्थ के लिए दूसरों के स्वार्थो पर चोट न पहुँचाना।

२—यह लोक और परलोक नहीं विगडे, इस तरह न्यायपूर्वक द्रव्योपार्जन करे, किन्तु बिना हक का किसी से न लेवे।

३—समानुकूल—समान वय और समान शील वाली अपनी पत्नी में ही सन्तोष करे। पर स्त्री की तरफ बुरी दृष्टि भी न डाले।

४—अपनी आय के अनुसार ही व्यय करे, जिससे द्रव्य प्राप्ति के लिए अनुचित विचार न करना पडे।

५—जहा उपद्रव की सम्भावना हो, उस स्थान से बचता रहे।

६—प्रसिद्ध देशाचार या शिष्टाचार का पालन करे।

७—माता-पिता एव गुरुजनों का आदर करे।

८—शरीर की नीरोगता का ध्यान रखता हुआ, शुद्ध पथ्य-कारी भोजन करे, किन्तु अभ्यत्त्वाचरण न करे।

९—शौच व्यायाम, निद्रा और भोजन यथासमय उचित

रूप से करे। आलस्य न बढने दे।

१०—शरीर शुद्ध, स्वच्छ और स्फूर्तिला बनाए रखने के लिए स्नानादि करे, किन्तु पानी का दुरुपयोग न करे।

११—अपने कुल व देश के अनुरूप शरीर रक्षा के लिए वस्त्रादि पहने, परन्तु लज्जा न रह सके वैसे वस्त्र काम मे न ले।

ससार मे दु ख कोई नहीं चाहता और जिसे आत्मा, जीव, प्रकृति और परमात्मा का ज्ञान है वह जानता है कि सच्चा सुख जीवन मुक्ति मे ही है। प्रत्येक मनुष्य राग-द्वेष से मुक्ति पाकर जीवन मुक्त होना चाहता है, तो जीवन मुक्त होने के पथ पर चले। विचार मनन, निदिध्यासन एव शोधन यह सब सूत्र धर्म के पर्यायवाची शब्द है और आचार, प्रयत्न, पुरुषार्थ ये चारित्र धर्म के पर्यायवाची शब्द है। केवल विचार करे पर उस पर आचारण न करे तो उसका विचार व्यर्थ है। इस लिए यदि मनुष्य वास्तव मे मोक्ष चाहता है, ज्ञान दर्शन के साथ-साथ चारित्र धर्म का पालन करे, तभी उसका उद्देश्य पूर्ण हो सकता है।

सर्वकर्मक्षये सिद्धि,—स्तत सिद्धो हि शाश्वत ।
मोक्षार्थी श्रुतचारित्र—धर्म तस्मात्समाचरेत् ॥

समस्त कर्मो का क्षय होने पर सिद्धि प्राप्त होती है। सिद्धि लाभ होने पर शाश्वत सिद्ध हो जाता है। अत. मुमुक्षु पुरुष को श्रुत-चारित्र रूप धर्म का आचरण करना चाहिए।

चारित्र स्थविर

चारित्र धर्म इतना महत्त्व पूर्ण एवं विशाल है कि उसे निभाने के लिए पग-पग पर उचित परामर्श, पथप्रदर्शन और उपदेश की आवश्यकता पड़ती है। क्योंकि हमारे समाज में कितने ही ऐसे तथ्य हैं जो प्रत्येक मनुष्य के जीवन को तोड़ने-मरोडने की चेष्टा करते हैं। हमारे वर्तमान समाज की कटु वास्तविकताएँ किसी प्राणी को प्रभावित किए बिना नहीं छोडतीं और उन कटु वास्तविकताओं का प्रभाव भी मानव जीवन को कटुताओं से परिपूर्ण देता है। ऐसी-ऐसी घटनाएं सामने आकर खडी हो जाती हैं, ऐसी-ऐसी समस्याओं का सामना करना पडता है कि मनुष्य धर्म से डिगने के लिए विवश किया जाता है और मनुष्य स्वयमेव ही सत्य को दुर्लभ और असम्भव मानने लग जाता है। ऐसे समय पर यदि उचित पथ प्रदर्शन न हो तो फिर सारे जीवन भर का संयम धूल में मिल सकता है। इसलिए हमें शास्त्रानुकूल आचरण करने के लिए एक स्थविर की आवश्यकता होती है। ऐसे स्थविर की जो स्वय सर्वज्ञदेव के बनाए सिद्धान्तों पर आचरण करता हो और मनुष्य के सामने अनायास ही आई उलझी हुई समस्याओं को सुलझाकर चारित्र धर्म का पालन करने का उपाय बता सके। और क्लेशों के वन में से भी उचित पगडण्डी खोज कर बता सके। यह बात निर्विवाद है कि चारित्र धर्म का स्थविर स्वय

महान् होना चाहिए। इतना महान् कि तूफानो के वेग भी जिससे शास्त्रानुकूल आचरण का त्याग करा सकें। जो अपनी महान् आत्मा के कारण प्रकाशस्तम्भ का कार्य कर सके। जिसके आचरण मनुष्य समाज के लिए आदर्श हो। जिसके चारित्र मे वह महानता हो कि सारा समाज उसके सन्मुख नतमस्तक होकर उसके बताए मार्ग का अवलम्बन करने मे हर्ष अनुभव करे।

किसी को महान् मान लिया जाय पर वह सहसा आ पडने वाली कठिनाइयो मे घबरा कर पथ विमुख हो जाता हो, ऐसा व्यक्ति चारित्र धर्म का स्थविर नहीं हो सकता और न ऐसा ही व्यक्ति चारित्र धर्म का स्थविर हो सकता है जो चारित्र धर्म का पालन तो करता हो, पर चारित्र धर्म का जिसे पूर्णतया ज्ञान न हो। आप कहेंगे कि जिसे ज्ञान नहीं वह पालन कैसे कर सकता है ? मै आप से कहूँगा कि ब्राह्मण के घर मे उत्पन्न बालक को भगवान् एक है या दो, इसका ज्ञान नही होता। वह तो अपने मात-पिता को देखकर ही या उनके कहने से पूजा-पाठ करता है। इसी प्रकार भी सम्भव है कि व्यक्ति किसी चारित्र धर्म के निभाने वाले समूह मे रहे और देखा-देखी उन्ही नियमो का पालन करे जिनका चारित्र धर्म का पालन करने वाले करते है। ऐसा व्यक्ति चाहे स्वय जीवन पर्यन्त चारित्र धर्म भले ही निभाले, पर दूसरो की शका का समाधान नहीं कर सकता और कभी किसी पाप के प्रति आकर्षित न होकर अथवा उस समूह से निकल कर चारित्र धर्म का त्याग कर सकता है।

जैसे एक लकडहारा जगल मे लकडिया बीन रहा था, अनायास ही उसे एक थैली पडी मिली। तम्बाकू की थैली समझकर उसने वह उठाली। उस थैली मे दो रत्न थे। जब लकडहारे ने उन्हे देखा तो उसने चमकदार पत्थर समझा और बालको को

देकर खुश करने के विचार से उसने वह थैली सम्भाल ली।

घर गया और अपने लडके को वह दोनों रत्न खेलने के लिए दे दिये। वालक उन दोनो रत्नों को लेकर बालकों में खेलने चला गया।

लकडहारे का लडका बालकों के साथ सडक पर रत्नो के साथ खेल रहा था, उधर से एक जौहरी आ निकला। लडके के पास रत्न देखकर बडा चकित हुआ। उसने समझा कि यह किसी जौहरी का ही बालक है जो अपने पिता के रत्न उठा लाया है। पर बालक के वस्त्र जौहरियों की सन्तान जैसे नहीं थे। वह सोच मे पड गया और उसे एक तरकीब सूझी। जेब से दो पैसे निकाले और बालक को पैसे दिखाकर कहा कि यह पैसे ले लो और रत्न हमे देदो।

पर बालक कभी पैसों से नहीं खेला था, उसने पैसो के बदले मे रत्न न दिये और बोला कि मुझे मेरा पिता मारेगा।

जौहरी ने समझा कि जरूर इसका बाप जौहरी है जिसे इन रत्नों का मूल्य ज्ञात है। रत्न बहुत ही मूल्यवान थे। वह उन्हे प्राप्त करने का लोभ सवरण न कर पाया और बालक के साथ लकडहारे के पास गया।

लकडहारे के फटे कपडों को देखकर वह समझ गया कि रत्नों का मालिक जौहरी नहीं है। इसलिए उसने कहा कि आपके लडके के पास जो चमकीले पत्थर है मैं उनको अपने मकान की दीवार मे खूबसूरती के लिए जडवाना चाहता हूँ, आप दो रुपये लेकर मुझे यह पत्थर दे दीजिए।

लकडहारा जौहरी की बात सुनकर बडा प्रसन्न हुआ और उसने दो रुपये लेकर रत्न दे दिये। क्योकि उसे क्या मालूम कि उन चमकीले पत्थरों का मूल्य क्या है?

इसी प्रकार वे लोग है जो चारित्र धर्म के रत्न तो रखते हैं पर उनके मूल्य का और उनसे होने वाले लाभ का उन्हे ज्ञान नहीं है। जिन्हे आत्मा के साथ चारित्र धर्म के निभाने के लाभ का ज्ञान नहीं है, वे कभी अन्य आकर्षण के वशीभूत होकर उन्हे छोड़ भी सकते है।

अत. चारित्र धर्म का स्थविर वही हो सकता है जो चारित्र धर्म की महिमा का ज्ञान रखता हो, स्वय चारित्र धर्म का पालन करता हो और दूसरो से चारित्र धर्म पालन कराने की क्षमता रखता हो।

चारित्र धर्म की व्याख्या करते हुऐ मैने आपको बताया था कि चारित्र धर्म के दो भेद है। एक गृहस्थ चारित्र धर्म और दूसरा साधु चारित्र धर्म। इसलिए इन दो चारित्र धर्मों के लिए स्थविर भी दो ही प्रकार के होते है।

जिस मुनि ने २० वर्ष तक सयम पाला हो, बीस वर्ष तक साधु चारित्र धर्म का दृढता से पालन किया हो, और शास्त्रो का खूब अध्ययन किया हो उसे साधु चारित्र धर्म का स्थविर कहा जाता है। कहीं-कहीं उसे पर्याय स्थविर भी कहते है।

साधु चारित्र धर्म के स्थविर मे इतना ज्ञान होता है कि कोई भी शास्त्रीय विवाद उठ खडा होने पर वह विना शास्त्र देखे ही शास्त्र की बात कह सकता है। उसे क्षण-क्षण पर शास्त्र देखने की आवश्यकता नहीं रहती और शास्त्रो का पूर्ण ज्ञाता होने के कारण उसके मुंह से कोई ऐसी बात नहीं निकलती जो शास्त्रो के प्रतिकूल हो।

पर्याय स्थविर अथवा साधु चारित्र स्थविर साधु समाज का शिरोमणि साधु होता है, जो स्वय मे स-शरीर शास्त्र की भान्ति माना जाता है। क्योकि शास्त्रो मे कथित ज्ञान तो उसके मस्तिष्क

में होता ही है और शास्त्रों का आचरण उसके चरणों में होता है। ऐसे स्थविर के कहे हुए सिद्धान्त, अनुभवयुक्त होने के कारण प्रायः सत्य ही होते हैं।

ऐसा उच्च सन्त बनने का सौभाग्य सभी मुनियों को प्राप्त नहीं हो जाता। जो साधु शास्त्रों का तोता-रटन्त न करके सच्चे हृदय से शास्त्रों में अध्ययन और प्रत्येक नियमोपनियम का पूर्ण रूपेण पालन करता है वही आगे चल पर्याय स्थविर अथवा साधु चारित्र धर्म स्थविर बन सकता है।

कितने ही मुनि जन जिन्हें दीक्षा लिए तीस-तीस वर्ष हो जाते हैं, पर जिनकी आत्मा सयम में दृढ़ नहीं हुई, इन्द्रियों के विषय को जो जीत नहीं पाये, पूरा ज्ञानाभ्यास जिन्होंने किया नहीं, जो बात-बात में छलक उठते हैं, जिनमें गम्भीरता नहीं, जिनका मन दृढ़ नहीं, वे पर्याय स्थविर नहीं बन पाते।

साधु चारित्र धर्म का स्थविर मरणासन्न पर भी अपने आचारण से नहीं डिगता। वह प्रत्येक बात में अपने लिए बने नियमों का पालन करता है।

जिस श्रावक की आयु ६० वर्ष की हो गई हो और जीवन पर्यन्त गृहस्थ चारित्र धर्म का पालन करता रहा हो, जिसके आचरण से श्रावक समाज प्रभावित हो और जो श्रावक शिरोमणि हो, वह गृहस्थ चारित्र स्थविर कहलाता है।

जिन वृद्ध जनों की बुद्धि परिक्व हो, अनुभव जिन की रग-राग में बसा हो, उनकी शिक्षा का पालन करने में ही समाज का कल्याण होता है। क्योंकि ऐसे ज्ञानी वृद्धों के हृदय में उत्तेजना नहीं रहा करती। इस कारण वे प्रत्येक बात सोच-समझकर ही करते हैं।

प्रत्येक समाज में ऐसे वृद्ध जनों की बडी आवश्यकता है,

क्योंकि युवको मे स्वाभाविक उत्तेजना होती है और उन्हे अनुभव भी नहीं होता। वे किसी भी बात पर उत्तेजित होकर अनर्थ भी कर डालते है।

वृद्धजनो की वह आयु निकल चुकती है जिसमे पापो और भोग के प्रति लालसा ठाठे मारती है। वे ससार मे आते ज्वार-भाटे को देख चुके होते है। उनके नेत्रो के सामने पापो पर आसक्त लोगो की अधोगति होती है। वे सारे समाज पर अपने अनुभव के कारण प्रभाव भी डाल सकते है और कन्ट्रोल भी रख सकते है।

६० वर्ष की आयु मे आकर समाज के स्थविर बने हुए वृद्ध-जन जाति स्थविर भी कहलाते है। जैन शास्त्र सम्प्रदायो को जाति नहीं मानते। मनुष्य समाज की एक जाति है। इसलिए जाति स्थविर का अर्थ है मानव समाज के गृहस्थ जीवन के स्थविर।

देखा जाता है कि आज तो कुछ वृद्धजन भी आज के युवकों के कलकित जीवन के अगुआ बन जाते है। कितने ही ऐसे वृद्ध निकलते है जो ६० वर्ष की आयु पार कर चुके है, पर विषय-भोग मे लिप्त है और वृद्धावस्था मे विवाह रचाते है। ऐसे वृद्ध जन आयु के कारण जाति स्थविर नहीं कहला सकते।

शास्त्र ऐसे वृद्ध जनो को जाति स्थविर कहते है जो श्रावक जीवन के आदर्श हो, जिनकी बुद्धि परिपक्व हो, जो गृहस्थ जीवन पर शास्त्रो की आज्ञाओ का ज्ञान रखते हो, जिन्होने साधुओं के चरण मे बैठ कर जीवन की शिक्षा ली हो, जिन्होने १२ व्रतो का पूर्णतया पालन किया हो। वे ही जाति अथवा समाज के आदर्श हो सकते है और वे ही समाज मे अपना प्रभाव डाल सकते है।

※ दशम सोपान ※

अस्तिकाय धर्म

मै आपको नौ धर्मो की व्याख्या करके बता चुका हूँ कि जैन शास्त्र मानव को वास्तविक मानव और मनुष्यत्व की उत्तम श्रेणी को पहुँचाने के लिए सामाजिक और धार्मिक रूप से किस प्रकार कर्तव्यपरायण प्राणी बनाना चाहते है। आपको यह बात भी प्रगट हो गई होगी कि जैन शास्त्र मनुष्य को केवल माला घुमाने वाला भक्त ही नहीं बनाना चाहते वरन वे उसे समाज मे भी उच्च श्रेणी दिलाकर आदर्श मानव के रूप मे भी परिणत करना चाहते हैं। इसीलिए आपने इन नौ धर्मो मे जिनका वर्णन किया जा चुका है, देखा होगा कि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे मनुष्य का जो आदर्श और जो कर्तव्य होना चाहिए उसकी ओर शास्त्रो मे मुख्यतया इंगित किया है। अब मै इन दस धर्मो मे से अन्तिम धर्म, धर्म जगत् के अन्तिम सोपान, अस्तिकाय धर्म की व्याख्या करूँगा।

शास्त्र मे अस्तिकाय धर्म की व्याख्या इस प्रकार की है।

अस्तय प्रदेशास्तेषा कायो-राशि-रस्तिकाय स एव धर्मो गति पर्याये जीवपुद्गलयोर्धारणादित्यस्तिकाय धर्म

अर्थ—अस्ति अर्थात् प्रदेश की काय अर्थात् राशि को अस्तिकाय कहते हैं। तद्रूप जो धर्म है, वह गति और पर्यायो मे पुद्-

गलो का धारण-कर्त्ता होने के कारण, अस्तिकाय धर्म कहलाता है।

यहा टीकाकारो ने पञ्चास्तिकाय मे से केवल धर्मास्तिकाय को ही अस्तिकाय धर्म मे गिनाया है। इसका तात्पर्य यह है कि सूत्र भगवती जी मे धर्मास्तिकाय के अभिवचन, अर्थात् अनेक नामों मे धर्म और धर्मास्तिकाय को सहधर्मी रूप से एक माना है।

वहा इस प्रकार का पाठ है—

धम्मत्थिकायस्स ण भते ! केवइया अभिवयणा पराणत्ता ? गोयमा ! अरोगा अभिवयणा पराणत्ता। त जहा—धम्मेत्तिवा धम्मस्थिकाएइवा, पाणाइवाय वेरमणेति वा, मुसावाय वेरमणे-तिवा, एव जाव परिग्गाह वे रमणे कोह विवेगेति वा, जाविन्छा-दन्सणसल्लविवेगेतिवा, इरियासमिए ति वा, भापा समिए ति वा, एसणा समिए ति वा, आदाण भडमत्त निवसे वणासमिए ति वा, उच्चारपासवण खेलजल्ल सिंघाण पारिठावणिया समिई ति वा, मणगुत्ती ति वा, वायु गुत्ती ति वा, जे यावराणे तहप्पगारा, सव्वे ते धम्मत्थिकायस्स अभिवयणा ॥

उपरोक्त पाठ से प्रगट होता है कि धर्म और धर्मास्तिकाय को, नाम के साधर्म्य से एक ही माना गया है। इसी कारण टीकाकार ने अस्तिकाय-धर्म मे 'धर्म' शब्द के साथ धर्मास्तिकाय को ही उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत किया है। धर्मास्तिकाय को धर्म का सह-धर्मी बतलाने का एक यह भी कारण है कि धर्मास्तिकाय, गति सहायक द्रव्य है। अतएव कर्म के नाश करने मे धर्मास्तिकाय की भी सहायता पहुचती है। कदाचित् इसी अभिप्राय से शास्त्रकार ने धर्म और धर्मास्तिकाय एक ही नाम से बतलाये है।

द्रव्य ६ प्रकार का है—(१) धर्म, (२) अधर्म, (३) आकाश, (४) काल, (५) पुद्गल, (६) जीव।

श्री भगवती सूत्र मे कहा है —

'भगवान् ! द्रव्य कितने कहे गये है ?'

"गौतम ! ६ द्रव्य कहे गये है, वे इस प्रकार हैं —

धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय, जीवास्तिकाय और अद्धा-समय"

उत्तराध्ययन मे भी कहा है कि—

"धर्म, अधर्म, आकाश, काल, पुद्गल और जीव को सर्वज्ञ, सर्वदर्शी जिन भगवान् ने लोक सज्ञा दी है।"

धर्म, अधर्म और आकाश, ये तीन द्रव्य एक-एक है, काल, पुद्गल, जीव, अनन्त-अनन्त द्रव्य है।

काल को छोडकर शेप पाच द्रव्य अस्तिकाय कहलाते हैं। अस्ति एक अव्यय है और प्रदेश का वाचक है। जो अपने स्थान से च्युत न होने वाला, अर्थात् जो द्रव्य के साथ ही जुडा हुआ निर्विभाग—जिसका फिर विभाग नहीं हो सके, वह खण्ड प्रदेश कहलाता है। पुद्गल गलन स्वभाव वाला है अत जब यह निर्विभाग खण्ड पुदगल के स्कन्ध अथवा देश से अलग हो जाता है तब वही खण्ड परमाणु कहलाता है और वह परमाणु अविभाजनीय होता है। पर जब वही परमाणु पुन पुद्गल के स्कन्ध अथवा देश मे आ मिलता है तब वह फिर प्रदेश कहलाने लगता है। इसी अभिप्राय से पुद्गल अस्तिकाय के चार भेद बताए हैं।

(१) स्कन्ध (२) देश (३) प्रदेश और (४) परमाणु काय का अर्थ है समूह जिसमे अथवा जिसके प्रदेशो का समूह होता है वह अस्तिकाय कहलाता है। अस्तिकाय अर्थात् प्रदेशो का समूह वाला। धर्म रूप अस्तिकाय धर्मास्तिकाय समझना चाहिए। इसी प्रकार आकाश, अधर्म आदि के साथ अस्तिकाय लगा है। पर चूँकि काल का समूह रूप नहीं होता इसलिए उसके साथ अस्ति-

काय नहीं जोडा गया।

स्वभाव से अथवा प्रयोग से गतिक्रिया मे परिणत हुए जीव और पुद्गलो की गति मे जो सहकारी धारण हो उसे धर्मास्तिकाय कहते है। पुद्गलो और जीव का स्वभाव ही गमन करना है। इस गमन क्रिया मे उपादान कारण वे स्वय ही होते है परन्तु धर्मास्तिकाय सहायकमात्र होने से निमित्त कारण है।

जैसे सरिता या सागर मे अवगाहन करने वाले मच्छों मे गमन करने की इच्छा स्वय ही उत्पन्न होती है। जल सहायक मात्र है। हा यदि मच्छ ठहर जाये तो पानी स्वय उसे गमन की प्रेरणा नहीं देगा तो भी जल निमित्त कारण ही है।

भगवान् ने धर्मास्तिकाय का लक्षण इस प्रकार बताया है—

"गइलक्खणो उ धम्मो"

धर्मास्तिकाय गति लक्षण वाला है। अर्थात् गति रूप कार्य से धर्मास्तिकाय का अनुमान होता है।

धर्मास्तिकाय के चार गुण है—

(१) अरूपित्व, (२) अचेतनत्व, (३) अक्रियत्व, (४) गति-सहायत्व और चार पर्याय है।

१ स्कन्ध २ देश ३ परदेश और ४ अगुरुलघुत्व द्रव्य क्षेत्र, काल, भाव और गुण इन पाच भेदो से धर्मास्तिकाय जाना जाता है। जैसे धर्म से धर्मास्तिकाय एक है। क्षेत्र से लोक प्रमाण है, काल से आदि-अनन्त है, भाव से रूपादि रहित है। रूप, रस, गन्ध, स्पर्श उसमे नही है और गुण से चलन गुण वाला है।

स्वभाव से स्थिति रूप परिणत हुए जीव और पुद्गलो की स्थिति मे सहकारी होना अधर्मास्तिकाय लक्षण है। जब पुद्गल और जीव स्वभाव से ही स्थित होते है, अपनी स्थिति मे उपादान कारण तो स्वय वही है पर अधर्मास्तिकाय के सहायक मात्र होने

से वह निमित्त कारण बन जाता है।

जैसे स्वय ठहर कर आराम लेने की पथिकों की स्थिति में छाया सहकारी तो होती है, किसी को ठहरा कर जबकि वह स्वय न ठहरना चाहे, आराम नहीं दे सकती। अत वह प्रेरणा-दायक नहीं है।

भगवान् ने कहा है कि स्थान अर्थात् स्थिति ही जिस का लक्षण है अर्थात् स्थिति रूप कार्य से जिसका अनुमान होता है उसे अधर्मास्तिकाय कहते है।

१. अरूपित्व २ अचेतनत्व ३ अक्रियत्व और ४ स्थिति सहायत्व आदि अधर्मास्तिकाय के गुण और १ स्कन्ध २ देश ३ प्रदेश ४. अगुरुलघुत्व पर्याय है।

अधर्मास्तिकाय पाच प्रकार से जाना जाता है द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, और गुण के भेदों से। जैसे अधर्मास्तिकाय धर्म से एक है, क्षेत्र से लोक प्रमाण है, काल से आदि और अनन्त है। भाव से अरूपी अर्थात रूप, रस, गध और स्पर्श से रहित है। और गुण से स्थिति गुण वाला है।

आकाश शब्द के दो भाग है 'आ' और 'काश'। 'आ' का अर्थ है सभी ओर से—सर्वत्र और 'काश' का अर्थ है प्रकाशित होने वाला। तात्पर्य यह है कि अपने अवगाह दान नामक गुण से जो सर्वत्र प्रकाशित होता है वह आकाश है।

अथवा जहा धर्म, अधर्म, काल, पुद्गल और जीव अपने-अपने स्वरूप से प्रकाशित होते है उसे आकाश कहते है।

धर्म, अधर्म आदि समस्त द्रव्यों का आधार होकर जो उन्हें आश्रय देता है वह आकाश है।

आकाश दो प्रकार का है। धर्म आदि द्रव्यो का आधार और असख्यात प्रदेश रूप आकाश खण्ड, लोकाकाश कहलाता है।

लोकाकाश से भिन्न अनन्त प्रदेशी अलोकाकाश कहलाता है।

औपपातिक सूत्र में कहा है कि "सिद्ध भगवान् कहा रुक जाते है, कहा स्थित होते है ? कहा शरीर का त्याग करके कहा जाकर सिद्ध होते है ?

सिद्ध भगवान् अलोक मे रुक जाते है, लोक के अग्र भाग मे स्थित होते है, यहा शरीर का त्याग करके वहा जाकर सिद्ध हो जाते है

आकाश का प्रमाण अन्य सब द्रव्यो की अपेक्षा बड़ा है, क्यो कि वह अनन्त प्रदेशी है। अत आकाश महास्कन्ध रूप है।

(१) अरूपित्व (२)अचेतनत्व (३) अक्रियत्व (४) अवगाह-दायित्व ये आकाशास्तिकाय के गुण है और (१) स्कन्ध (२) देश (३) प्रदेश तथा (४) अगुरुलघुत्व, उस के पर्याय है।

द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव और गुण के भेद से आकाश द्रव्य पाच प्रकार से जाना जाता है। जैसे आकाशास्तिकाय एक है। क्षेत्र से लोकालोक प्रमाण है, काल से आदि-अन्त रहित है। भाव से अरूपी है, उसमे वर्ण, रस और स्पर्श नहीं पाये जाते। गुण से अवकाश देने वाला है।

जिसके द्वारा वस्तु कली जाय अर्थात् जानी जाय वह काल है। यह बालक मासिक (एक मास का) है, यह बालक वार्षिक (वर्ष भर का) है। यह फूल वासतिक है (वसत ऋतु सम्बन्धी) है। इस रूप मे वस्तुओ का ज्ञान काल के द्वारा ही होता है।

अथवा स्वभाव से परिणत होने वाले पदार्थ समूहो द्वारा निमित्त रूप मे जो प्राप्त किया जाय वह काल कहलाता है।

स्वभाव से विद्यमान पदार्थों की विद्यमानता रूप जो वर्तना है उसमे सहकारी कारण होना काल का लक्षण है।

जल्दी और देर का ज्ञान काल के कारण ही होता है, जैसे इस

महात्मा ने चिरकाल तक तप किया। गज सुकुमार मुनि ने शीघ्र ही आत्म कल्याण कर लिया। इस प्रकार विलम्ब और अविलम्ब का ज्ञान विना काल के नहीं हो सकता।

कल, आज, परसों आदि कालवाचक शब्द भी काल नामक द्रव्य को प्रगट करते है।

समय क्षेत्र व्यापी, निर्विभाग, आद्यन्त रहित, एक प्रदेश रूप वर्तमान समय को 'काल' कहते हैं। यह एक होने के कारण अस्तिकाय नहीं है।

सूर्य, चन्द्र आदि ज्योतिष्कों की गति का आश्रयण कर काल का विभाग होता है।

काल-द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव और गुण के भेद से पांच प्रकार से जाना जाता है। जैसे द्रव्य से काल एक है, क्षेत्र मे समय क्षेत्र प्रमाण वाला, काल से आद्यन्त रहित, भाव से अरूपी, अर्थात् वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श-रहित और गुण से वर्तना लक्षण वाला है।

आपस में मिलकर इकट्ठे होकर नवीन घनघटादि के रूप में जो एकमेक हो जाते है और जो गल जाते है, अर्थात् टूटी हुई मोतियों की माला की भाति विखर जाते है वे पद्गल कहलाते हैं। तात्पर्य यह है कि जिसमे पूरण और गलन धर्म हो वह पुद्गल है। पुद्गल रूप अस्तिकाय कहलाता है।

पुद्गलो का लक्षण रूपवत्त्व है। जिसमे रूप, रस, गध और स्पर्श आदि पाया जाय अर्थात् जो मूर्तिक हो वह पुद्गल है। यद्यपि परमाणु आदि पुद्गल अति सूक्ष्म हैं और अतीन्द्रिय होने के कारण उन के गुण इन्द्रियों द्वारा नहीं ग्रहण किये जाते तथापि जब उन पुद्गलों का वाहर स्कन्ध के रूप मे परिणाम होता है तव वे इन्द्रियों द्वारा ग्राह्य हो जाते हैं। और उनका रूपवत्व प्रतीत होने लगता है।

परमाणु से लेकर अचित महास्कन्ध तक सब पुद्गल विविध परिणाम वाले होते है। उनके प्रदेश यथा सम्भव संख्यात और असख्यात अथवा अनन्त होते हैं। सख्यात परमाणुओ के सयोग से वना हुआ स्कन्ध सख्यात प्रदेशी कहलाता है, असख्यात परमाणुओं से वना हुआ स्कन्ध असख्यात प्रदेशी और अनन्त परमाणुओं से निष्पन्न स्कन्ध अनन्त प्रदेशी कहलाता है। परमाणु के अनेक भाग नहीं हो सकते अतएव वह अप्रदेशी है।

शरीर, वचन, मन, और प्राण आदि पुद्गलों के परिणाम विशेप—गमन, वचन, चिन्तन और प्राणन [सास लेना] आदि रूप से जीवों का उपकार करते हैं। अत शरीर आदि के रूप से पुद्गल ही जीवो का उपकार करते है, इन मे शरीर पाच प्रकार का है। (१) औदारिक (२) वैक्रिय (३) आहारक (४) तैजस और (५) कार्मण

प्राणियो मे सुख, दु.ख, जीवन और मरण स्वरूप जो परिणाम होते है उन सव परिणामो मे पुद्गल ही कारण है, अत सिद्ध हुआ कि पुद्गल ही जीवो का उपकार करते है।

वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श पुद्गलों के विशेप असाधारण गुण है—सहभावी परिणाम हैं। शब्द, गन्ध, सूक्ष्मता, स्थूलता, सस्थान (आकार), भेद, तम, छाया, आतप उद्योत आदि पर्यायों के द्वारा पुद्गल जाना जाता है।

वर्ण पाच प्रकार का है काला, नीला, लाल, पीला और और सफेद। गन्ध दो प्रकार का है सुगन्ध और दुर्गन्ध। रस के पाच भेद है, तीखा, कडुवा, कषैला, खट्टा और मोठा। स्पर्श के आठ भेद है, कठिन, कोमल, भारी, हल्का, शीत, उष्ण, चिकना और रुखा। सस्थान पांच प्रकार का है, वृत्त (गोल) त्र्यस्त्र (तिकोना) चतुरस्त्र (चौकोर), आयत (लम्बा) और परिमण्डल (गोल मटोल)।

पुद्गल के दो भेद है परमाणु और स्कन्ध । परमाणु पुद्गल का अन्तिम विभाग है । वह निरश है । परस्पर असयुक्त है । सूक्ष्म होने के कारण इन्द्रियो की उस मे प्रवृत्ति नहीं हो सकती । एक वर्ण, एक गन्ध, एक रस और दो स्पर्शो से युक्त है ।

प्रश्न—भगवन् ! द्रव्य परमाणु कितने प्रकार का कहा गया है ?

उत्तर—गौतम ! चार प्रकार का कहा गया है । अच्छेद्य, अभेद्य, अदाह्य और अग्राह्य ।

परमाणु पुद्गल होने के कारण मूर्तिक है, फिर भी उसके खण्ड नहीं किए जा सकते ।

परस्पर मिले हुए, आपस मे बद्ध-परमाणु का समूह स्कन्ध कहलाता है । स्कन्ध मे रहा हुआ निरश अवयव प्रदेश कहलाता है ।

सघात (मिलावट) से, भेद (बिछुडना) से तथा सघात भेद से द्विप्रदेशी आदि स्कन्ध उत्पन्न होते है ।

जो जीता है अर्थात् प्राणो को धारण करता है वह जीव कहलाता है । 'सिद्धो' मे प्राणों का अभाव होने से वह 'अजीव' हो जायेगे, यह कहना ठीक नहीं है । सिद्धो मे यद्यपि पाच इन्द्रिय आदि दस प्रकार के द्रव्य प्राण नहीं है तथापि भाव प्राण पाये जाते है और इन भाव प्राणो के कारण सिद्ध भगवान् का जीवपन सिद्ध हो जाता है । विशिष्ट प्रकार के प्राणो का सम्बन्ध होने पर जीने वाले को ही जीव कहते है ।

प्राण दो प्रकार के है, १. द्रव्य प्राण, २ भाव प्राण । द्रव्य प्राणो के दस भेद है, पाच इन्द्रिया, तीन बल, मनोबल, वचन बल, कायबल, श्वासोच्छ्वास, तथा आयु यह दस द्रव्य प्राण यथासम्भव ससारी जीवो के होते है । किन्तु सब प्रकार के कर्म सम्बन्ध से रहित सिद्धो मे केवल भाव प्राण ही पाये जाते

है। सिद्ध जीव भाव प्राणों के कारण ही प्राणी कहलाते हैं।

भाव प्राण के चार भेद हैं, अनन्त ज्ञान, अनन्त वीर्य, अनन्त सुख और अनादि-अनन्त-स्थिति।

जीवास्तिकाय के चार गुण हैं, (१) अनन्त ज्ञान (२) अनन्त दर्शन, (३) अनन्त सुख और (४) अनन्त वीर्य।

(१) अव्याबाध, (२) अनवगाहना, (३) अमूर्तिकता और (४) अगुरुलघुत्व ये जीव की पर्याय है।

द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव और गुण के भेद से पांच प्रकार से जीवास्तिकाय का ज्ञान होता है। (१) द्रव्य से जीव अनन्त है, (२) क्षेत्र से लोक प्रमाण है, (३) काल से आदि अन्त रहित है। (४) भाव से अरूपी है—रूप,रस, गन्ध और स्पर्श से रहित है, (५) गुण से चेतना लक्षण है।

मैंने ६ द्रव्यों की व्याख्या करके उनके गुण और रूप आदि को आपके सामने रखा है। आप यह समझ गए होगे कि प्रत्येक द्रव्य का अपना एक गुण होता है।

आत्मा का भी अपना एक गुण है। पर जब वह अपने गुण को छोडकर पर गुण मे रमण करने लगता है, तब आत्मा पर दु:ख पडता है। जो इस सत्य को जानते है वे आत्मा को पर गुण मे रमण नहीं करने देते। भगवान् ने कहा है कि हे आत्मा! जब जड अपने स्वभाव को नहीं छोड़ते तो तू चेतन होकर अपने स्वभाव को क्यों छोडता है?

ससार की वस्तुओ को, संसार को उदासीन भाव से भोगना चाहिए। क्योंकि भोगो मे लिप्त हो जाना ही तो आत्मा का निज गुण छोडकर परगुण मे रमण करना है।

आत्मा जब निज गुण की ओर बढ़ता है, और बिना किसी अटकाव के निज गुण की ओर बढ़ता ही रहता है तो आत्मा

निर्मल होती जाती है और फिर विशुद्ध होकर जन्म-मरण के बन्धनों से मुक्त हो जाती है। परन्तु देखा जाता है कि वे लोग जो धर्म को समझते हैं। और जिनके सामने समस्त अस्तिकायों का गुण स्पष्ट है, जो आत्मा के स्वभाव और प्रकृति के आवरण से होने वाले दु ख को समझते हैं वे भी प्रकृति में उलझे पडे हैं और आत्मा के स्वभाव की ओर आत्मा को प्रेरित नहीं करते। इसी कारण उन्हें दु ख पडते रहते हैं।

भगवान् ने कहा है कि तुम्हे जो शक्ति मिली है वह धर्मों के लिए, सदुपयोग के लिए है। शक्ति होने पर उसने धर्म पूरा नहीं किया तो उसे दुःख भोगने ही पड़ेंगे।

कर्म जो आप करते हैं, उनका आत्मा पर प्रभाव होता है। जब आत्मा को काल एक रूप से उठा देता है, सारे कर्मों का कोप आत्मा के साथ जाता है। इस प्रकार जिसने संसार मे धर्म नहीं निभाया उसे आत्मा के साथ लगी हुई प्रकृति नरक मे ले जाती है। पर जो जीव शुभ प्रकृति वाला है, शुभ प्रकृति उसे खींचकर ऊपर ले जाती है। जीवात्मा जैसी-जैसी प्रकृति भावों से ग्रहण करता है, आयु समाप्त होते ही वह उसे उसी ओर खींच ले जाती है। जैसी प्रकृति प्राप्त करता है वैसी ही शक्ल और गुण आदि प्राप्त कर लेता है और जीवन-मरण के बन्धन मे रहा जीवात्मा इसीलिए ८४ लाख योनियों मे विचरता रहता है। जब कभी अशुभ प्रकृति क्षीण होती है, तब ही वह मनुष्य योनि मे प्रवेश करता है।

मनुष्य के शरीर मे फोड़ा निकल आता है तो किसी प्रकार उसे क्षण भर मे तो समाप्त नहीं किया जा सकता, धीरे-धीरे ही ही उसे मिटाया जाता है। इसी प्रकार आत्मा पर पडा प्रकृति का आवरण धीरे-धीरे ही समाप्त किया जाता है। अत. मनुष्य जैसी

परम योनि प्राप्त करके जीवन पर्यन्त आत्मा की शुद्धि में लगा रहना चाहिए। और उसका एक मात्र कार्य हो जाता है कि सर्वज्ञ देव के अनादि विधान पर चले। उन पर चलने की शक्ति बटोरे। भगवान् कहते है कि ज्ञान सच्ची आस्था के विना जो चल रहा है, जब तक पुण्य है चलता रहेगा, पर यदि मनुष्य पुण्य नहीं कमाता, तो एक दिन पुण्य की शक्ति समाप्त हो जायेगी। जब आय तो कुछ न हो, व्यय ही व्यय हो, तो एक दिन कुबेर का खजाना समाप्त हो सकता है। इसी प्रकार पुण्य न कमाया गया तो एक दिन पुण्य का कोप समाप्त हो जायेगा।

शास्त्रो मे जितने धर्म बताए गए है वे सब आत्मा को मुक्ति के मार्ग पर ले जाने के लिए ही है। ग्राम धर्म, नगर धर्म, राष्ट्र धर्म आदि अविनाशी भी है कुछ नाशवान् भी। पर सूत्र धर्म, चारित्र धर्म और अस्तिकाय धर्म अविनाशी है। इन तीनो से आत्मा का धर्म निकलता है जो अविनाशी है। अत यह तीनो धर्म सिद्धपद की प्राप्ति के मुख्य साधन है।

जिसमे जिस धर्म की अस्ति है उसको प्रकट करना यानी आत्मा मे आत्म-धर्म रहा हुआ है, उसको समझना और पर-भाव मे जागते हुए आत्मा को रोक कर स्वभाव दशा मे लाना, आत्म-धर्म मे रमण करना, तन्मय हो जाना अस्तिकाय धर्म समझना है। जो ग्राम, नगर, राष्ट्र आदि सूत्र-चारित्र धर्म का यथोचित पालन करेगा, वही आत्मा के सत-धर्म रुप सिद्ध स्थान मे पहुच कर अस्तिकाय धर्म मे स्थिर हो जावेगा।

अस्तिकाय स्थविर

अस्तिकाय धर्म पालने के लिए भी अन्य धर्मों की भान्ति स्थविर की आवश्यकता होती है। अस्तिकाय स्थविर उसे कहते हैं जो अस्तिकाय धर्म का ज्ञान रखता हो, जो पाचों अस्तिकायों, काल और आत्मा सम्बन्धी सम्पूर्ण ज्ञान रखे, जो आत्मा को निज गुणों का त्याग न करने दे और अपने ज्ञान, वचन और आचरण से मानव समाज को अस्तिकाय धर्म के पालन करने की प्रेरणा दे।

यह तो आप समझ ही गए होंगे कि अस्तिकाय धर्म के पालन के लिए जैन सिद्धान्तों और जैन दर्शन का पूर्ण ज्ञान होना चाहिए। जिस व्यक्ति को दर्शन का पूर्ण ज्ञान भी हो और अपनी आत्मा को दूसरे द्रव्यों में रमण न करने दे तथा जो अपनी आत्मा को बहुत हद तक निर्मल कर चुका है, वही अस्तिकाय स्थविर हो सकता है।

आज ससार में कितने ही दर्शन शास्त्र हैं। प्रत्येक का अपना-अपना सिद्धान्त है। प्रत्येक धर्म अपने दर्शन शास्त्र से ही अपने नियम निकालता है। दर्शन ही धार्मिक मान्यताओं का आधार होता है। इसलिए वह व्यक्ति जो अपने धर्म के दर्शन से भली भान्ति परिचित है और जो अपने ही दर्शन पर विश्वास ले आया है, जिसके मन में कोई शङ्का नहीं है। जो अपने ज्ञान से

जैन शास्त्रों के दर्शन को मानव समाज में सर्वश्रेष्ठ प्रमाणित कर सके, वही अस्तिकाय स्थविर बनने योग्य है।

अस्तिकाय स्थविर किसी धर्म से और किसी व्यक्ति से घृणा नहीं करता, वह प्रत्येक मानव को उसकी आत्मा और ससार का रहस्य बताता है और उसे सर्वज्ञदेव द्वारा आत्मा को निरावरण करने के लिए बनाए नियमों को सत्य सिद्ध करने की क्षमता होती है।

अस्तिकाय स्थविर महान् आत्मा होता है, वह प्रकृति के झंझट में नहीं फंसता। वह अपने मन, वचन, कर्म से माया से दूर रहता है, वह आत्मा की निर्मलता पर विश्वास करता है। वह लोक और परलोक के रहस्यों का ज्ञाता होता है। अतः समाज के लिए ऐसे योग्य स्थविरों की आवश्यकता है। विशेषतया आज के युग मे, जबकि नई-नई बातें उठ रही हैं और नास्तिक नए-नए आकर्षक नारे उठाकर जनता को पथभ्रष्ट करने के लिए प्रयत्नशील हैं।

उपसंहार

महाभारत में व्यास जी कहते हैं :—

गुह्य ब्रह्म तदिदं ब्रवीमि नहि मानुषात श्रेष्ठतर हि किंचित् ।

'आओ ! मैं तुम्हें एक रहस्य बताऊँ :—यह अच्छी तरह मन में दृढ़ करलो कि संसार में मनुष्य से बढ़कर और कोई श्रेष्ठ नहीं है ।'

और भगवान् महावीर ने औपपातिक सूत्र में कहा है —

"जो प्राणी छल, कपट से दूर रहता है—प्रकृति अर्थात् स्वभाव से ही सरल होता है, अहंकार से शून्य होकर विनयशील होता है, सब छोटे-बड़े जीवों का यथोचित आदर सम्मान करता है, दूसरों की किसी भी प्रकार की उन्नति को देखकर डाह नहीं करता, प्रत्युत हृदय में हर्ष और आनन्द की स्वाभाविक अनुभूति करता है, जिसकी रग-रग में दया का संचार है—जो किसी भी दुखित प्राणी को देखकर द्रवित हो उठता है, एवं उसकी सहायता के लिए तन, मन, धन सब लुटाने को तैयार हो जाता है, वह मृत्यु के पश्चात् मनुष्य जन्म पाने का अधिकारी होता है ।"

परन्तु यह तो केवल मनुष्य योनि प्राप्त करके भविष्य में मनुष्य जीवन पाने के लिए ही कहा गया है । वैष्णवों का मत है कि ८४ लाख योनियों में जन्म लेने के उपरान्त ही मनुष्य योनि प्राप्त होती है । वैदिक धर्म ईश्वर को मानता है और उसका मत

है कि भगवान् ही मनुष्य को बनाता है। देखिये उनकी भगवद् गीता मे मनुष्य की सर्वश्रेष्ठता का कितना सुन्दर वर्णन है :—

सृष्ट्वा पुराणि विविधान्यजया ऽऽत्मशक्त्या,
वृक्षान् सरीसृप—पशून्-खग-दंश-मत्स्यान् ।
तैस्तैरतृप्त-हृदयो मनुज विधाय,
ब्रह्मावबोधधिषण मुदमाप देव. ॥

"ईश्वर ने अपनी आत्मशक्ति से नाना प्रकार की सृष्टि वृक्ष, पशु, सरकने वाले जीव पक्षी, दश और मछली को बनाया। किंतु उन से वह तृप्त न हो सका, सन्तुष्ट न हो सका। आखिर मनुष्य को बनाया और उसे देख कर आनन्द मे मग्न हो गया। ईश्वर ने इस बात से सन्तोष माना कि मेरा सृष्टि का रहस्य समझने वाला मनुष्य अब तैयार हो गया है।"

परन्तु क्या ईश्वर की आशा पूर्ण हुई ? क्या आज के मनुष्य को देखकर ईश्वर सन्तुष्ट होगा ? क्या ईश्वर को स्रष्टा मानने वाले अपने स्रष्टा की आशाओ के अनुकूल कार्य कर रहे है ? और क्या यह भी कहा जा सकता है कि वर्तमान मनुष्यो को ईश्वर ने स्वय अपने हाथो से बनाया है ? यदि ईश्वर के बनाए इन्सान ऐसे है तो फिर शैतान की सृष्टि कौन सी है ?

एक उर्दू कवि ने कहा है —

फरिश्ते से बढकर है इन्सान बनना,
मगर इसमे पडती है मेहनत ज्यादा।

क्योकि जो मनुष्य शरीर पाकर वास्तविक मनुष्य बन पाते हैं उनके लिए "द्विभुज परमेश्वर की सज्ञा की जाती है। भगवान् महावीर ने मनुष्यो को 'देवाणुप्पिय' के नाम से सम्बोधित किया किया है। 'देवाणुप्पिय' का अर्थ है "देवानुप्रिय" (देवताओ का प्रिय), इस से सिद्ध होता है कि मनुष्य की श्रेष्ठता कितनी

महान् है।

'मनुष्य तू देवताओ से भी ऊँचा है। देवता भी तुझ से प्रेम करते है। वे मनुष्य बनने के लिए आतुर हैं, कितनी विराट् प्रेरणा है मनुष्य की सुप्त आत्मा को जगाने के लिए। जैन सस्कृति मे मानव जन्म को अति दुर्लभ एव महान् माना गया है। जैसे कि हम इस पुस्तक के 'विषय प्रवेश' मे कह चुके है। यहा एक और उदाहरण हम प्रस्तुत करते है।

'कल्पना करो कि भारतवर्ष के जितने भी छोटे-बडे धान्य हो, उन सब को देवता किसी स्थान विशेष पर यदि इकट्ठा करे, पहाड जितना ऊचा, गगन चुम्बी ढेर लगादे और उस ढेर मे एक सेर सरसो मिलादे, खूब अच्छी तरह उथल-पुथल कर और सौ वर्ष की बुढिया, जिसके हाथ कापते हो, गर्दन कापती हो और आखो से भी कम दीखता हो, उसको छाज देकर कहा जाय कि 'इस धान्य के ढेर मे से सेर भर सरसो निकालदो।' क्या वह बुढिया सरसो का एक-एक दाना बीन कर पुन सेर भर सरसो का अलग ढेर निकाल सकती है? आप को असम्भव मालूम होता है। परतु यह सब तो किसी तरह देवशक्ति आदि के द्वारा सभव भी हो सकता है, किन्तु एक बार मनुष्य जन्म पाकर खो देने के बाद पुन. उसे प्राप्त करना सहज नहीं है।'

इतना दुर्लभ है मानव शरीर खोदेने के पश्चात् पुन मानव जीवन प्राप्त करना। पर इस से भी अधिक दुर्लभ एक बार ही मानव जन्म प्राप्त करना। समस्त योनियो मे श्रेष्ठ योनि पाकर एक प्राणी मनुष्य कहलाता है। और आज करोडो मनुष्य इस धरती पर विद्यमान है, पर उन मे से कितने है जिन्हे 'देवाणुप्पिय' की सज्ञा दी जा सके? मनुष्यो की भीड़ लगी है। प्रतिदिन लाखो नये मनुष्य जन्म लेते है। पर वे जिन्हे 'मनुष्य कहा जा सकता

है, जो वास्तविक 'मानव' हैं, बडी खोज करने पर इने-गिने ही मिलेंगे। क्योंकि आज का मानव धन और इन्द्रियो के क्षणिक सुख की चकाचौंध में पशुओं को भी मात कर रहा है। 'अकबर इलाहाबादी' ने भारत के पढे-लिखे समाज के जीवन को एक पद्य में गूँथा है।

क्या कहें अहबाव क्या कारे नुमायां कर गए।
बी० ए० किया, नौकर हुए, पेंशन मिली और मर गए॥

कितना व्यग्य है आज के शिक्षित समाज पर। अशिक्षित समाज की तो बात ही जाने दीजिए। जब शिक्षित समाज की यह दशा है कि पेट भरने के लिए पढना, और पढ़-लिखकर नौकरी करना अथवा अन्य कोई व्यवसाय करना, कुछ बच्चे पैदा करना उन्हें भी अपने पथ पर चलने लायक बनाना और मर जाना, तो फिर मनुष्य कहा से आये? मनुष्य शरीर भले ही इन लोगो के पास हो पर मनुष्यत्व की नितान्त कमी है। जिसके कारण आज का समाज दूषित हो गया है। इस समाज मे स्वार्थ है, लोलुपता है, अन्याय एव शोषण है, घृणा, डाह और वैमनस्य है, मानवता नहीं।

लोग चाहते है कि वे पाप करते रहे, जिस प्रकार भी हो अधिकाधिक धन प्राप्त करें, लोगो पर हकूमत करे, दूसरो को अपने सामने झुकाए, अन्याय करते रहे, पर साधु जनो और भगवान् की अराधना मे कभी-कभी कुछ कर डाले और मोक्ष का टिकट कटालें, जबकि मोक्ष का टिकट कोई रेल या बस का टिकट नहीं है, बल्कि वह तो तो सम्पूर्ण जीवन की साधना से प्राप्त होता है।

जेम्स एलन का कथन है कि "आप जैसा चाहे अपने जीवन को बना सकते हैं, यदि आप दृढ़ता के साथ अपनी भीतरी

वृत्तियो को ठीक करे" पर लोग अपनी भूल को, अपने दोषों और उनके भयंकर परिणामों को 'भाग्य' के सिर पर थोप देते हैं। और अपने को दुर्वल कह कर भी अपने पर गर्व करते हैं। स्वामी विवेकानन्द जी ने एक स्थान पर कहा है कि "हम दुर्वल है, इस कारण गलती करते है, और हम अज्ञानी है, इसलिए दुर्वल है। हमे अज्ञानी कौन बताता है? हम स्वय ही। हम अपनी आँखों को अपने हाथो से ढक लेते हैं और अंधेरा है कह कर रोते हैं।" स्वामी जी का यह कथन पूरी तरह ठीक है। आज होता ही यह है। लोगों को चारो ओर अंधकार मालूम होता है। क्योंकि वे अपनी आँखे बन्द किये हुए है। वे आँखे हृदय की, हिये की आँखे कहलाती है। स्वामी रामतीर्थ कहते हैं, "अपनी आत्मा के वाहर मत भटको, अपने ही केन्द्र मे स्थित रहो।" यही तो रहस्य है ज्ञान का, उस ज्ञान का जिसके विना मनुष्य निर्वल होकर गलतियां कर रहा है। पर कभी उस ने अपनी आत्मा मे झाक कर नहीं देखा।

श्री रामकृष्ण परमहंस का विचार है कि :—

घर मे यदि दीपक न जले तो वह दारिद्रय का चिन्ह है। हृदय मे ज्ञान का दीपक जलाना चाहिए। हृदय मे ज्ञान का दीपक जलाकर उसको देखो।

और ईश्वरचन्द्र विद्यासागर कहते हैं कि :—

"मेरी समझ मे हम लोगो को ऐसा होना चाहिए कि यदि सब कोई वैसे ही हो तो यह पृथ्वी स्वर्ग बन जाय" भगवान् महावीर के कथनानुसार हम देवो को प्रिय है केवल उस दशा मे जवकि ईश्वरचन्द्र विद्यासागर की इच्छानुसार हम हो, और वैसे वन सकते है 'हृदय मे ज्ञान का दीपक' जलाकर, और ज्ञान का दीपक जलता है सुशिक्षा और स्वाध्याय के द्वारा। क्योंकि सुशिक्षा

तथा स्वाध्याय से ही विवेक की उत्पत्ति होती है। तुलसीदास जी ने विवेक के महत्त्व को दर्शाते हुए उसकी दुर्लभता पर प्रकाश डाला है, वे कहते है '—

'कहत कठिन समुभत कठिन—साधन कठिन विवेक'

अर्थात् विवेक कहना कठिन है,समभना कठिन है और उसके साधन भी कठिन है। विवेक की उत्पत्ति जहा स्वाध्याय और शिक्षा से होती है, वहीं साधु सत्सग की भी उसके लिए बड़ी ही आवश्यकता है। साधु सत्सग के सम्बन्ध मे रामचरित्र मानस में तुलसी दास जी लिखते है—

गिरजा सन्त समागम, सम न लाभ कछु आन।
बिनु हरि कृपा न होइ सो, गावहिं वेद पुरान॥

अर्थात् 'हे पार्वती ! सन्त जनो के समागम के समान और कुछ भी लाभ नहीं है। वह समागम भगवान् की कृपा के विना नही होता—ऐसा वेद पुराण कहते है।'

पर आज तो न शिक्षा की ओर ध्यान देते है, न स्वाध्याय की ओर और न सन्त समागम को ही महत्त्व देते है, जिसके कारण आज चारो ओर अधकार है, और इस अन्धकार मे हर चमकती वस्तु को स्वर्ण समभ कर मानव भटक रहा है। उसने अपने धर्म को भुला दिया है, मनुष्य दूसरे पशु-पक्षियो के भाति पेट भरना ही अपना कर्तव्य समभ बैठा है और इस कारण वह उस जीवन को जो तुलसीदास जी के कथनानुसार—

वड़े भाग मानुप तन पाया।
सुर-दुर्लभ सब ग्रन्थन्हि गावा॥

वडे भाग्य से ही मिला है, धूल मे मिला रहा है। कभी-कभी जब उसे अपना सुख क्षण भगुर प्रतीत होता है वह आखे खोलने की चेष्टा करता है, अपने पर पश्चात्ताप करता है, पर—

"पश्चात्ताप के लिए यह आवश्यक है कि मनुष्य पिछले पापो से सच्चे मन से लज्जित हो और फिर कभी पाप न करने का प्रयत्न करे।" —सन्त अबूबकर

और—

"जब तक कोई कडाई के साथ अपनी परख न करेगा, तब तक वह अपने मन की धूर्तताओं को न समझ सकेगा।—" —कनफ्यूशियस

लोग पश्चात्ताप करते हैं, पर अपने पुराने दोषों को छोडने का प्रयत्न नहीं करते। अपने को कडाई के साथ नहीं परखते। बल्कि लोग यह सोचकर चुप रह जाते है कि अन्य लोग भी तो ऐसा ही करते है और फिर जब भाग्य मे ही ऐसा लिखा है तो हम क्या कर सकते हैं। यदि इससे भी आगे बढते हैं तो दूसरो की आलोचना करके अपना बचाव करने का प्रयत्न करते है। जबकि "पर छिद्रान्वेषण की अपेक्षा आत्मनिरीक्षण मानवता है"—महात्मा गाधी जी ने एक अन्य स्थान पर कहा है कि—

"तब गलती मिटती है, जब उसको दुरस्ती कर लेते है। गलती जब दबा देते है, तब वह फोडे की तरह फूटती है और भयकर स्वरूप ले लेती है।" उन्होने एक स्थान पर कठोर शब्द कहे है—

"अन्धा वह नहीं है जिसकी आख फूट गई है। अन्धा वह है जो अपने दोष ढाकता है।"

गाधी जी की इस उक्ति मे आज मनुष्य समाज मे अन्धों की सख्या अधिक है। और इन अन्धो ने रास्ता टटोलना आरम्भ भी कहीं किया तो निरे आडम्बर के द्वारा। आडम्बर तो स्वयं अन्धकार का प्रेरक है, फिर वह इन्हे रास्ता ही क्या बता सकता है।

लोगों को सही रास्ते पर ले जाने के लिए एक ही दीप शिखा

है, वह है धर्म। जिसके सम्बन्ध मे चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य का मत है —

"हमारे लिए धर्म हमेशा से ही कट्टर मतों का पिटारा नहीं, वल्कि आत्मा की खोज का शास्त्र रहा है।"

धर्म कर्तव्य का भी पर्यायवाची शब्द है। धर्म केवल ईश्वर, आत्मा और मनुष्य के सम्बन्धों और उनके बीच के तारतम्य को उचित रूप मे रखने के नियमो का ज्ञान भण्डार ही नहीं है वरन् उसमे मनुष्य को मनुष्यत्व की प्राप्ति के उपाय निहित है। आत्मा के स्वभाव को उसका धर्म कहा जाता है। धर्म हमारे चारो ओर कर्तव्यो की एक लकीर खींचता है और हमे आदेश देता है कि हम अपने कर्तव्यों को ईमानदारी से निभाये। पर लोग अपनी आत्मा को भूल गए, मनुष्यत्व को भूल गए, साथ ही अपने समाज और स्वयं अपने को भूल गए। उन्हे ज्ञात नहीं कि वे सामाजिक जन्तु (Social Animal) है, जिस समाज मे वे रहते है उसके प्रति भी उनके कुछ कर्तव्य है और उस आत्मा के प्रति भी जिसके कारण उनका यह वर्तमान स्वरूप है।

जिस तन को पाना दुर्लभ है, जिसे महावीर भगवान ने देवताओ का प्रिय वताया, आज कितने ही लोग अपनी पाशविक मनोवृत्ति के कारण उसे कलकित कर रहे हैं। उन्हें ज्ञान नहीं और न ज्ञान प्राप्ति की इच्छा ही है। पर उन्हें यह स्मरण रखना चाहिए कि उनकी आत्मा का भविष्य क्या हो। वे मृत्यु के उपरान्त कहा जाये, इसका निर्णय स्वय उनके कार्य करेगे। वल्कि आज जव कि वे नरतन पाये हुए मस्ती मे झूम रहे हैं, अपने भविष्य को स्वय लिख रहे है।

यदि मनुष्य विचार करे तो जव उसने मनुष्य योनि प्राप्त

करली तभी उस पर उसके दस कर्तव्य लागू हो गए। जैसे जिस क्षण हम किसी देश मे पग रखते हैं उसी क्षण से हमारे ऊपर उस देश का विधान लागू हो जाता है और उस देश के विधान मे बताए गए हमारे कर्तव्य हम पर आयद हो जाते हैं। और हमारे लिए आवश्यक हो जाता है कि अपने कर्तव्यों को निभाएँ। यदि हम ऐसा नहीं करते तो हमे कर्तव्यच्युत हो जाने का दण्ड दिया जाता है। जो व्यक्ति अपने कर्तव्यों को पूरा नहीं करता, कटु शब्दों मे हम उसे 'नमक हराम' कहते हैं। पर क्या हम अपनी आत्मा से सम्बन्धित, अपने ग्राम, नगर, देश, कुल, गण, संघ आदि के प्रति कर्तव्यों को पूरा करते हैं? क्या हम अपनी आत्मा को निर्मल कर, पाप रहित बनाने के धर्म पर कभी विचार करते हैं? यदि हम ऐसा नहीं करते तो आप विश्वास रखे कि हमे इसका दण्ड अवश्य मिलेगा। "सोने से पहले तीन चीजों का हिसाब अवश्य कर लेना चाहिए। पहिली बात यह सोचो कि आज के दिन मुझ से कोई पाप तो नहीं हुआ है। दूसरी बात यह सोचो कि आज कोई उत्तम कार्य किया है या नहीं? तीसरी बात यह सोचो कि कोई करने योग्य काम मुझ से छूट गया है या नहीं?"—

—अफलातून

पाप क्या है? और उत्तम कार्य कौन से हैं? प्रत्येक मनुष्य को पहले यह ज्ञान होना चाहिए। स्मरण रखिये कि जो आपका धर्म अथवा कर्तव्य है उसे निभाना उत्तम है और अपने कर्तव्य या धर्म के प्रतिकूल कार्य करना पाप है।

मनुष्य के लिए जिन दस कर्तव्यों अथवा धर्मों का पालन करना परमावश्यक है, हमने पिछले अध्यायों मे उन्हीं पर प्रकाश डाला है। और प्रत्येक पर प्रकाश डालते हुए यह सिद्ध किया है

कि वास्तव मे उक्त कर्तव्य निभाना कितना आवश्यक है और आज के युग मे यह कर्तव्य क्यो आवश्यक हो गए है। सर्वज्ञदेव के बनाए नियम अकाट्य है और उनमे किसी प्रकार की लचक नहीं है, वे अपरिवर्तनीय भी है। इस बात का प्रमाण आपको पुस्तक के समस्त अध्यायो से मिलेगा। नियम सभी पुराने है पर आज के परिवर्तित युग मे भी वे कितने ठीक उतरते है, यह आपने समझ ही लिया होगा। इससे यह भी ज्ञात हो ही गया होगा कि यह नियम किसी एक सम्प्रदाय विशेष के लिए नहीं वरन सारे मानव समाज के लिए हैं। यह नियम किसी को सम्प्रदाय विशेष का अनुयायी होने की भी प्रेरणा नहीं देते और न मानव-मानव मे कोई भेद ही करते है। वल्कि सारे मानव समाज को अपने उन कर्तव्यो को निभाने की प्रेरणा देते है जो स्वभावत ही सभी पर लागू हो जाते है।

लेनिन ने कहा है—

"यह समाज जो असख्य नगरो, ग्रामो और उनमे बसे विभिन्न नस्लो, रंगो और मतो के स्त्री-पुरुषो से मिलकर बना है, एक वृक्ष के समान है जिसके हम सभी शाखे, फूल और पत्ते हैं यदि इस वृक्ष की जडे सूख गई तो इसके फूल, पत्ते और शाखे भी तो निष्प्राण हो जायेगी।"

तो हम एक समाज के अग है और वह समाज हमे जीने का अधिकार देता है। जिस ग्राम या नगर अथवा राष्ट्र मे हमने जन्म लिया है, स्मरण रखिये कि हमारा शरीर उसी की सम्पत्ति है। अकाल पडता है तो फिर क्यो मनुष्य जाति मरने लगती है। क्या माता उस समय अपनी सन्तान की रक्षा कर पाती है? क्या अकाल मे कितनी ही माताएँ अपने दुधमुए शिशुओ को मृत्यु की गोद मे नहीं फेक देतीं? आपने पत्रो मे

पढ़ा होगा कि सन् ४२ में एक माता ने बनारस के बाज़ार में अपने पुत्र को एक मुट्ठी चावल और एक धोती के बदले में बेच डाला। क्योंकि वह उसकी माता तो थी पर उसे इस समाज से पेट भरने का साधन नहीं मिला।

सन् ५५ में पूर्वी उत्तर प्रदेश में भयंकर बाढ़ आई। एक बांध टूटा तो सैकड़ों ग्राम बह गए। बाढ़ ने किसी को क्षमा न किया। गोरखपुर और आज़मगढ़ तक डूब गए। इसका क्या अर्थ है?—यही न कि जिस ग्राम या नगर में आप बसते हैं, आप का भविष्य भी उसी के भविष्य के साथ बंधा है। बाढ़ के समय पूर्वी उत्तरप्रदेश के पीड़ितों को सहायता कहां से मिली?—शेष भारत से। भारत की केन्द्रीय सरकार और उत्तर प्रदेश की प्रान्तीय सरकार ने बड़ी बड़ी धन राशियां व्यय कीं और भारत के अन्य भागों की जनता ने उनके लिए सहायतार्थ कोष एकत्रित करके भेजे। यदि ऐसा न होता तो वे लोग जो किसी प्रकार जल के द्वारा मृत्यु पाश से बच गए थे, भूखों मर जाते। और पूर्वी उत्तर प्रदेश मानवहीन हो जाता। डिब्रूगढ़ कई वर्ष से बाढ़ की लपेट में आ जाता है। कितनी ही हानि होती है. अन्तत केन्द्रीय और प्रान्तीय सरकारों की सहायता से डिब्रूगढ़ के लोगों ने स्वयं ही एक बांध बनाया है। वहाँ के लोगों ने बांध क्यों बनाया? क्यों नहीं प्रत्येक मनुष्य ने यह सोचकर कार्य करने से इन्कार किया कि मुझे बांध से क्या मतलब?—उत्तर स्पष्ट है कि डिब्रूगढ़ के प्रत्येक व्यक्ति का भाग्य सम्पूर्ण नगर के भाग्य से निहित है। इस लिए सबसे पहले ग्राम तथा नगर के प्रति कर्तव्य को व्यक्ति का धर्म माना गया है। और उसके उपरान्त राष्ट्र धर्म आता है। जो लोग समझते हैं कि आत्मोन्नति ही सब कुछ है वे भूल जाते हैं कि

उन पर किसी का ऋण भी है। ऋण है ग्राम, नगर, राष्ट्र, कुल और गण आदि का। क्योंकि हमारी धमनियों मे जो रक्त बह रहा है वह हमारा नहीं बल्कि हमारे ग्राम, नगर, राष्ट्र, कुल और गण का है। बताया गया है कि बिना दूसरों के ऋण से उऋण हुए मोक्ष नहीं मिलता। इसी लिए हमारा कर्तव्य है कि हमारे शरीर मे जिनका अश है उनके प्रति अपने कर्तव्य का पालन करें।

तुलसीदास ने 'रामचरित्र मानस' मे कहा है —

एकहिं तजि कुल राखिये, कुल तजि रखिए ग्राम।
ग्राम त्यागि रखु देश को, आतम हित वसुधाम॥

अर्थात् यदि किसी एक व्यक्ति और कुल के हितों मे टक्कर हो तो एक व्यक्ति के हित का विचार छोडकर वह करना चाहिए जिससे सारे कुल का हित साधन हो। सारे कुल को लाभ पहुचे। और यदि यह प्रश्न आजये कि अपने कुल व ग्राम के हित मे से किस के हित का पूर्व ध्यान करें तो कुल को छोड कर ग्राम के हित मे काम करना चाहिए। और ग्राम के मुकाबले मे देश का हित सर्वोपरि है। देश के हित के लिए ग्राम छोडना पड़े तो छोड देना चाहिए और अपनी आत्मा के हित के लिए सारा ससार भी त्याग देने मे बुराई नहीं है।

इसका अर्थ यह है कि कुल से ग्राम महान् है, ग्राम से देश और देश से भी महान् है 'आत्मा'। यहा आप पूछ सकते है कि आत्महित साधना और सारे विश्व की चिन्ता भी नहीं करना क्या स्वार्थपरता नहीं है? आप की शका को मै स्पष्ट करदूं कि यदि एक बार सारा विश्व अन्याय करने लगे, सारा विश्व आत्मा के स्वभाव अथवा धर्म के विरुद्ध कार्य रत हो और निर्णय करे कि सत्य को छोड़कर असत्य का मार्ग अपनाया जायेगा

तो भी क्या मनुष्य को असत्य का अनुसरण करना ठीक होगा ? नहीं। ऐसे समय चाहे सारा संसार विरोध करे, सत्य पर, आत्मा की पुकार पर डट जाना चाहिए।

तो हां, हमारे लिए सब से पहले अपने ग्राम या नगर का, फिर राष्ट्र का और उसके उपरान्त कुल या गण आदि का धर्म बताया गया है। तुलसीदास जी ने भी राष्ट्र को ग्राम से अधिक महत्त्व दिया है। क्योंकि ग्राम और नगर ही मिल कर राष्ट्र बनता है। और यदि हम अपने ग्राम या नगर के प्रति ही वफादार एवं कर्तव्यनिष्ठ नहीं रहते तो राष्ट्र हित में कुछ कर ही नहीं सकते। अतः भगवान् महावीर ने हमें सब से पहले ग्राम और नगर फिर राष्ट्र और तदुपरान्त कुल, संघ, गण आदि का धर्म निभाने का उपदेश दिया। राष्ट्र के पश्चात् आप पुस्तक में पाखण्ड धर्म का वर्णन पायेंगे। यह धर्म एक बहुत ही मनोरंजक विषय का प्रतिपादन करता है। यदि अनायास ही किसी के सम्मुख पाखण्ड धर्म का नाम लिया जाय तो वह इसे हमारी मूर्खता समझ कर हंसेगा, पर जैसा कि हम पहले समझा चुके हैं पाखण्ड धर्म का अर्थ है पापों को खण्डित करने वाला धर्म। आडम्बरों को नष्ट करके सिद्धान्तों की ओर ले जाने वाला धर्म। असत्य के बादलों को छांटकर सत्य का प्रकाश देने वाले धर्म को पाखण्ड धर्म बताया गया है। राष्ट्र धर्म के तुरन्त पश्चात् कुल धर्म या गण धर्म को न रख कर पाखण्ड धर्म को रखने का कारण यह है कि राष्ट्र धर्म के बाद आने वाले ६ धर्मों को निभाने के लिए आवश्यकता इस बात की है कि हमारा मस्तिष्क साफ और शुद्ध हो। मिथ्याडम्बरों में फंसे लोग भला कुल, गण, संघ सूत्र चारित्र और अस्तिकाय धर्म का पालन कैसे कर सकते हैं ? इसके लिए तो आवश्यक है कि हमारे हृदय में

ज्ञान की दीप शिखा प्रज्वलित हो। हम सत्य और असत्य मे भेद करना जाने।

इसके उपरान्त ही उस कुल का नम्बर आता है जिस की शानदार परम्पराओं को जीवित रखने, जिस का भविष्य उज्ज्वल करने की जिम्मेदारी हम पर आ जाती है। इसी प्रकार गण व सघ धर्म का प्रश्न है। गण केवल साधुओ के ही नहीं होते, हर प्रकार के व्यवसाय कर्ताओं के भी गण होते हैं। और आज के युग मे तो 'गण व सघ धर्म, को समझने एव निभाने की बहुत ही आवश्यकता हो गई है। प्रत्येक पेशे के लोगो ने अपने सघ बना लिए है और यह सिद्ध हो गया है कि उन सघो द्वारा ही लोगों के अधिकारो की रक्षा हो सकती है। अत भगवान् कहते है कि 'हे मनुष्य तू अपने गण या सघ के प्रति विश्वस्त रह, वफादार रह। उसकी आज्ञाओं का पालन कर और उसे उन्नति शील, सुसगठित एव शुद्ध बनाने मे अपना भाग डाल।' ससार का इतिहास साक्षी है कि गण या सघ ही मनुष्य के हितो की रक्षा करते चले आये हैं।

सूत्र (सिद्धान्त) चारित्र और अस्तिकाय धर्म का विषय गूढ है। यह ज्ञान से सम्बन्ध रखता है। इस मे भगवान् महावीर के बनाए गए नियम व उपनियम और ससार के निर्माण मे लगे चैतन्य एव जड़ की व्याख्या तथा उसके प्रति हमारे कर्तव्य सभी आ जाते है। सूत्र (सिद्धान्त) एव चारित्र धर्म इतने विशाल एव विराट् है, उनका विस्तार इतना है कि इन्हीं पर कितनी ही पुस्तके लिखी जा सकती है और आज कितनी ही पुस्तके और ग्रन्थ सूत्र एव चारित्र के विषय को समझाने के लिए उपलब्ध है। हम ने सक्षिप्त सा विवरण दिया है। परन्तु इस सक्षिप्त से विवरण मे ही मोटी-मोटी बाते आ जाती

है। यदि मानव समाज इन मोटी-मोटी बातों पर ही अमल करे तो वह सही मार्ग का अनुयायी बन सकता है। यदि हम आध्यात्मिकता के गूढ़ विषय को छोड़कर भी देखें तो इस निर्णय पर पहुँचेंगे कि प्रत्येक मानव को मनुष्यत्व के आदर्श को जीवित रखने के लिए कुछ सिद्धान्तों को अपना आदर्श बनाना ही पड़ता है। जैसे सदा सत्य बोलो, यह एक ऐसा सिद्धान्त है कि इसे सारा संसार जानता और मानता है, पर जब अपने चारित्र पर दृष्टि डाली जाय तो अधिकतर लोगों को इस परिणाम पर पहुंचना होगा कि जिसे वे सूत्र मानते हैं उस का उनके जीवन से कोई भी सम्बन्ध नहीं है।

कौरव और पाण्डव जब बचपन में पढ़ा करते थे तब एक रोज उन्हें पढ़ाया गया "सत्य बोलना चाहिए, क्रोध छोड़ना चाहिए।" दूसरे दिन सब ने पाठ सुना दिया, किन्तु युधिष्टिर न सुना सके और खोये हुए से चुपचाप बैठे रहे। उनके मुख से उस रोज एक शब्द भी नहीं निकला।

गुरुदेव झुंझला कर बोले—"युधिष्टिर तू इतना मन्दबुद्धि क्यों है? क्या तुझे चौबीस घण्टे में दो वाक्य भी कण्ठस्थ नहीं हो सकते?"

युधिष्टिर का गला भर आया। वह अत्यन्त दीनतापूर्वक बोले—"गुरुदेव, मैं स्वयं अपनी इस मन्द बुद्धि पर लज्जित हूँ। चौबीस घण्टे में तो क्या, जीवन के अन्त समय तक इन दो वाक्यों को कंठस्थ कर सका—जीवन में उतार सका—तो अपने को भाग्यवान् समझूंगा। कल का पाठ इतना सरल नहीं था जिसे मैं इतनी शीघ्र याद कर लेता।"

गुरुदेव तब समझे कि पाठ याद करना जितना सरल है, उसे जीवन में उतारना इतना सरल नहीं।

यह उदाहरण है इस बात का कि लोग सूत्र तो कितने ही कण्ठस्थ कर सकते हैं और कर भी लेते हैं पर उन्हे अपने जीवन मे नहीं उतारते। सूत्र धर्म बताता है कि सिद्धान्तो को समझो। चारित्र धर्म कहता है कि उन्हे अपने जीवन मे उतारो। इस विषय पर कितना ही कहा जा चुका है, अतः मैं आप से इस सम्बन्ध मे अधिक न कह कर इतना ही कहूँगा कि यह धर्म भी किसी सम्प्रदाय विशेष अर्थात् जैनी आदि के लिए ही नहीं वरन् उन सभी के लिए हैं जो मानव है और मनुष्यत्व को अपने जीवन मे उतारना चाहते है। अर्थात् पूर्ण मानव बनने के लिए जहा ग्राम, नगर, राष्ट्र, कुल और गण आदि की सेवा करना आवश्यक है, वहाँ मनुष्यत्व के सिद्धान्तो को समझना और अपने चरित्र को उसी के समान ढालना आवश्यक है।

एक मोटी सी बात मै आप से कहूँ कि जो केवल बातें ही बातें बनाता है और करता-धरता कुछ नहीं। दूसरों को नसीहत देता है और अपने जीवन को साचे मे नहीं ढालता, क्या आप ऐसे व्यक्ति का आदर करते है? उत्तर साफ है कि कोई भी उसे आदर की दृष्टि से नहीं देखता। इसलिए क्यों नहीं आप भी मनुष्यत्व के पद पाने के लिए उत्सुक होते? जैसा कि पहले बताया जा चुका है मनुष्य तन पाना जितना कठिन है मनुष्यत्व की श्रेणी को पहुँचना उस से भी सहस्त्र गुना दुर्लभ है। मनुष्यत्व तो उस को प्राप्त होता है जो अपने सभी कर्तव्यो को निभाता है और सिद्धान्तों का ज्ञान जिसे होता है तथा अपना आचरण भी उन्हीं के अनुकूल बना लेता है।

हमारे साहित्य मे कितना ही ज्ञान भरा पड़ा है। यदि हम उसी को कंठस्थ करे उसी को अपने जीवन मे उतार सके तो मनुष्यत्व को प्राप्त कर सकते हैं। साहित्य मे धर्म भी हैं और जीवन में सफल

होने के लिए नीति भी विद्यमान है। पर हम पढ़ते हैं तो आनन्द लेने के लिए अथवा कवि व लेखक की योग्यता परखने के लिए। कभी उसे जिसे हम पसन्द करते हैं, अपने जीवन में उतारने की चेष्टा नहीं करते। देखिये चाणक्य नीति पर एक कितना सुन्दर दोहा है।

तीन स्थान सन्तोष कर, धन, भोजन अरु दार।
तीन सन्तोष न कीजिये, दान पठन तप चार॥

अर्थात् धन, भोजन और अपनी स्त्री में ही संतोष करना चाहिए और दान देना, स्वाध्याय एवं त्याग तपस्या इन तीन बातों में कभी संतोष नहीं करना चाहिए। अर्थात् दान देते ही रहना चाहिए, इसकी कोई सीमा नहीं होनी चाहिए, स्वाध्याय जीवन भी चलता रहना चाहिए, और तप जितना भी किया जाय कम ही है। यह एक सूत्र समान ही है। इसको यदि हम अपने जीवन में उतारें तो सूत्र और चारित्र धर्म दोनों का पालन हो। साथ ही यश भी मिले। आदर सन्मान का जीवन व्यतीत करने का सौभाग्य भी प्राप्त हो।

और देखिये।—कहते हैं—

भलो कबहु कुराज, मित्र कुमित्र भलो न गिन।
असती नारी अकाज, शिष्य कुशिष्य हु कब भलो॥

क्योंकि—

राज कुराज प्रजा सुख, नहीं कुमित्र रतिराग।
नहीं कुनार सुख गेह को, नहीं कुशिष्य यशभाग॥

अर्थात खोटे राजा का राज्य होने से राजा का न होना ही अच्छा है, दुष्ट मित्रों की मित्रता होने से मित्र का न होना ही अच्छा है। कुभार्या के होने से स्त्री का न होना ही अच्छा है और बुरे चेले के होने से चेले का न होना ही अच्छा है। क्योंकि

खोटे राजा के राज्य मे प्रजा को सुख नहीं होता, दुष्ट मित्र से चित्त को आनन्द व हर्ष नहीं होता, दुष्ट पत्नी होने से घर मे सुख नहीं रहता और कुशिष्य से यश नहीं मिलता।

इन दो पद्यो मे ही राष्ट्र धर्म, कुल व गण धर्म, और चारित्र धर्म पर प्रकाश पड जाता है। चाणक्य ने चारित्र पर और भी कहा है उन के वचन को इस दोहे मे दर्शाया गया है। :—

भय लज्जा अरु लोक गति, चतुराई दातार
जिस मे नहीं यह पांच गुण, सग न कीजे यार।

वे पाखण्ड धर्म पर भी कहते है :—

रूप भयो यौवन भयो, कुलहु मे अनुकूल।
विना विद्या शोभे नहीं गध हीन ज्यूं फूल॥

पाखण्ड धर्म मे शिक्षा की उपतोगिता बताई गई है। यह अकेला दोहा उसकी उपयोगिता पर समुचित प्रकाश डालता है।

इस प्रकार हम देखते है कि हमारे प्राचीन साहित्य मे, हमारे पूर्वजों के प्रवचनो मे, जैन सस्कृति द्वारा बताए गए दश धर्मों की व्याख्या, उपयोगिता और आवश्कता पर काफी सामग्री सगृहीत है। यदि हम उन्हे इस दृष्टिकोण से पढ तो हमे कहीं और भटकना न पडेगा बल्कि उन्हीं मे मनुष्यत्व की सारी 'कसौटी' विद्यमान है।

इस एक पुस्तक मे ही हमने दस धर्मों पर साधारण भाषा मे प्रकाश डालते हुए मानव जगत् को उसके कर्तव्यों का बोध कराया है और प्रयत्न किया है कि उन्हे और भी गूढता से समझने की प्रेरणा मिले। यदि ज्ञान की खोज मे निकला जाय तो हमे ज्ञात होगा कि हम बडे धनवान् है। हमारे चारो ओर ज्ञान बिखरा हुआ है। और रह-रहकर हमारे धर्मों और कर्तव्यो की ओर सकेत कर रहा है। बस उसे बटोरने और उसके अनुकूल अपना

आचरण बनाने का ही मुख्य प्रश्न है। तुलसी दास जी ने तो ज्ञान के सम्बन्ध में रामायण में कहा है कि.—

ग्यान पंथ कृपान कै धारा। परत खगेस होई नहिं बारा॥
जौं निरबिघन पथ निर बहई। सो कैवल्य परम पद लहई॥

अर्थात् हे पक्षिराज गरुड ! ज्ञान मार्ग तलवार की धार है, इसमें पड़कर पार होना सहज नहीं। यदि कोई इस मार्ग का निर्विघ्न निर्वाह कर ले जाय तो वह कैवल्य [केवल] मोक्ष नामक परम पद को प्राप्त कर लेता है।

हा, ज्ञान मार्ग दुर्लभ है। पर इस पर चलने वाले भी तो इसी ससार में जन्म लेते है। मैं कहता हूँ कि कोई आत्मा ऐसी नहीं, कोई मनुष्य ऐसा नहीं, जिसमें वह है जो हम में नहीं। सभी अग ऐसे है जैसे दूसरो के और प्रकृति ऐसा ही प्रभाव हम पर डाल सकती है जैसा दूसरों पर। फिर क्या कारण है कि मोहनदास कर्मचन्द गाधी, महात्मा गाधी और राष्ट्रपिता कहलाए ? टालस्टाय, लेनिन, सनियात सेन और मार्क्स महात्मा कहलाते है। सुभाषचन्द्र वसु नेता जी कहलाए, पण्डित नेहरु 'शांति के देवता' के नाम से पुकारे जाते है ? इन सबका यह कारण नही कि उनकी आत्मा में सुर्खाव का पर लगा हुआ था या किसी भगवान् ने उन्हे अपनी कृपाए वख्श दी थीं। बल्कि यह है कि उन्होंने साहस, नीति और उच्च विचारों से काम लिया। उन्होंने अपने मोह में अपने को बेचा नहीं। उन्होंने अपने धर्म का पालन किया। अपने चरित्र को 'आदर्श' रूप में रखा। उन्होंने त्याग किया, राष्ट्र धर्म का पालन किया। वे एक प्रकार से तलवार की धार पर चले। इस से यह स्पष्ट हो जाता है कि ससार में जो भी ज्ञान रूपी तलवार की धार पर चलता है वही आदर्श बन जाता है, लोग उसे पूजने लगते हैं। लोग

पूजते इसलिए हैं कि वे अपने को कायर न कहते हुए भी कायर समझते हैं। क्योंकि जिस पद पर चलने वाले को वह पूजते है, उसे दुर्गम समझते है और उस पर चलना अपने बस की बात नहीं समझते। इस लिए उसे देवता कह कर पूज लेते हैं पर किसी व्यक्तित्व को पूजने से कुछ नहीं होता। होता है उस का मार्ग अपने लिए निर्धारित करने से। मै जोरदार शब्दो मे कहता हूँ कि यदि आप इन दस धर्मो को समझले और उन के अपने जीवन मे उतार ले, दृढ़ प्रतिज्ञा करके उन पर अमल करे, तो आप विश्व के आदर्श बन सकते है।

—∞—